राजस्थान के राजघरानों
की
हिन्दी-सेवा

(राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध-प्रबध)

डॉ. राजकुमारी कौल

एम ए.; पी-एच डी,

राजस्थान विश्वविद्यालय

जयपुर

- प्रकाशक :

  अनुपम प्रकाशन

  चौड़ा रास्ता, जयपुर–३

- प्रथम संस्करण · १९६८

- मूल्य . बीस रुपये

- मुद्रक

  शीतल प्रिन्टिंग प्रेस,

  जयपुर—

दो शब्द

पुराने साहित्य और इतिहास के गवेषको के लिए राजस्थान एक 'स्वर्णद्वीप' है। पाण्डुलिपियो, चित्रो और शासन पत्रो की जितनी विशाल निधि विशेषत उत्तर-मध्यकाल से विभिन्न भडारो, पुस्तकालयो और सग्रहो मे यहाँ सरक्षित है, उतनी अन्य कही विदित नही है। मरुस्थल की दुर्गमता ने और राजपूतो की वीरता ने इस प्रदेश के लिपिबद्ध वाड्मय के लिए शताब्दियो तक एक समर्थ रक्षा प्राचीर का कार्य किया है। इस शेष परम्परा के अन्वेषको मे डा० राजकुमारी कौल का विशिष्ट स्थान है। उन्होने प्रस्तुत शोध-निबन्ध मे राजस्थान के राजघरानो की हिन्दी सेवा का विशद और प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया है। इन राजघरानो की हिन्दी सेवा अनेक रूपो मे व्यक्त हुई है। एक ओर उन्होने हिन्दी के कवियो, विद्वानो एव लेखको को सम्मान, प्रोत्साहन और आश्रय प्रदान किया, दूसरी ओर उनके विशिष्ट सदस्यो ने स्वय अपनी कृतियो से हिन्दी साहित्य को विभूषित किया है। श्रीमती कौल ने राजघरानो की अपनी कृतियो से हमे परिचित कराया है। उनका कार्य उनके दीर्घ परिश्रम, लगन और साहित्यिक अनुराग का श्लाघनीय परिणाम है।

श्रीमती कौल का अध्यवसाय अनेकानेक राजकीय कृतिकारो को इतिहास के धुधलके से उभारकर चिरस्मरणीय मूर्ति प्रदान करता है। जोधपुर के महाराजा जसवतसिंह की अलकार और वेदान्त पर रचनाएँ उनके प्रसिद्ध राजनीतिक और सामयिक व्यक्तित्व को एक नया आयाम प्रदान करती है। उनके पुत्र अजीतसिंह को कठिन सघर्ष मे जूझना पडा था किन्तु उनकी कृति 'भाव विरही' मे उनके जीवन की एकान्त निजी कारुणिकता उभर आती है। महाराजा मानसिंह का नाथ सप्रदाय से सम्बन्ध इतिहास प्रसिद्ध है। यहा उनकी कृतियो को हम उस सम्प्रदाय के सिद्धातो और परम्पराओ पर प्रकाश डालते देखते है। बीकानेर के महाराजा रायसिंह और अनूपसिह विशेषरूप से स्मरणीय है। किशनगढ के 'नागरीदास' और जयपुर के 'ब्रजनिधि' अपने कविरूप मे सुविदित हैं। यहा उन्हे राजघरानो मे देखकर एक अनूठा भाव मन मे आलोडित होता है।

श्रीमती कौल ने अपनी प्रस्तुत कृति मे हिन्दी के प्रेमियो और अतीत के अनुरागियो को अपनी शोध–साधना के ऋण मे बाँध लिया है।

आचार्य एव अध्यक्ष
इतिहास-विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

गोविन्द चन्द्र पांडे

प्राक्कथन

बाल्यकाल मे मीरा, मानसिंह और नागरीदास आदि के अनेक पद चलते फिरते जोगियो एव अन्य गाने वालो के सुरीले कठो से सुनकर उनकी ओर मेरा आकर्षण होना स्वाभाविक ही था। बडे होने पर राजस्थान के इतिहास ने पूर्वस्मृतियो को और भी अधिक उत्तेजना प्रदान कर दी। चित्तौड के विजय स्तम्भ को देख कर अकस्मात महाराजाओ और महाराणाओ के जय-विजय का इतिहास सामने आया। जोधपुर और बीकानेर की मरुभूमि के टीलो ने उस युग की याद दिला दी जब कभी इस स्थल पर अतुल जलराशि का राज्य रहा होगा। अपनी भावनाओ और विचारो की इस पृष्ठभूमि ने यह जिज्ञासा उत्पन्न करदी कि इस ऊँचे-नीचे हरे-भरे व रेतीले राजस्थान मे राज करने वालो द्वारा प्रदत्त साहित्यिक देन का अध्ययन किया जाय। परिणाम स्वरूप सन् १९५० मे राजपूताना विश्वविद्यायल ने पी. एच डी के लिये "राजस्थान के राजघरानो द्वारा हिन्दी की सेवाये तथा उनका साहित्यिक मूल्याकन" नामक विषय स्वीकृत किया। अपने उसी अध्ययन का परिणाम प्रस्तुत प्रबन्ध मे रखा जा रहा है।

विषय की मौलिकता और महत्व के सम्बन्ध मे अधिक कहना व्यर्थ है। राजस्थान के सास्कृतिक इतिहास मे साहित्य का यह विषय अत्यन्त लाभदायक एव मूल्यवान है और जहा तक इसकी विस्तार सीमा का प्रश्न है वह तो इसी से स्पष्ट है कि सन् १९५३ के मार्च माह मे प्रयाग विश्वविद्यालय ने इसी विषय को डी लिट के लिए स्वीकृत किया है।[1] अध्ययन की सामग्री एकत्रित करते समय अनेक बाधाओ का सामना करना स्वाभाविक ही था। विभिन्न पुस्तकालयो मे समस्त सामग्री जितनी बिखरी हुई पडी है उसको सजोना जीवन भर का काम है। पुराने वेष्ठन, दीमक का ग्रास बने हुए पत्र और इतस्तत पाये जाने वाले सर्गबद्ध प्रतिलिपियो के पन्ने आदि सामग्री को एक स्थान पर एकत्रित करना सुगम नही। फिर सभी पुस्तकालयो मे प्रवेश और प्रवेश पाने पर अध्ययन की सुविधा मिलना और भी दूभर होता है। प्रस्तुत प्रबन्ध की सामग्री हस्त-लिखित प्रतिलिपियो एव कुछ मुद्रित रचनाओ से एकत्रित की गई है जिसकी सक्षिप्त सूची परिशिष्ट मे दे दी गई है।

---

[1] अनुशीलन अंक ४ वर्ष १९५३ पृष्ठ ५१

सामग्री का अध्ययन करते समय अनेको प्रश्न मन मे उठे। एक बार विचार हुआ कि विषयगत हिन्दी साहित्य सम्बन्धी विभिन्न प्रवृत्तियो का क्रमबद्ध विकास प्रस्तुत किया जाय परन्तु यह प्रयास छोड देना पडा क्योकि अध्ययन से यह पता चला कि राजघरानो की साहित्य सेवा मे मुक्तक काव्य की प्रवृत्ति ही प्रधान है अतएव केवल इस एक प्रवृत्ति का अध्ययन अधिक महत्वपूर्ण नही होगा। दूसरी बार विचार आया कि समस्त अध्ययन को साहित्य सृजन के ऐतिहासिक कालो मे विभक्त कर दिया जाय परन्तु इस विचार के उपरान्त यह निष्कर्ष निकला कि ऐसा करने से तो प्रबन्ध सामग्रीजन्य तथ्य से बोझल और अभिव्यजना मे नीरस प्रतीत होने लगेगा अतएव अन्त मे यह निर्णय अधिक तर्कसगत मालूम हुआ कि प्रत्येक राजघराने की साहित्य सेवा का वर्णन सम्बन्धित रूप मे कर दिया जाय जिससे प्रत्येक महाराजा का व्यक्तित्व, उनकी रचनाएँ एव अन्य साहित्यिक योग-दान प्रकाश मे आ जाये।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे यही क्रम रखा गया है। प्रवेश मे राजस्थान के राजघरानो की एक ऐतिहासिक और सास्कृतिक पृष्ठभूमि दी गई है। अन्य अध्यायो मे राज-घरानो की मूल स्थापना, उनके क्रमागत राजाओ द्वारा हिन्दी की सेवा, रचनाओ का विवरण तथा मूल्याकन क्रमश वर्णित किया गया है। इस पद्धति से-काव्य की तह मे जाने का पर्याप्त अवसर मिल गया है। एक अध्याय प्रमुख राजघरानो के अतिरिक्त अन्य राजघरानो के विषय मे भी जोड दिया गया है इस समावेश से समस्त राजस्थान का एक यथासम्भव पूर्ण चित्र प्रस्तुत हो सका है। राजस्थान के राजघरानो की एक विशेषता यह भी है कि महिलाओ ने भी इस ओर सक्रिय उत्साह प्रदर्शित किया है। उनकी कविता किसी भी कवि से टक्कर लेने मे पीछे रहने वाली नही है। अतएव उनकी साहित्यिक सेवा, प्रस्तुत प्रबन्ध का एक पृथक अध्याय बनने की स्वत अधिकारिणी है।

मूल रूपरेखा से प्रतीत होगा कि प्रबन्ध का परिशिष्ट एक राज्याश्रित कवियो और उनके साहित्य के विवरण से सम्बन्ध रखता है। अध्ययन से पता चला कि यह प्रसग एक स्वतत्र प्रबन्ध का विषय बनने के योग्य है अतएव केवल कुछ सूचनाएँ देकर ही इस अध्याय की इति श्री करदी गई है अन्यथा प्रस्तुत प्रबन्ध का कलेवर द्रौपदी का चीर बन जाता।

सब मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत प्रबन्ध सामग्री की मौलिकता और उसके प्रतिपादन मे राजस्थान की सास्कृतिक देन को अभिव्यक्त करने का एक वैज्ञानिक अध्ययन-शील प्रयास है। यह प्रबन्ध सभी दृष्टिकोणो से सम्पन्न है ऐसा

समझना एक अनाधिकार चेष्टा होगी। प्रयास यह अवश्य रहा है कि सच्चाई और ईमानदारी के साथ जो तथ्य सामने आये उनको विना किसी अतिशयोक्ति के प्रस्तुत कर दिया जाय। फिर भी विषय की विशदता एव अपनी सीमाओ से मै अनभिज्ञ नही हूँ।

प्रबन्ध अपनी स्वीकृति से कई वर्ष वाद मुद्रित हो रहा है। इस बीच मे और अधिक सामग्री प्रकाश मे आ चुकी है। उसका समावेश उसके शोधको के प्रति अन्याय ही होता अतएव प्रबन्ध अपरिवर्तित दशा मे ही छापा जा रहा है। उसमे जो सामान्य त्रुटिया थी उनका अवश्य परिष्कार कर दिया गया है। हो सकता है आज के शोध निदेशक मेरे क्रम को शोध की मान्य गतिविधि के अनुकूल न समझे। परन्तु सत्य तो यह है कि प्रत्येक प्रकार की शोध एक ही दायरे मे वाधकर नही रखी जा सकती। प्रस्तुत विषय इतिहासपरक भी है और साहित्यजन्य भी। अतएव उसमे मिश्रित परिपाटी का होना स्वाभाविक है।

इससे अधिक मुझे अपने शोध प्रबन्ध के विषय मे कुछ नही कहना है। अन्त मे, मैं श्रद्धेय गुरुवर डॉ० सोमनाथ गुप्त की अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होने मुझे कुशल निर्देशन दिया।

आदरणीय प्रोफेसर डॉ० जी० सी० पाडे के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होने व्यस्त होते हुए भी थोडा समय मेरे शोध प्रबन्ध को पढने मे लगाया और उस पर अपने अमूल्य विचार प्रकट किए।

विभिन्न पुस्तकालयो, उनके अध्यक्षो एव अन्य साहित्य-प्रेमियो से मुझे जो सहायता मिली है उसके लिये भी मैं उनकी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

राजकुमारी कौल

हिन्दी–विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

विषयानुक्रम

३. : जोधपुर का राजघराना : (३७–८५)

१ महाराजा गर्जसिंह द्वारा डिंगल को प्रोत्साहन, हेम श्रौर [illegible] धार्मिक कवियो की रचनाएँ , वीर चरित्र प्रसारक काव्य का श्रीगणेश ।

२. महाराजा जसवन्तसिंह

(श्र) जीवनघटनाएँ जिन्होंने उन्हें राजकाज के साथ साहित्य की श्रोर प्रेरित किया ।

(ब) रचनाएँ ।

१, भाषा – भूषण — उसकी मौलिकता

२ वेदान्त पचक — दर्शन विषयक कविता श्रौर उसका मूल्य ।

३ गद्य — स्वरूप श्रौर मूल्याकन ।

३ महाराजा श्रजितसिंह —

(श्र) जीवन प्रेरक घटनाएँ

(ब) रचनाएँ —

१ गुणसार – प्रथम वरण शृ गार को राजनीति निरधार ।
जोग जुगति यामें सबै, ग्रथ नाम गुणसार ।

२ भावविरही – विप्रलभ शृ गारपरक रचना श्रौर उसका महत्व ।

३ महाराजा का साहित्य प्रेम श्रौर कवियो को श्राश्रय प्रदान करना, प्रधानतया बालकृष्ण, जगजीवन श्रौर श्याम राम की रचनाएँ ।

४. महाराजा श्रभयसिंह –

(श्र) जीवन घटनाएँ

(ब) कवियो को श्राश्रय प्रदान प्रधानतया जगजीवन भट्ट, करणीदान, वीरभाण श्रौर पृथ्वीराज की रचनाएँ ।

५ महाराजा बखतसिंह —

(श्र) जीवन घटनाएँ

(ब) रचनाएँ देवी स्तुति श्रौर भजन

६. महाराजा भीमसिंह :—

(अ) जीवन घटनाएँ

(ब) कवियो को आश्रय प्रदान : रामकर्ण कवि का अलकार–समुच्चय

७ महाराजा मानसिंह –

(अ) जीवन घटनाएँ

(ब) रचनाएँ

१ नाथ–चरित्र

२. गीत

३ कृष्ण–विलास

४. योग परक ग्रथ

(स) मानसिंह की भक्ति–भावना

(द) मानसिंह द्वारा अन्य कवियो को प्रोत्साहन

(इ) मानसिंह और नाथ संप्रदाय

(ई) मानसिंह की कविता की उत्कृष्टता

८ अन्य राजे जिन्होंने साहित्य की प्रगति की सुरक्षा मे योगदान दिया।

४. बीकानेर का राजघराना : (८६–६८)

१. महाराजा रायसिंह–साहित्यिक आश्रयदाता, इनके द्वारा वैद्यक और ज्योतिष आदि विषयो का साहित्य सृजन।

२. महाराजा पृथ्वीराज .–

(अ) वेलिक्रिसन रुक्मणी री कही का साहित्यिक महत्व

(ब) अन्य रचनाएँ

३ महाराजा कर्णसिह :–

(अ) सस्कृत एव भाषा के कवि

(ब) आश्रित कवि–दिनकर, गगानद, होंसिग, मगल, यशोधर।

४ महाराजा अनूपसिह :–

(अ) सस्कृत के परम विद्वान

(ब) अनेक विषयो पर स्वय रचना करने वाले

(स) प्रधान आश्रयदाता

(द) वर्तमान ग्रनूप पुस्तकालय के सस्थाकप [illegible]

५ महाराजा जोरावरसिह :

(ग्र) सस्कृत ग्रौर भाषा के कवि

(व) रसिकप्रिया ग्रौर कविप्रिया टीकाकार

६ महाराजा गजसिह .

(ग्र) कवि ग्रौर भजनकार

(व) मरुभाषा के गीतकार

(स) विविध भाषाग्रो मे रचनाएँ—

५. किशनगढ का राजघराना। (९९–१४४)

१ महाराजा रूपसिह

(ग्र) वल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव

(व) काव्य

(स) सगीतज्ञ

२. महाराजा मानसिह

(ग्र) मुक्तक काव्य लेखक

(ब) भक्त कवि

३ महाराजा राजसिह

(ग्र) वाहुविलास की कविता

(व) रसपाय नायक के सवादो का विवेचन

४ महाराजा सावतसिह उपनाम 'नागरीदास'

(ग्र) नागर समुच्चय का विवेचन

(ब) भक्तवर नागरीदास

(स) नागरीदास का ग्रन्य कवियो पर प्रभाव

(द) नागरीदास की भाषा ग्रौर शैली

५ महाराजा वहादुरसिह

(ग्र) सगीत प्रेमी

(ब) ख्याल ग्रौर ठप्पे

: १ :

प्रवेश

सन् ६४७ ई मे हर्ष की मृत्यु के उपरान्त समस्त भारतवर्ष की राजसत्ता जिन आंशिक भूभागो मे बिखर गई उनमे 'राजस्थान' अथवा 'राजपूताना' का भूभाग अपना विशेष महत्व रखता है। इस भूभाग मे समय-समय पर अनेक माडलिक राजाओ का आधिपत्य होता रहा अतएव इसका नाम 'राजस्थान' अर्थात् 'राजाओ का स्थान' सार्थक है। ये राजा–महाराजा सभी 'राजपूत' जाति के थे चाहे वे सिसोदिया हो अथवा राठौड, चालुक्य हो अथवा सोलकी, चौहान हो या कछवाहे, अतएव 'राजपूताना' नाम भी उपयुक्त ही है।

कर्नल टॉड ने इस भूभाग के इतिहास का नामकरण करने मे 'राजस्थान' शब्द का प्रयोग किया है, सर्व प्रथम यह इतिहास सन् १८२९ मे प्रकाशित हुआ था। अ गरेजी राज–व्यवस्था मे भारतवर्ष के सबध मे जो ज्ञातव्य पुस्तके और सूचिकाये लिपिबद्ध की गई उन्हे गजे टियर नाम दिया गया और इस भूभाग का वर्णन 'राजपूताना गजे टियर' नाम से प्रकाशित किया गया। बीसवी शताब्दी मे जो इतिहास लिखे गये उनमे स्व प गौरीशकर हीराचन्द ओझा का नाम उल्लेखनीय है। उन्होने अपने इतिहास का नाम 'राजपूताना का इतिहास' ही रखा है।

सन् १९४७ की स्वतत्रता–घोषणा के पश्चात् भारत के अन्तर्गत 'रियासती भारत' के विलीनीकरण का प्रश्न उठा। युग की घटनाओ और समय के चक्र ने इस भूभाग के अन्तर्गत विभिन्न देशी राज्यो को एक राज्य मे परिगणित कर दिया और इसका नाम रखा गया 'राजस्थान' प्रदेश, (The State of Rajasthan)। भारतीय सविधान मे इसका यही नाम है।

वर्तमान राजस्थान प्रदेश के अन्तर्गत निम्नलिखित भूतपूर्व रियासते सम्मिलित है।

१. मेवाड (उदयपुर) २ मारवाड (जोधपुर) ३ बीकानेर ४ जयपुर ५ कोटा ६. बूदी ७ अलवर ८ भरतपुर ९ करौली १०. धौलपुर ११ जैसलमेर १२ सिरोही १३ टोक १४ बासवाडा १५ प्रतापगढ १६ झालावाड़ १७ डू गरपुर १८ किशनगढ १९ शाहपुरा

राजस्थान की भौगोलिक सीमायें

वर्तमान राजस्थान का विस्तार १३०,२०६७[1] वर्गमील है उत्तर दिशा मे सुदूरतम स्थान 'हिन्दूमल कोट' नामक नगर की सीमा है। यह नगर बीकानेर के अन्तर्गत गगानगर ज़िले मे है। सुदूर दक्षिण मे 'सादरा' की तहसील है जो बासवाडा जिले का अग है। पूर्व मे सबसे दूरतम विन्दु 'राजमेरा' है जो भरतपुर ज़िले का अश है और पश्चिम मे सबसे अधिक दूर 'शाहगढ' है जो जैसलमेर ज़िले के अतर्गत है। इस प्रकार उत्तर–पश्चिम मे पाकिस्तान, पूर्व–उत्तर मे पूर्व–पजाब, दक्षिण पश्चिम मे बम्बई प्रदेश और दक्षिण–पूर्व मे मध्यभारत की सीमाऐं राजस्थान को अपने बाहुपाश मे बाधे हुए है। हिन्दूमल कोट से लेकर शाहगढ का विस्तृत सीमा-भाग विदेशी राज्य की सीमा से मिलता है और समस्त भारत की सुरक्षा के लिये उसका विशेष महत्त्व है।

राजस्थान की प्रधान पर्वतमाला 'आडावला' नाम से प्रसिद्ध है। 'अरावली' इसी शब्द का रूपान्तर है। यह पर्वतमाला, मोटे रूप से, समस्त राजस्थान को दो भागो मे विभाजित करती है। पर्वत–माला के उत्तर-पश्चिम मे इस प्रदेश का लगभग ३/५ भाग सम्मिलित है शेष २/५ दक्षिण–पूर्व मे स्थित है। अरावली के शिलाखण्ड अनेक स्थानो मे बिखरे पडे हैं। कही कही अपने नीचे तथा चारो ओर पडी हुई समतल भूमि पर खडा हुआ शिखर अपने गौरव की सूचना देते हुए यह घोषित करता है कि राजस्थान का गौरव अक्षुण्य है चाहे वह बिखर भले ही गया हो। वर्तमान आबू शहर इसी पर्वतमाला का प्रसिद्ध पहाडी शहर है। ५६५० फुट ऊचा 'गुरु-शिखर' अरावली का उत्तु गतम शिखर है और आकाश छूने की उसकी प्रतिस्पर्द्धा किसी भी दर्शक के आकर्षण का कारण बन सकती है। आजकल अरावली मे बसा हुआ आबू शहर बम्बई प्रात के साथ सन्नद्ध कर दिया गया है यद्यपि यह राजनीतिक गठबंधन प्राचीन सास्कृतिक एकता और राजस्थान की जनता के देश–प्रेम की भावना के नितान्त प्रतिकूल है। आबू शहर को पहले की तरह पुन राजस्थान मे मिलाने का आन्दोलन अभी भी चल रहा है।[2]

अरावली द्वारा विभक्त दोनो भूभागो की अपनी-अपनी विशेषताए हैं। प्रथम भाग जो पश्चिम मे सिन्ध (पाकिस्तान) और उत्तर मे पश्चिम–पजाब (पाकिस्तान) के दक्षिण की सीमा से होकर उत्तर–पूर्व मे देहली तक चला गया है, अधिकाश मे रेणुका सम्पन्न, जलवचित और अनुपजाऊ है। परन्तु इसके विभिन्न अशो मे अपेक्षा-

---

1 Census of India 1951 Vol. 10 Part IA, P–5

२. इस समय यह अंश पुनः राजस्थान प्रदेश मे मिला दिया गया है।

कृत ये लक्षण कम होते गये है और उनमे बस्तिया बसती चली गई हैं। जोधपुर और बीकानेर की कमिश्नरियो का उत्तर-पश्चिम भाग अपेक्षाकृत वीरान और रेतीला है। बीकानेर के गगानगर जिले मे गगानहर के निकलने से यह भाग बडा उपजाऊ हो गया है। भाखरा नहर के जल से सिचित होने पर जैसलमेर, हनुमानगढ आदि के पास की भूमि भी उपजाऊ हो जायेगी यह आशा सत्य ही है। जहा पानी नही मिलता वहा का जीवन बडा कष्टप्रद और अनिश्चित है। जब वर्षा हो जाती है जीवन हरा हो जाता है अन्यथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहना और इस प्रकार आजीविका चलाना यहा के निवासियो का दैनिक व्यवहार है। आश्चर्य की बात यह है कि ये मरूस्थल भी कवियो और लेखको को जन्म देते रहे हैं !

अरावली के दक्षिण-पूर्व मे स्थित दूसरा भाग अधिक उपजाऊ है। इसकी प्रकृति मध्यभारत और उत्तर प्रदेश के समान है। राजस्थान का धान-भडार इसी भूभाग मे उत्पन्न होता है। इस भूभाग के राजा भी दूसरो से अधिक धनाढ्य और साहित्य एव कला के आश्रयदाता रहे है।

राजस्थान की नदियो मे 'लूणी' सबसे बडी है। यह अजमेर के पास पुष्कर से निकल कर कच्छ की खाडी मे गिरती है। दुर्भाग्य की बात यह है कि इसमे पानी का अभाव है और जो कुछ कही-कही है वह भी खारा है। सभवत इसी खार (क्षार) के कारण इसका नाम 'लूणी' (नमकवाली) पडा है। दूसरी नदी का नाम 'बनास' है। यह चम्बल की सहायक है और पहाडी नदी होने के कारण लूणी की अपेक्षा अधिक उपयोगी हे। तीसरी नदी 'चम्बल' हे। परन्तु इसका थोडा सा भाग ही राजस्थान की सीमा मे होकर वहता है। 'जवाई' आदि पहाडी नदिया भी हैं जिनका महत्त्व वर्तमान समय मे बहुत वढ गया है।

ये नदिया अधिकाश मे सिंचाई के काम नही आती परन्तु पचवर्षीय योजना मे केन्द्रीय सरकार की सहायता से इनसे वाध बनाये जा रहे है। जोधपुर के पास आबू पहाड की उपत्यका मे बहने वाली जवाई नदी पर एरनपुरा नामक स्थान पर एक बडा वाध बाधा गया है जो लगभग पूरा हो चुका है, रहा सहा कार्य अगले वर्ष तक समाप्त हो जायगा। परिणामस्वरूप ११,००० एकड़ भूमि का सिंचन आरम्भ हो गया है और सपूर्ण हो जाने पर ४६,००० एकड भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकेगा। इसी प्रकार मध्य भारत और राजस्थान सरकारे मिलकर कोटा मे चम्बल नदी पर एक बाध वना रही है। इस योजना के सपूर्ण होने पर ४६,००० एकड भूमि कृपि के काम मे लाई जा सकेगी जो राजस्थान की समृद्धि मे विशेष महत्त्व रखेगी। बीकानेर महाराज स्व. गगासिंह जी ने गगानगर मे सतलज से नहर लाकर इस भूभाग को इतना उपजाऊ वना दिया कि अभी भी वही भाग राजस्थान के गेहूँ

और चने के लिये सबसे अधिक उपजाऊ स्थान है। भाखरा नहर के जल से जैसलमेर एव बीकानेर का कुछ और भाग भी उपजाऊ बन जायगा !

राजस्थान मे झीलो की भी कमी नही है। वैसे तो सामर झील भारत की बडी झीलो मे से है परन्तु उसका जल खारी होने के कारण सिचाई के काम मे नही आता। हा देश को नमक देने मे उसका प्रमुख स्थान हे। उदयपुर की कमिश्नरी मे जय–समद, राज–समद, पिछोला और घेवार सिंचाई के काम मे आते हैं। कही-कही पुराने बाधो से भी सिंचाई का काम लिया जाता है। गाँवो के तालाब पानी पीने के काम आते हे।

राजस्थान अपने खनिज पदार्थो के लिए भी प्रसिद्ध है। आगरे के ताजमहल के लिए जो सगमरमर गया था वह यही का था। मकराने की ये खानें आज भी अपनी विशेपता के लिए विख्यात हे। जैसलमेर का पत्थर अपने रग के सौन्दर्य के कारण शौकीनो के कमरो मे मेजो के रूप मे जहा–तहा कही भी मिल जायेगा। बीकानेर और जोधपुर मे कई प्रकार के लवरा तथा 'जिप्सम' (Gypsum) 'सोडियम' (Sodium), आदि उपलब्ध होते हैं जिनके व्यापार से यह प्रदेश समृद्धि को प्राप्त हो सकता है। उदयपुर और उसके आसपास मूल्यवान पत्थर की खानें है। बयाना (भरतपुर) खेतडी (शेखावाटी) आदि अनेक स्थानो मे खनिजो की प्राप्ति के लिए प्रयत्न हुए है और यह व्यवसाय अच्छे रूप मे चल रहे हे परन्तु वैज्ञानिक ढग से इनका सदुपयोग करने की ओर राजस्थान सरकार का ध्यान अभी आकृष्ट हुआ है।

राजस्थान की वनस्पतियो मे अनेक वृक्षो का नाम लिया जा सकता है। उदयपुर, कोटा और भरतपुर के वन राजस्थान की विशेष सम्पत्ति हे। यहा अनेक प्रकार की लकडी मिलती है। आम, इमली, महुआ, सागवान, धामण (फालसा) टीबरू, सालर, सेमल, गूगल, नीम, शीशम, जामुन, खजूर, खैजडी, बबूल, आवला, बहेडा, धौ, हिंगोर, कालिया, कडाया, ढाक आदि अनेक प्रकार के वृक्ष विभिन्न भागो मे पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं। केन्द्रीय सरकार की ओर से अधिक से अधिक वृक्षो को लगाने का कार्य भी आरभ हो गया है। प्रत्येक वर्ष वन–महोत्सव मनाया जाता है। वायुयान द्वारा रेतीली भूमि मे बीज डालने का प्रयत्न दो वर्षो से होरहा है यद्यपि इसमे सफलता नही मिल पाई है।

राजस्थान के जगली पशुओ मे सिंह, चीता, भालू, हिरन, चीतल, नीलगाय, बघेरा आदि उल्लेखनीय है। हिरन को छोडकर शेष अन्य पशुओ का बाहुल्य उन्ही स्थानो मे मिलता है जहाँ घने जगल और जलाशय है। कोटा, भरतपुर, उदयपुर, अलवर और जोधपुर का कुछ भाग इनके लिए प्रसिद्ध है। विश्नोई जाट हरिन को बडा पवित्र मानते है और उसका शिकार नही करने देते। यदि भूल से कोई शिकारी

उनके गाव के आसपास हिरन का शिकार करले तो शिकारी को मृत्यु तक का सामना करने का योग मिल सकता है।

राजस्थान की ऐतिहासिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ

वर्तमान राजस्थान अथवा उसमे सम्मिलित राज्यो का पूर्ण इतिहास यहा देना न तो सभव ही है और न वाछनीय ही। जहा तक हमारे प्रबन्ध का सबध है इन राज्यो की साहित्यसेवा का आरभ उस समय से होता है जब उनका वर्तमान रूप बहुत कुछ स्थिर हो चुका था। अतएव इन राज्यो के निर्माण का इतिहास रोचक होते हुए भी हमारी परिधि से परे की बात है परन्तु यदि वर्तमान, अतीत का परिणाम होता है तो साहित्यिक परिस्थितियो के लिए पूर्व इतिहास की रूपरेखा मे जाना ही पडेगा क्योकि साहित्य कुछ विचारधाराओ का लिपिबद्ध इतिहास भी होता है और ये विचारधाराएँ न तो क्षण मे निर्मित होती है और न क्षण मे परिवर्तित ही।

इतिहास के प्रागऐतिहासिक काल के उपलब्ध विवरण हमारी समस्या पर अधिक प्रकाश नही डालते। मौर्यो के पश्चात् से ईसा की प्रथम शताब्दी के आरभ होने तक का इतिहास हमे यही बताता है कि जिस भूभाग को आज हम 'राजस्थान' कहते है उसके कुछ विभिन्न अशो मे यौधेय, शिवि और मालव नाम के गणतत्र राज्य थे। विविध स्थानो की खुदाई मे जो मुद्राये प्राप्त हुई है उनसे प्रतीत होता है कि राजस्थान के कुछ भाग उपरोक्त गणतत्रो के अश थे। पूर्वी राजपूताना मे यौधेयो का आधिपत्य था और उनकी भूमि का विस्तार कहा तक था इस निष्कर्ष पर उनकी मुद्राओ से प्रकाश पडता है[1]। इसकी पुष्टि विजयगढ के गुप्तकालीन शिलालेख से भी होती है। चित्तौड के 'मध्यमिका जनपद' का सम्बन्ध भी शिवि जाति से प्रमाणित होता है यथा 'मझ्मिकाय सिविजन पदस'। शिवि मुद्राएँ इस परिणाम की साक्षी है[2]। जयपुर राज्य के अन्तर्गत 'नगर' (अथवा करकोट नगर) नामक स्थान से सुप्रसिद्ध विद्वान कार्लाइल को जो मालव मुद्राए प्राप्त हुईं उनके आधार पर उन्होने उक्त भूमि पर मालवो का आधिपत्य स्वीकार किया है[3]। इनके अतिरिक्त बैराठ[4], रैढ[5], साभर[6], एव मध्यमिका नगरी से प्राप्त

---

1. Catalogue of the coins of Ancient India by John Allen.
2. Cunningham's Archeological Survey of India. Annual Reports Old Series VI pp. 200ff.
3. Ibid 1§119-21
4. D R.Sahni Archeological Remains and Excavations at Bairat. P. 21-22, 32-35.
5. K.N Puri, Report of Reirh Excavations, P. 49, 70.
6. Journal of the Numismatic Society 1: Page 54.

ग्रीकवर्गीय मुद्राओ[1] के अनुसार इस भूभाग का सम्बन्ध यूनानियो से स्पष्ट प्रतीत होता है।

ईसा की तीसरी शताब्दी तक कुषाण और पश्चिमी क्षत्रपो का प्रभाव इस भूभाग पर था। साभर की मुद्राओ मे हुविष्क और वासुदेव के सिक्के इसके प्रमाण मे प्रस्तुत किये जा सकते है।[2] ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी के लेख से यह भी सिद्ध होता है कि नहपान के जामातृ उषवदात ने मालवो को मार भगाया था और रूद्रदामन ने यौधेयो को जीता था। शर्वानीया (बासवाडा) मे प्राप्त क्षत्रप शासक वर्ग की मुद्राएँ भी इस विषय पर कुछ प्रकाश डालती है। यूपस्तम शिलालेखो से जो नादसा (उदयपुर), बरनाला (जयपुर), बडवा (कोटा), विजयगढ (भरतपुर), और नगर (जयपुर) मे प्राप्त हुए है उनसे यह पता चलता है कि इन स्थानो मे कुछ जातियो के प्रमुख अपना स्वत्व रखते थे और यहा पर सप्त सोमयज्ञ हुए थे। राजस्थान के इतिहास मे यूप–शिलालेखो का वडा महत्त्व है। यदि इनसे यह परिणाम निकाला जाय कि गुप्त राजाओं के इस ओर न वढने देने मे इन प्रमुखो ने विशेष भाग लिया होगा तो अत्युक्ति न होगी। यह तो मानी हुई बात है ही कि गुप्त-वशी राजाओ ने पश्चिमी क्षत्रपो को हटाकर उन्हे ५ वी शताब्दी तक नष्ट–भ्रष्ट कर डाला। राजस्थान का पर्याप्त भाग शको के आक्रमणो और प्रभावो से बचा रहा, भले ही इसका श्रेय चाहे जिसे प्राप्त हो।

गुप्तवश का कोई सीधा स्वामित्व यहा पर नही दिखाई देता यद्यपि मदसौर (दशपुर) तक उनके साम्राज्य की विस्तार सीमा थी और जयपुर मे 'मोती डूगरी' से प्राप्त मुद्राये तथा 'बयाना' मे प्राप्त उनकी सुवर्ण मुद्राओ से उनके प्रभाव का प्रमाण अवश्य मिलता है। गुप्तवश के राज्यकाल मे ही हूणो के आक्रमण भारत मे हुए और स्कन्दगुप्त ने किस प्रकार उनका दमन किया यह इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है। इन हूणो के ससर्ग से राजस्थान कितना प्रभावित हुआ इसका विवरण इतिहास के विद्यार्थियो के लिये महत्त्वपूर्ण है।[3]

पाचवी शताब्दी से लेकर सातवी शताब्दी के मध्य तक इन भूभागो का क्या होता रहा ? यह स्वय खोज का विषय है। 'ऐतिहासिक काल' मे भारत के जिन सौलह जनपदो का नाम लिया जाता है उनमे 'मत्स्य' या 'मच्छ' का उल्लेख मिलता है। यह जनपद वर्तमान जयपुर, अलवर और भरतपुर के कुछ अ शो से मिलकर

---

1 **Rajputana-ka-Itihas by Ojha, Vol. I P. 1.**

2. **The Sanbhar coins P. 28.**

३. **राजपूताना का इतिहास, ओझा भाग १, पार्ट १, सं० १९२७**

वना था ।[1] मत्स्य की राजधानी विराटनगर थी जो आज वैराठ के रूप मे विद्यमान है। यद्यपि उसका समस्त वैभव नष्ट-भ्रष्ट हो चुका है। इस क्षेत्र पर चैदि कुल का राज्य स्थापित हो चुका था। गोपथ ब्राह्मण मे (प्रथम २ ६) मत्स्य के साथ शाल्व जनपद का उल्लेख मिलता है। डा० वासुदेव शरण ने इस जनपद के क्षेत्र को अलवर से लेकर वीकानेर के उत्तर तक विस्तृत माना है।[2] इसी से सबधित 'शाल्वेयक' शब्द आया है जिसका अभिप्राय महाभारत के अनुसार एक विशेष जाति से है। अलवर मे शाल्व-पुत्र नाम अभी तक प्रचलित है। सभवत शाल्वयक, शाल्व पुत्र, शाल्व जाति और जनपद, सबधी शब्द है। अन्य भूभागो मे अन्य जातिया अपनी सत्ता जमा रही थी। कभी उनकी सीमाये घट जाती थी और कभी वढ जाती थी।

७ वी शताब्दी के पश्चात भारत के उत्तर-पश्चिम मे मुसलमानो के आक्रमण आरभ हुए। मारवाड मे अरव मुद्रा की प्राप्ति इसकी द्योतक है। इनके अनुसार अरब निवासी पहले आये थे परन्तु दसवी शताब्दी तक गुर्जरो और प्रतिहारो ने उन्हे यहाँ से भगा दिया। पश्चिम राजस्थान अव गुर्जर और प्रतिहारो की सत्ता के आधीन हो गया। महमूद गजनवी के आगमन तक चौहान और राष्ट्रकूट भी इस क्षेत्र मे आकर अपना राज्य स्थापित कर चुके थे। जैसलमेर, साभर, मेवाड, मारवाड आदि सभी रियासतो का इतिहास उनके निर्माण एव उत्थान का साक्षी है। ११वी शताब्दी मे करौली और १२ वी शताब्दी मे आमेर मे कछवाहो का राज्य स्थापित हो गया था।

इस प्रकार देखा जाता है कि बावर का विरोध करने के लिये जव राणा सागा अपनी सम्मिलित सेना लेकर पहुँचे तो वर्तमान राजस्थान राज्य की भूतपूर्व रियासतो की रूपरेखा वन चुकी थी। मुगलो की नीति, राजस्थान के राजाओ की दिल्ली और आगरे के वादशाह के प्रति सेवाये, परस्पर राजपूतो का विरोध आदि अनेक परिस्थितियो ने इन रियासतो को समयानुकूल घटाया और वढाया।[3]

अन्त मे अग्रेजो का राज स्थापित होने पर प्रत्येक रियासत अपने तत्कालीन अस्तित्व को प्राप्त हुई और उनसे राजा-महाराजाओ की जो सधिया हुई वे तभी

---

1 The Age of Imperial Unity, Bhartiya Vidya Bhawan History P. 1-17.

2. V. S. Agarwal-India as known to Panini P. 55.

३ इस विषय मे दृष्टव्य है : (1) राजपूताना का इतिहास-म. म. प. गौरीशकर ही. ओझा

(11) कोटा राज्य का इतिहास-डा. मथुरालाल शर्मा।

टूटी जब इन रियासतो का विलीनीकरण वर्तमान राजस्थान के रूप मे सन् १९४९ को समाप्त हुआ।

इस प्रकार हम देखते है कि राजस्थान के निर्माण मे देशी, विदेशी, जाति-परिवार और व्यक्तियो का बडा भारी हाथ रहा। वास्तव मे इस प्रश्न पर स्वय खोज की आवश्यकता है। हमारे लिये तो यह शाति, अशाति और सघर्ष जिस रूप मे साहित्य निर्माण करने मे सहायक अथवा विरोधी हुए वही रूप महत्त्वपूर्ण है जिसका वर्णन यथास्थान आ गया है!

राजस्थान की सस्कृति—हिन्दू सस्कृति परम्परा: अभारतीयो की सस्कृति के सम्पर्क और उसके प्रभाव के परिणामस्वरूप समाज की विचारधारा

यह सौभाग्य का विषय है कि राजस्थान के भूभागो की सभ्यता के विकास 'चिन्ह' पाषाण-युग '(Palaeolithic Age) से ही मिलने आरम्भ हो जाते हैं। यद्यपि यह सामग्री बहुत अधिक नही है परन्तु शृखलाबद्ध इतिहास की कुछ कडियो का काम इससे अवश्य निकल आता है। चित्तौडगढ के नीचे बहने वाली गभीरा नदी के उपकूलो पर उस युग मे मनुष्यो द्वारा प्रयुक्त प्रस्तर अस्त्र यथा (Hand Axe) की उपलब्धि हुई है। पुरातत्व विभाग के पश्चिम मडल के अध्यक्ष श्री देशपाडे ने इस सामग्री को खोज निकाला है[1]। प्रागैतिहासिक युग से सबधित कुछ सामग्री राजस्थान के विभिन्न स्थानो मे उपलब्धहुई है।[2] सन् १९४२ ई मे प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता एव पुरात्तत्व मर्मज्ञ विद्वान ऑरेलस्टीन ने एक लेख Geographical Journal (1942) मे प्रकाशित कराया था[3]। इस विषय पर अभी तक उनकी अप्रकाशित एक पुस्तक भी है[4]। इस पुस्तक के आधार पर जैसलमेर और बीकानेर के कुछ भागो मे जब खुदाई की गई तो बीकानेर राज्य के अन्तर्गत रग महल नामक स्थान पर सरस्वती एव दृपद्वती की सगमस्थली के चिह्न स्पष्ट रूप से पता चलते है। तीर्थराज प्रयाग की

---

१. अभी तक ये सूचनायें अप्रकाशित हैं। केवल निजी जानकारी के आधार पर यह उल्लेख किया जा रहा है।

२. विशद विवेचन हेतु द्रष्टव्य डा. एच. डी सांकलिया का लेख 'The Condition of Rajputana in the Past'-Bulletin of the National Institute of Science in India, no. 1 1952, PP. 43-50

3. A Survey of Ancient Sites along the Saraswati River by Aurel Stein.

4. An Archeological Tour along with the lost Sarswati River by Aurel Stein.

तरह रगमहल का महत्त्व भी किसी पुण्यतीर्थ से कम नही है ये चिह्न राजस्थान की प्राचीन ऐतिहासिकता और सभ्यता के द्योतक हैं।

भारत और पाकिस्तान के विभाजन के पश्चात् जब हडप्पा और मोहे-जो-दडो (मरे हुओ का टीला) भारत के अधिकार से निकल गये तो इतिहास के विद्वानो को यह जिज्ञासा हुई कि सिन्धु की इस सभ्यता का कुछ न कुछ विकास राजस्थान मे भी कही न कही अवश्य मिलना चाहिये। पुरातत्व–विभाग के द्वारा जब पश्चिमी मडल ने इसके प्रयत्नस्वरूप खुदाई आरभ की तो बीकानेर की उपत्यका मे मृद्भाड कला (Terra Cotta) के कुछ नमूने प्राप्त हुए। इतिहासकारो का मत है कि यह सामग्री राजस्थान मे सिंधु–सभ्यता की परिचायक है और इसका विकास सौराष्ट्र तक हुआ था जैसा कि रगपुर (लिम्डी राज्य) मे भी प्राप्त मृद्भाडो से प्रगट होता है।

सिन्धु–सभ्यता के पश्चात् पूर्व मौर्यकालीन इतिहास सामग्री भी राजस्थान मे प्राप्त होती है। इस सभ्यता को Grey Weare Culture कहा जाता है। बीकानेर राज्य मे 'दोथैंडी' नामक स्थान पर प्राप्त होने वाले स्लेटी रग के पात्र इस सभ्यता के अस्तित्व के घोतक है।

परन्तु सिंधु–सभ्यता और पूर्व मौर्यकालीन सभ्यता के बीच की कडी का अभी तक कुछ भी पता नही चला है। आशा की जानी चाहिये कि कभी न कभी, कही न कही यह टूटा हुआ नाता भी जुड सकेगा।

मौर्य कालीन युग की सामग्री राजस्थान मे कई रूपो मे उपलब्ध होती है। बैराठ का शिलालेख (लगभग २५० ई पूर्व) इस भूभाग पर मौर्यो की विजय पताका का चिह्न है। इसी नगर से प्राप्त होनेवाली वस्त्र वेष्टित आहत मुद्रायें (Punched coins) उस समय के वस्त्र और उनकी बनावट पर प्रकाश डालती है। यूप–अभिलेखो से यहा होने वाले सप्त-सोम यज्ञो का अस्तित्व सिद्ध होता है। वैदिक यज्ञो की परम्परा मे ये यज्ञ महत्त्वपूर्ण कडिया कही जा सकती हैं। उत्तर मौर्यकालीन राजस्थान की सभ्यता के सबध मे विभिन्न जातियो की मुद्राओ के आधार पर गणतत्र राज्यो के अस्तित्व का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस सब सामग्री से राजस्थान की समृद्धि एव सामाजिक व्यवस्था का सकेत सुगमता से मिल जाता है। मध्यमिका नगरी पर यवन आक्रमणो का भी पता चलता है यदि चित्तौड का यह नगर वैभवशाली एव धन–धान्य पूर्ण न होता तो यवनो के आक्रमण की क्या आवश्यकता हो सकती थी।

शु ग कालीन मृणमूर्तिया एव सामर की मुद्राएँ ईसा की तीसरी शताब्दी तक इस भूभाग पर कुशान एव पश्चिमी क्षत्रपो की सभ्यता का प्रभाव प्रकट करती हैं। इस

सबध मे भी ऐतिहासिक परिस्थिति के अन्तर्गत कुछ विवरण उपस्थित किया जा चुका है । मुद्राओ की उपलब्धि से यह परिणाम सुगमता से निकलता है कि राजस्थान मे वस्तुओ के क्रय–विक्रय के सबध मे इनका प्रयोग होता था । व्यवसाय के विकास मे इस प्रकार का प्रचलन स्वय सभ्यता की एक सीढी है ।

गुप्तवशकालीन सामग्री इस भूभाग पर तत्कालीन सभ्यता के प्रभाव की सूचक है । मण्डोर तोरण स्तम्भो पर उत्कीर्ण मूर्तिया, रूपवास मे प्राप्त समूची प्रस्तर शिलाओ पर उत्कीर्ण मूर्तिया एव रग महल की कुछ मृण्मूर्तियाँ गुप्तकालीन सभ्यता के प्रभाव की द्योतक हैं ।

ऐतिहासिक काल एव तत्पश्चात् नवी शताब्दी तक राजस्थान की सभ्यता अपनी सस्कृति का विकास करती रही । दसवी शताब्दी मे गुर्जर एव प्रतिहारो ने आकर अरबो को भारत से बाहर किया और इस प्रकार राजस्थान की भारतीय सभ्यता को अक्षुण्ण बनाये रखा ।

विभिन्न मुसलमानी राज्यो की स्थापना के पहले राजस्थान की अपनी सस्कृति का निर्माण हो चुका था । यह सस्कृति जैसा ऊपर दिखाया जा चुका है अनेक युगो के समन्वय का परिणाम थी । राजनीतिक दृष्टि से राजा प्रजा का मान्य नेता था और प्रजा की रक्षा का उत्तरदायित्व उसी के ऊपर था । प्रजा अपनी उत्पत्ति का निश्चित भाग राज्य–व्यवस्था के लिये राज्य–कोष मे देती थी । राजा आदर्श रूप मे राम का प्रतिनिधि समझा जाता था और उसके प्रति प्रजा का अनन्य भक्ति भाव अभी तक भी प्रजा की नस–नस मे व्याप्त चला आ रहा है ।

धार्मिक भावना की दृष्टि से राजस्थान के विभिन्न भागो मे विष्णु, शिव और शक्ति की पूजा होती चली आ रही थी । समयानुकूल जैन धर्म के उत्थान के पश्चात् तीर्थकरो की उपासना भी इसमे सम्मिलित हो गई थी । मुसलमानो ने अपनी धर्मान्धता और राजशक्ति के मद मे चूर होकर अनेको बार राजस्थान के विभिन्न अ शो की मान मर्यादा चूर करने का प्रयास किया । कही–कही कुछ अ ंश मे वे सफल भले ही कहे जॉय परन्तु सर्वरूपेण उन्हे कही भी सफलता नही मिली । उनके अनाचारो और अत्याचारो ने राजस्थान मे जौहर जैसी प्रथा को प्रोत्साहन दिया । मानवता की दृष्टि मे यह प्रकरण भले ही वीभत्स कहा जाय परन्तु आचार की आदर्श भूमि पर इस कर्म की सराहना ही करनी पडेगी । अनेक सास्कृतिक सघर्षों ने राजस्थान की केसरिया पगडी और केसरिया बाने को सुरक्षित रखा । यह सत्य हैं कि राजस्थान मे जन्मभूमि-द्रोही भी रहे परन्तु इनकी तुलना मे शत्रुओ से लोहा लेने वालो की सख्या कही अधिक थी और इसी का यह परिणाम था कि औरगजेब जैसे कट्टर मुसलमानो के सामने भी यहा के राजाओ और सरदारो ने अपनी टेक को निभाये रखा ।

राजस्थान की सभी **जातियां आस्तिक** हैं। उन्हे अपने-अपने आत्म निवेदन के अनुकूल उपासना की स्वतत्रता पहले भी थी और अब भी है फिर भी राजस्थान की धार्मिक विचारधारा का इतिहास बडा रोचक है। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तरापथ मे पूर्व काल मे जिस प्रकार शैव धर्म की प्रधानता थी सभवत वह यहा भी रही होगी। परन्तु इसमे सदेह नही कि विष्णु–पूजा के विपय मे प्राचीनतम उल्लेख चित्तौड के अन्तर्गत माध्यमिका के निकट 'घोसुण्डी' का खडित शिलालेख है।[1] भडारकर ने इसे लगभग २०० वर्ष ईसा पूर्व का माना है। इस लघु लेख के शब्द हैं– "सर्व तातेन अश्वमेधया जिना भगवद्मया सकर्षण–वासुदेवाभ्या पूजा शिला आकारो नारायणवाटका।" बलराम और वासुदेव (कृष्ण) की पूजा वाले मन्दिर की एक दीवार के बनाने का उल्लेख इसमे स्पष्ट है। अतएव विष्णु के इन दोनो अवतारो की पूजा का प्रचलन उस समय अवश्य रहा होगा अन्यथा इस प्रकार के मदिर निर्माण की आवश्यकता ही क्या थी!

विष्णु–पूजा के प्रमाण राजस्थान के भिन्न-भिन्न स्थानो पर उपलब्ध हुए है। भरतपुर के अन्तर्गत 'कामा' (प्राचीन–काम्यवन) मे प्राप्त एक लेख से विष्णु के विभिन्न सबधो मे 'घनश्याम' और 'मधुद्विष' सबोधन भी इसी धारा के प्रचलन के द्योतक हैं।[2]

मारवाड की प्राचीन राजधानी मडौर (माण्डव्यपुर) से प्राप्त और जोधपुर के सग्रहालय मे सुरक्षित शिलालेखो मे भी, जो लगभग ८–९वी शताब्दी के माने जाते है, "केशव" और "वासुदेव" का वर्णन है। एक स्थान पर कृष्ण–गोपियो की रासलीला तक का उल्लेख मिलता है–"गोपी गिरा गोकुले श्रुत्वा राधिक्या स्वभूषण विध शारे कृत पाणिनाङ्ग गणे————रूप हरे पातु व।"

विष्णु पूजा के प्राचुर्य की पुष्टि मूर्तिकला द्वारा भी हो जाती है। रगमहल से प्राप्त गुप्तकालीन मूर्तिया[3] कृष्ण की गोवर्धन लीला, दान–लीला आदि घटनाओ को लेकर बनाई गई हैं। इनमे प्रथम दृश्य विषयक फलक विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मुकुटधारी कृष्ण ने अपने वाये हाथ से गोवर्धन पर्वत उठा लिया है। पहाड पर हिंस्त्र जीव–जन्तु उत्कीर्ण किए गये हैं और नीचे वृषभ, गोवत्स आदि त्रस्त मुद्रा मे खडे है। वनमाला पहने हुए कृष्ण इन त्रस्त जीवो का उद्धार कर रहे हैं। गान्धार शैली से प्रभावित यह फलक बीकानेर सग्रहालय मे विद्यमान है।

---

1. **Luders, List of Brahmi Inscriptions No 6**
2. **Cuningham Archeological Survey Report Pt. II. P. 57-8**
३. **आरकियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट : १९१७–१८ : पार्ट १ पे. २२ प्लेट १३**

मंडोर से प्राप्त पाषाण स्तभो पर भी कृष्णलीला सम्बन्धी सदर्भ उत्कीर्ण हुए हैं जो जोधपुर के राजकीय संग्रहालय मे सुरक्षित है।

भरतपुर राज्य के अन्तर्गत रूपवास मे जो चार वृहत्काय मूर्तिया है[1] उनमे एक मूर्ति बलदेव की भी है। इसकी लबाई २२½ फुट से अधिक है। बलराम शयन मुद्रा मे है और सप्तफणी सर्प उनके शिर पर अपना वितान ताने है।

मध्यकालीन अनेक मूर्तियो से, जो जोधपुर के अन्तर्गत ओसीया किराड़, केकिंद एव सादडी के मन्दिरो मे प्राप्त हुई हैं, हमारे कथन की पुष्टि होती है[2]। सभव है इसी प्रकार के प्रमाण राजस्थान के अन्य भागो मे भी प्राप्त होते हो।

राजस्थान की चित्रकला मे भी धार्मिक भावना की घनीभूतता स्पष्ट दिखाई देती है। कृष्णगढ का चित्र-सग्रह इस दिशा मे विशेष महत्त्व रखता है।

साराश यह कि गुप्तकाल से लेकर मध्यकाल तक विष्णु पूजा का प्रमाण राजस्थान मे मिलता है।

शैव धर्म के प्रचलन के प्राचीन प्रमाण अभी उपलब्ध नही होते। 'नगर' मे जो महिषासुर मर्दिनी की मृण्मर्ति[3] मिली है जिसे अपनी शिल्पकला के आधार पर प्रथम शताब्दी का आका जाता है उससे शक्ति की उपासना का प्रमाण अवश्य मिलता है। इसके अतिरिक्त गगधर (झालावाड) मे ५वी शताब्दी के शिलालेख मे परम वैष्णव मयूराक्ष द्वारा विष्णु सदन के अतिरिक्त डाकिनी सम्प्रकीर्ण तथा तात्रिक शैली के अनुसार निर्मित, एक 'मातृकाभवन' के निर्माण की सूचना मिलती है[4]। इस सम्बन्ध मे यह ध्यान देने योग्य है कि मा वसु धरा की 'मातृका' रूप मे पूजा के प्रमाण उत्तर भारत मे ही नही ईरान और एशिया माईनर तक मे मिलते है। सभवत 'माता' (Mother Goddess) की पूजा इसी प्रकार आरभ हुई हो।

राजस्थान के राजपूत अधिकतर शक्ति के उपासक है। वैश्य या तो जैन है अथवा वैष्णव। कायस्थ प्राय चित्रगुप्तजी को ही अपना इष्ट मानते है, ब्राह्मण प्राय सभी वैष्णव हैं। शैवो की सख्या कम है। प्रत्येक की धार्मिक भावना का स्वरूप उसके इष्ट के स्वरूप पर निर्भर है। उदयपुर का राजघराना शक्ति माता का उपासक होकर भी 'एकलिंग' को ही अपना इष्ट देवता मानता चला आ रहा

---

१. कन्निघम की आरकियोलौजिकल सर्वे रिपोर्ट, कलकत्ता, पार्ट २० पेज ९८
२. रत्नचन्द्र अग्रवाल लेख, शोधपत्रिका, उदयपुर जून १९५३ पृ. १-१२
३. रत्नचन्द्र अगवाल-लेख, ब्रह्मविद्या, अदयार (मद्रास) १९५४
४. डी. सी. सरकार सलेक्ट इन्सक्रिपशन्स वोल्यूम १ (कलकत्ता) पे. ३८३

है[1]। राजपूतो की इष्ट देवी भिन्न–भिन्न भावो से पूजी जाती है। कही वह 'चामुण्डा' माता[2] है, कही 'करणी' माता[3] कही 'सरला' माता[4] तथा कही 'सच्चिका' माता[5]। अलवर का राजघराना राम को ही अपने कुल का आदि पुरूष मानकर भगवान रूप से उनकी उपासना करता है। भरतपुर का राजघराना 'श्री गगाजी' को अपना इष्ट मानता है। कृष्णगढ मे 'कल्याण राय' के रूप श्री नाथजी की पूजा होती है। इस प्रकार राजस्थान के राजघरानो मे शक्ति और विष्णु दोनो ही उपास्य है। जनसाधारण मे ओसवाल और जैनी वैश्य ऋषभदेव और जिनेन्द्र भगवान के उपासक है। वैश्यो मे अधिकाश वैष्णव है, कुछ शैव है। वैसे देखा जाय तो समस्त राजस्थान की धार्मिक भावना सर्ववाद पर स्थित है। एक ही इष्ट की उपासना पर ज़ोर होते हुए भी अन्य देवी-देवताओ की उपासना भी प्रचलित है। कुल देवता और धर्म देवता के रूपो मे अन्तर होते हुए भी समन्वय मिलता है।

महापुरूषो की देवता–तुल्य पूजा भी राजस्थान मे प्रचलित है। 'रामदेवजी' की पूजा इसका प्रमाण है। यद्यपि यह इतिहास प्रसिद्ध महापुरूष है परन्तु इनको देवता रूप मे मानने वाले बहुसख्या मे पाये जाते है। जोधपुर के अन्तर्गत फलौदी तहसील मे 'रामदेवडा' इनके उपासकों के लिये पुण्य तीर्थस्थान है। यहा वर्ष भर मे दो वार मेला होता है जिसमे लाखो मनुष्य दूर-दूर से आकर सम्मिलित होते है। नाथद्वारा मे श्री नाथजी का मन्दिर, काकरौली मे द्वारिकाधीश का मदिर और कोटा मे मथुराधीश का मदिर, भारत के विभिन्न यात्रियो की यात्रा के आकर्षण केन्द्र है। उदयपुर की कमिश्नरी मे ऋषभदेव, जैनियो के लिये तीर्थस्थान है। अन्य सत-सम्प्रदायो का प्रभाव भी राजस्थान मे पर्याप्त है। कबीरपथी, दादू-पथी, नाथपथी, रामस्नेही आदि अनेक सतो की मान्यता का प्रभाव यहा दिखाई देता है। निहग और घरवारी, मठाधीश और गादीधारी, जोगी और दरवेश सभी किसी न किसी भाग मे दिखाई देते है। वास्तव मे राजस्थान की धार्मिक और साम्प्रदायिक परम्पराएँ विभिन्न होते हुए भी सम्पन्न है और यहा की विचारधाराओं, साहित्य तथा कलाओ पर इनका प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

सामाजिक व्यवस्था का रूप प्राचीन धार्मिक परम्परा पर ही स्थित है। वर्ण-भेद यहाँ भी पाया जाता है। आश्चर्य तो तब होता है जब श्मशान मे मृतशरीर का

---

१. देखिये एकलिंग महात्म्य
२. जोधपुर
३. बीकानेर
४. जयपुर
५. रतनचन्द्र अग्रवाल–लेख राजस्थान मे सच्चिका पूजन जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग २० किरण २, पृ. १–५

दाह कर्म तक निश्चित भूमि पर ही होता है और यह स्थान वह होता है जहा जाति-विशेष के मृतको का दाह कर्म किया जाता रहा है । मरने के उपरात यह जाति–भेद यहाँ की विशेषता है ।

त्यौहारो की दृष्टि से 'गणगौर' 'बडी तीज,' और 'दशहरा' अधिक उत्साह से मनाये जाते है । स्त्रियों के सतीत्व और भारत की प्राचीन मान-मर्यादा के महत्त्व को 'गणगौर' मे मूर्तिमान करके दिखाया गया है । यह गौरी पूजा का ही एक रूप है । अन्य अनेको त्यौहार भी मनाये जाते है ।

राजस्थान के लोक-गीत और नृत्य यहा के स्त्री-पुरुषो की भावनाओ पर पर्याप्त प्रकाश डालते है । 'माड' और 'रसिया' सगीत क्षेत्र मे राजस्थान की देन है । और 'झूमर' नृत्य यहा की उल्लासप्रियता की अभिव्यजना है । जोधपुर के अन्तर्गत नागौर जिले का 'डडिया नृत्य' प्राचीन रासलीला का रूपान्तरमात्र प्रतीत होता है ।

कला और कौशल के क्षेत्र मे राजस्थान का अपना स्थान विशेष रूप रखता है । यहा की छत्रिया, मन्दिर, बगीचिया सभी यहाँ की महान सस्कृति के मूक प्रतिनिधि है ।

वास्तव मे राजस्थान की सस्कृति भारतीय सस्कृति का प्रतिबिम्ब है । अनेको सस्कृतियो को आत्मसात कर उसने अपना रूप स्थिर किया है । आज भी यहा का विचार और आचार विकासोन्मुखी है अतएव कह सकते हैं राजस्थान की सस्कृति प्रगतिशील है ।

राजस्थान की सस्कृति और साहित्य की अभिव्यंजना :—

सस्कृति, हमारी वृत्ति, रहन--सहन, परम्परागत–सस्कार, शिष्टाचार एव विचारधाराओ की समवेत प्रतीक है जिसका प्रयोग किसी भूभाग विशेष की रहने वाली एक या एकाधिक जातियो की कालगत विशेषताओ के लिये होता है । यह सस्कृति एक जाति विशेष की शारीरिक क्रियाओ, मानसिक सकल्पो-विकल्पो और आत्मिक अनुभूतियो की दृश्य अथवा लिपिबद्ध अभिव्यजना है । सस्कृति का निर्माण, बच्चो के खेल की तरह, क्षणिक नही होता और न बालू के भवनो की तरह वह साधारण झोको से बिखर ही जाती है वह तो मानस के अ शभूत किसी वर्ग विशेष का स्वाभाविक क्रमगत विकास है जिसके मूल मे जन्म जन्मान्तरों की तपस्या का फल सचित रहता है और जो अपने वातावरण के विकास के साथ फलती फूलती है । यह उस क्राति का परिणाम होती है जो शनै शनै बुद्धि को विलोडित कर, विवेक का अवलम्बन ग्रहण कर, नीचे से ऊचे स्तर पर उठती है और उसका यही विकास 'सस्कृति का विकास' कहलाता है ।

सस्कृति के 'उत्थान' और 'पतन' का निर्णय केवल मानसिक तुला पर ही किया जा सकता है । शारीरिक सुख-वैभव–आनन्द, आत्मिक शाति अथवा आध्यात्मिक

आनद दोनो इस तुला के दो पलडे हैं। यह निर्णय करना कि किस पलडे को भारी समझा जाय और किसे हल्का, एक सापेक्षिक दृष्टि कोण है। कहा जा सकता है कि सस्कृति का स्तम्भ मानसिक विकास है अथवा पाश्विक प्रवृत्तियो से ऊपर उठने का प्रयास है। इस प्रयास की अभिव्यक्ति वास्तु-कला, चित्र-कला, सगीत-कला एव साहित्य कला के रूप मे हुई है। हमारे प्रबन्ध का सबध साहित्य-कला से है। साहित्य की अभिव्यजना के दो माध्यम है–डिगल भाषा और ब्रजभाषा जिसे 'पिगल' भी कहा जाता है। प्रस्तुत पृष्ठो मे ब्रज भाषा काव्य का इतिहास एव मूल्याकन दिया रहा है।

राजस्थान के मूल राजघराने :—

जिन राजघरानो की साहित्य सेवा के विषय मे प्रस्तुत प्रबन्ध मे चर्चा की गई है वे है–उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ, जैपुर, बूदी, जैसलमेर, भरतपुर, अलवर, करौली इत्यादि।

: २ :

उदयपुर का राजघराना

'जो दृढ़ राखै धर्म को, तिहि राखै करतार'

— उदयपुर का राज्य चिह्न

उदयपुर की स्थापना और उसके विकास में राष्ट्रीयता की सुरक्षा की प्रेरणा

उदयपुर राज्य प्राचीन मेवाड राज्य अथवा चित्तौड राज्य का वर्तमान नाम है। राजधानी चित्तौड नगर मे होने के कारण इस राज्य का नाम चित्तौड पडा, वैसे इस प्रदेश का नाम मेवाड होने के कारण 'मेवाड राज्य' अधिक उपयुक्त है।

वर्तमान उदयपुर नगर की स्थापना का उपक्रम सन् १५५६ ई० मार्च महीने मे आरभ हुआ। घटना बडी विचित्र है। १६ मार्च सन् १५५६ ई० को ग्यारह घडी रात गये महाराणा उदयसिंह (द्वितीय) के पुत्र कुवर प्रतापसिंह के पुत्र अमरसिंह का जन्म हुआ। इस अवसर पर महाराणा एकलिंगजी के दर्शन को गये और वहा से शिकार खेलने आहाड गाव की ओर चल दिये। अनेक साथी—सगी साथ थे। मार्ग मे महाराणा का ध्यान चित्तौड दुर्ग की सुरक्षा और जनता के आनन्द—वैभव की ओर आकर्षित हुआ। चित्तौड का पुराना इतिहास आखो के सामने था। परिस्थिति ऐसी होती कि चारो ओर से घेर कर शत्रु, किला—निवासियो को खाने पीने की सामग्री से वचित कर सुगमतापूर्वक उन्हे भूखो मरने पर किला छोडने के लिये विवश कर सकता था—यह सत्य किसी से छिपा नही था। आहाड के पहाडी स्थान पर नई राजधानी बनाने की बात इसी कठिनाई और दूरदर्शिता के परिणामस्वरूप सभी साथियो द्वारा स्वीकृत हुई। दूसरे दिन पिछौला तालाब के पास वाली पहाडी पर झाडी मे बैठे हुए एक साधू के दर्शन महाराणा को हुए। उसने भी उन्हे जय का आशीर्वाद दिया और उनके राज्य—वश के अक्षुण्ण बने रहने की भविष्यवाणी की। उसी स्थान पर महाराणा ने 'पानेडा' महल की नीव अपने हाथों डाली। उदयसागर का निर्माण भी इसी समय आरभ हुआ।

इस प्रकार उदयपुर मेवाड राज्य की दूसरी राजधानी के रूप मे स्थापित हुआ और निरतर विकसित होता गया । महाराणा उदयसिंह की दूरदर्शिता कितनी उपयोगी सिद्ध हुई, इस राजघराने का इतिहास इसका साक्षी है । राजस्थान प्रदेश की स्वतत्रता और भारत की राष्ट्रीयता की रक्षा मे इस नगर और इस राजघराने का प्रमुख महत्व है ।

राजघराने की साहित्यिक परम्परा

जैसा पहले अध्याय मे लिखा जा चुका हे उदयपुर के राजघराने का इतिहास बड़ा पुराना है परन्तु हमारे विषय का सबध उस काल से है जब राणा कु भा चित्तौड मे राज्य (सन् १४३३) करते थे । राणा कु भा ने अपने पूर्वजो से जिस वीरता की परम्परा प्राप्त की थी वह तो सुरक्षित रखी ही, उसके साथ–साथ उनके कला–कौशल, प्रेम एव विद्यानुराग ने उनके व्यक्तित्व को और भी अधिक समुज्जवल कर दिया । अनेको युद्धो मे भाग लेने वाले कीर्तिस्तभ के स्थापक इस महाराणा के विषय मे एकलिंग माहात्म्य मे उन्हे वेद, स्मृति, मीमासा, उपनिषद्, व्याकरण, राजनीति और साहित्य निपुण घोषित किया गया है[1]। सगीत–विषयक अनेक रचनाओ का होना भी कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति से प्रमाणित है[2]। महाराणा की रचनाओ मे 'सगीत राज'[3] 'सगीत मीमासा', एव 'सूड प्रबन्ध' मौलिक कहे जाते हैं । 'चण्डीशतक की व्याख्या' और 'गीत गोविन्द' पर 'रसिक प्रिया' नाम की टीका के लेखक के रूप मे भी महाराणा विख्यात हैं । 'सगीत रत्नाकर' की टीका भी उनकी लिखी बतायी जाती है । कुछ वर्ष हुए डा० कुहनन राजा ने सगीत सबधी एक रचना का प्रकाशन कर महाराणा की सगीत–प्रियता का प्रमाण दिया है । वैसे एकलिंग माहात्म्य के रागवर्णन अध्यायो मे कु भा की बनाई हुई अनेक देवो की स्तुतिया भिन्न-भिन्न राग–रागनियो मे बनी हुई सग्रहीत हैं । वीणावादन मे भी वे अति कुशल थे ।

सगीताचार्य होने के साथ-साथ कु भा नाट्यशास्त्र और नाट्य साहित्य मे भी बड़े दक्ष थे । कहा जाता है उन्होंने चार नाटको की रचना की थी । इनमे उन्होने महाराष्ट्री, कर्णाटी और मेवाड़ी भाषाओ का प्रयोग किया था । नाट्यशास्त्र मे वह भरतमुनि के नही वरन् नन्दिकेश्वर के मत के अनुयायी थे और उन्होंने नाट्यशास्त्र

---

१. एकलिंग माहात्म्य; रागवर्णन अध्याय, श्लोक १७२–७३

२. कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति

३. यह ग्र थ डा० कुह्नन राजा द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका है ।

के ज्ञान के कारण 'अभिनव भरताचार्य' की पदवी पाई थी। दुर्भाग्य से ये सभी ग्रथ इस समय अप्राप्य हैं।

कु भा के आश्रय मे कला-कौशल और साहित्य को वडा प्रोत्साहन मिला। शिल्प सम्बन्धी अनेक पुस्तको की रचना इनके राज्याश्रय मे हुई। इनमे सुथार मडन कृत 'देवता मूर्ति प्रकरण' 'प्रासाद मडन', 'राजवल्लभ', 'रूपमडन', 'वास्तु मडन', 'वास्तु शास्त्र', 'वास्तु सार' और 'रूपावतार' एव इसी के भाई नाथ द्वारा लिखित 'उद्धार धौरणी', 'कलानिधि' तथा 'द्वार दीपिका' का उल्लेख डा० भडारकर ने अपनी रिपोर्ट मे किया है[1]। कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति के श्लोको के लेखक कवि अत्री और उनके पुत्र कवि महेश थे। अपने पिता की मृत्यु के उपरात प्रशस्ति का कार्य सम्पन्न करने के लिये महेश को राणा ने दो मदमत्त हाथी, सोने की डडीवाले दो चवर, और एक स्वेत छत्र प्रदान किया था।

साहित्यप्रेमी, सगीताचार्य, दर्शनविद्, विद्वानो के सम्मानकर्त्ता और कला-कौशल के प्रसारक इस व्यक्ति को सन् १४६८ मे उसके पुत्र उदयसिह ने अपनी कटार से मार डाला। महाराणा कु भा अपने पीछे अपनी कीर्तिपताका उडाते हुए भौतिक क्षेत्र से अवश्य चले गये परन्तु उनकी प्रेरणा साहित्य और साहित्यकारो को सदैव उत्साहित करती रही। मेवाड की साहित्यिक धरोहर राजस्थान की अमूल्य सम्पत्ति है।

कु भा के पश्चात् मेवाड राज्य पर फिर अरक्षा और आपत्ति के बादल मडराते रहे। उनके उत्तराधिकारी उदयसिह और रायमल के पश्चात् राज्य की बागडोर महाराणा सागा के हाथ मे आई। महाराणा सागा अपनी वीरता के लिये इतिहास प्रसिद्ध है। उन्होने राजपूत राज्य को दृढ करने के लिये महान प्रयत्न किये। उनके उत्तराधिकारी अपने पूर्वजो के पद-चिन्हो पर चलने का प्रयास करते रहे परन्तु हमारे दृष्टिकोण से उदयपुर राज्य के लिये महाराणा कु भा के पश्चात् महाराणा प्रताप का नेतृत्व ही सबसे अधिक प्रभावशाली था। महाराणा उदयसिहकी मृत्यु २८ फरवरी सन् १५७८ ई० को हुई और उसी दिन स्वनामधन्य महाराणा प्रताप मेवाड की गद्दी के अधिकारी हुए।

उदयपुर के महाराणाओ का साहित्य

महाराणा प्रताप (रा० का० १५७२-१५९७) के जीवन की प्रत्येक घटना राजस्थान के गौरव और उसकी शानदार परम्परा की द्योतक है। यद्यपि महाराणा

---

1. **Report of a second tour in search of Sanskrit Mss. in Rajputana and Central India in 1904-6, Page 38**

प्रताप स्वय साहित्यकार नही थे न उन्हे इतना अवकाश ही जीवन मे मिला जिसके कारण वह साहित्य अथवा कला–कौशल की उन्नति करने मे समर्थ होते परन्तु वह स्वय वीर रस की कविता के लिए मूर्तिमान आलम्बन बने। उनके व्यक्तित्व ने अनेको को कवि, साहित्यकार, इतिहास–लेखक बना दिया। 'राणारासौ' 'महाराणा यश प्रकाश' 'वश भास्कर' आदि पुस्तके और अनेको प्रशस्तिया महाराणा के जीवन से अपनी प्रेरणाये ग्रहण करती है। हल्दी घाटी का युद्ध आज भी अनेको कवियो मे वीरता का उल्लास भर देता है। इस विपय पर अनेको कविताये और एक प्रवन्ध काव्य लिखा जा चुका है[1]।

प्रताप के जीवन की वे घटनाएँ, जिनको लक्ष्य कर पृथ्वीराज और दुरसाजी आढा जैसे कवियो ने उन्हे अपनी कविता का आलम्बन बनाया, किसे याद नही होगी? प्रसिद्ध है कि एक दिन अकवर ने पृथ्वीराज से कहा कि प्रताप उन्हे "बादशाह" कहने लग गया है। पृथ्वीराज के हिन्दू गौरव ने यह स्वीकार न किया। अन्त मे महाराणा प्रताप के पास उन्होने निम्न दोहे भेजे

पातल जौ पतसाह, बोले मुख हूंतां वयण।
मिहर पछम दिसमांह, ऊगै कासप रावउत ॥१॥

पटकू मूंछा पाण, कै पटकू निज तन करद।
दीजै लिख दीवाण, इण दो महली बात इक ॥२॥[2]

—हे प्रताप! यदि तुम अपने मुख से अकवर को "वादशाह" कहो तो कश्यप का पुत्र सूरज (मिहर) पश्चिम मे उग जावे। अर्थात् यह तुमसे सभव नही। तुम कृपा कर, दो मे से एक बात लिख दो–अपनी मूछो पर ताव दू अथवा अपनी करद (तलवार) का प्रहार अपने शरीर पर करलूँ।

पत्र पाते ही महाराणा ने जो उत्तर दिया वह इस प्रकार है.

तुरक कहासी मुख पतौ, इण तन सूँ इक लिंग।
ऊगै जाही ऊगसी, प्राची बीच पतग ॥१॥

खुसी हूत पीथल कमध, पटको मूंछां पाण।
पछटण है जेते पतौ, कलमां सिर के वाण ॥२॥

साग मूंड सहसीस कौ, समजस जहर सवाद।
भड़ पीथल जो तौ मलां, वैण तुरक सू बाद ॥३॥

---

१. 'हल्दी घाटी'–ले० श्यामनारायण पाडेय
२. महाराणा यश प्रकाश–ठा. भूरसिंह शेखावत, पृ. ८७

—इकलिंगजी प्रताप के इस तन और मुख से तो बादशाह को तुरक ही कहलावेंगे और सूर्य जहा प्राची दिशा मे उगते है वही उगेगे। कमध्वजवशी पृथ्वीराज प्रसन्न होकर मूछो पर ताव दो जब तक प्रताप की तलवार कलमा पढने वाले यवनो के सिर पर है।

—प्रताप अपने सिर पर साग का प्रहार सहेगा। समान स्थिति वाले व्यक्ति का यश विष के स्वाद जैसा होता है। हे पृथ्वीराज ! तुम तुरक से वचनो के वाद-विवाद मे भलीभाति जीत प्राप्त करो। अर्थात् बातो की लडाई आप जीतो मैं तो शस्त्रो की विजय चाहता हूँ।

उत्तर पाकर हर्ष से पृथ्वीराज का हृदय परिपूर्ण होगया और महाराणा की प्रशस्ति मे उन्होंने एक पूरा गीत लिख डाला जो इस प्रकार है :—

नर जैथ निमाण निलजी नारी
अकबर गाहक बट अबट ॥
चौहटै तिण जायर चीतौडो,
बेचे किम रजपूत बट ॥१॥

रौजायतां तणौं नवरौजै,
जैथ मसाणा जणौं जण ॥
हींदू नाथ दिल्लीचे हाटे,
पतौ न खरचै खत्रीपण ॥२॥

परपच लाज दीठ नह व्यापण,
खोटो लाभ अलाभ खरो ॥
रज बेचवां न आवै राणो,
हाटै मीर हमीर हरौ ॥३॥

पैखै आपतणा पुरसोतम्,
रह अणिमल तणों बलराण ॥
खत्र बेचिया अनेक खत्रियां,
खत्र वट थिर राखी खुम्माण ॥४॥

जासी हाट बात रहसी जग,
अकबर ठग जासी एकार ॥
है राख्यौ खत्री ध्रम राणौ,
सारा लै बरतौ ससार ॥५॥

—जहा पर मानहीन पुरुष और निर्लज्ज स्त्रिया हैं और जैसा चाहिए वैसा ग्राहक अकबर है, उस बाजार मे जाकर चित्तौड का स्वामी (प्रतापसिंह) रजपूती को कैसे बेचेगा ? ॥१॥ मुसलमानो के नौरोज मे प्रत्येक व्यक्ति लुट गया, परन्तु हिन्दुओ का पति प्रतापसिंह दिल्ली के उस बाजार मे अपने क्षत्रियपन को नही बेचता ॥२॥ हमीर का वशधर राणा प्रतापसिंह प्रपन्ची अकबर की लज्जाजनक दृष्टि को अपने ऊपर नही पडने देता और पराधीनता के सुख के लाभ को बुरा तथा अलाभ को अच्छा समझ कर बादशाही दूकान पर रजपूती बेचने के लिए कदापि नही आता ॥३॥ अपने पुरखो के उत्तम कर्त्तव्य देखते हुऐ आप (महाराणा) ने भाले के बल से क्षत्रिय धर्म को अचल रखा, जबकि अन्य क्षत्रियो ने अपने क्षत्रियत्व को बेच डाला ॥४॥ अकबर रूपी ठग भी एक दिन इस ससार से चला जायेगा और उसका यह हाट भी उठ जायेगी, परन्तु ससार मे यह बात अमर रह जायेगी कि क्षत्रियो के धर्म मे रहकर उस धर्म को केवल राणा प्रतापसिंह ने ही निभाया। अब पृथ्वी भर मे सबको उचित है कि उस क्षत्रियत्व को अपने वर्ताव मे लावें अर्थात् राणा प्रतापसिंह की भाति आपत्ति भोगकर भी पुरुषार्थ से धर्म की रक्षा करें ॥५॥

जिस महाराणा प्रताप के लिए प्रशस्तियो मे लिखा मिलता है

कृत्वा करे खड्गलतम स्ववल्लभाम्,
प्रतापसिंघे समुपागते प्रगे
सा खडिता मानवती द्विषच्चूम,
सकोचयन्ती चरणौ पराङमुखी ॥

—प्रात काल जब प्रतापसिंह खडग-लता रूपी अपनी वल्लभा को हाथ मे पकडे हुए आया तो उसको देख शत्रुसेना रूपी मानवती खडिता होगयी और उल्टे पैरो लौट गई।

उसी महाराणा प्रताप के लिए दुरसाजी के सोरठे, महाराजा मानसिंह का सोरठा और राठौड पृथ्वीराज के दोहे उपयुक्त प्रशस्या हैं।
दुरसा के सोरठे —

—१—

अकबर गरब न आण, हींदू सह चाकर हुवा।
दीठौ कोई दीवाण, करतौ लटका कटत है ॥

—हे अकबर ! सब हिन्दू (राजाओ) के तेरे चाकर होजाने पर गर्व मत कर। क्या किसी ने दीवाण (महाराणा) को शाही कटहरे के आगे झुक-झुक कर सलाम करते हुए देखा है ?

—२—

कदै न नामै कध, अकबर ढिग आवै न औ ।
सूरजवश सबध, पालै राण प्रताप सी ।।

—वह (महाराणा) न तो कभी अकबर के पास आता है और न सिर नमाता है । राणा प्रतापसिंह तो सूर्यवश की मर्यादा का पालन करता है ।

—३—

सुखहित स्याल समाज, हिंदू अकबर बस हुआ ।
रोसीलो मृगराज, पजै न राण प्रताप सी ।।

—अपने सुख के निमित्त गीदडो के झुड के समान हिन्दू अकबर के आधीन होगये, परन्तु खीझे हुए सिह जैसा राणा प्रतापसिह उससे कभी नही दबता ।

—४—

लोपै हिन्दू ताज, सगपण रोपै तुरग सू ।
आरज कुल री आज, पू जी राण प्रताप सी ।।

—हिन्दू (राजा) कुल की लज्जा को छोडकर यवनो से सम्बन्ध जोड़ते हैं, अतएव अब तो आर्य कुल की सपत्ति राणा प्रतापसिंह ही है ।

—५—

अकबर पथर अनेक, कै भूपत भेला किया ।
हाथ न लागो एक, पारस राण प्रताप सी ।।

—अकबर ने कई एक पत्थर रूपी राजाओ को अपने यहा एकत्र कर लिया है, परन्तु पारस रूपी एक राणा प्रतापसिंह ही उसके हाथ नही लगा ।

—६—

अकबर समद अथाह, तिह डूबा हिन्दू तुरक ।
मेवाड़ो तिण मांह, पोयण फूल प्रताप सी ।।

—अकबर रूपी अथाह समुद्र (जलाशय) मे हिन्दू और मुसलमान डूब गये, परन्तु मेवाड का स्वामी प्रतापसिंह कमल के पुष्प के समान उसके ऊपर ही शोभा दे रहा है ।

—७—

अकबरिये इक बार, दागल की सारी दुनी ।
अणदागल असवार, एकज राण प्रताप सी ।।

—अकबर ने एक बार मे ही सारी दुनिया के दाग लगा दिया है परन्तु एक राणा प्रतापसिंह ही बिना दाग वाले घोडे पर सवार होता है ।

—८—

अकबर घोर अंधार, ऊंघाणा हिन्दू अवर ।
जागे जगदातार, पोहरे राण प्रताप सी ।।

अकबर रूपी घोर अन्धेरी रात मे अन्य सब हिन्दू नीद मे सो रहे हे परन्तु जगत् का दाता प्रतापसिंह जगता हुआ पहरे पर खडा है ।

—९—

गौहिल कुल धन गाढ, लेवण अकबर लालची ।
कौडी दे नह काढ, पणधर राण प्रताप सी ।।

—गोहिल (गुहिलोत) वशरूपी गहरी सम्पत्ति को लालची अकबर लेना चाहता हे, परन्तु प्रणवीर राणा प्रतापसिंह एक कौडी भी लेने नही देता ।

जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह कृत सोरठा—

गिरपुर देस गमाइ, भमिया पग–पग भाखरा ।
मह अजसे मेवाड़, सह अजसे सीसोदिया ।।

—महाराणा प्रतापसिंह अपने पर्वत, नगर और देश को खोकर पहाडो मे जगह जगह फिरा, इसीसे आज मेवाड देश और सीसोदिया कुल गर्व करते है ।

बीकानेर नरेश राठौड पृथ्वीराज कृत दोहे—

—१—

माई एहापूत जण, जैहा राण प्रताप ।
अकबर सूतो ओधके, जांण सिराणें साप ।।

—हे माता ! ऐसे पुत्र को जन्म दे जैसा कि राणा प्रतापसिंह है, जिसको सिरहाने के पास रहता हुआ साप जानकर, अकबर चौक उठता है ।

—२—

घर बांकीदिन पाधरा, मरद न चूके माण।
घणां नरिंदां घेरियो, रहे गिरदा राण॥

—जिसकी भूमि अत्यन्त विकट (पहाडोवाली) है, जिसके दिन अनुकूल हैं, जो मर्द अपने अभिमान को नही छोडता वह राणा (प्रतापसिह) बहुत से राजाओ से घिरा हुआ पहाडो मे रहा करता है।

वास्तव मे महाराणा का व्यक्तित्व साहित्य के लिए एक महान् व्यक्तित्व था। उसी के कारण दुरसाजी को महाराणा की मृत्यु के समाचार पर अकबर की दशा का वर्णन निम्न प्रकार से करना पडा।

छप्पय

अस लैगो अणदाग, पाघ लेगो अण नामी।
गो आडा गवडाय, जिको बहतो घुर वामी॥
नवरोजे नह गयो, न गो आतसां नवल्ली।
न गो झरोखां हैठ, जैठ दुनियाण दहल्ली॥
गहलोत राण जीती गयो, दसण मूद रसणा डसी।
वीसास मूक भरिया नयण. तो मृत शाह प्रताप सी॥

—हे गुहिलोत राणा प्रतापसिंह! तेरी मृत्यु पर शाह (बादशाह) ने दातो के बीच जीभ दबाई और विश्वास के साथ आसू टपकाये क्योकि तूने अपने घोड़े को दाग नही लगने दिया, अपनी पगडी को किसी के आगे नही झुकाया, तू अपना आडा (यश) गवा गया, तू अपने राज्य के धुरे को बाये कधे से चलाता रहा, नौरोज़ मे न गया न आतसो (बादशाही डेरा) मे गया, कभी शाही झरोखे के नीचे खडा न रहा और तेरा रोब दुनिया पर गालिब था, अतएव तू सब तरह से जीत गया।

महाराणा प्रताप के उत्तराधिकारी महाराणा अमरसिंह अपने पिता के समान निरन्तर युद्धो मे मग्न रहे। धीरे-धीरे उनके राजपूतो की सख्या कम होने लगी और अन्त मे समय की परिस्थिति को देखकर उन्होने बादशाह जहागीर से सधि करली परन्तु अपने पिता की प्रतिज्ञा को याद कर यह स्थिति उन्हे हमेशा दु ख देती रही और अन्त मे उन्होने अपने पुत्र को राज्याधिकार सौपकर एकान्तवास ले लिया। महाराणा अमरसिह न्यायी, सुकवि और विद्वानो के आश्रयदाता थे। जिन दिनो बादशाही फौजो ने इनका सारा मुल्क ले लिया था और इनको पहाडो मे भी

रहने के लिए स्थान नही मिलता था तब एक दिन इन्होंने अब्दुल रहीम खानखाना को एक पत्र मे निम्न दोहे लिखे—

हाडा कूरम राठवड़, गोखां जोख करत।
कह जो खांनाखाननैं, (म्हे) बनचर हुआ फिरत ॥१॥

तंवरा सूं दिल्ली गई, राठौडा कनवज्ज।
अमर पयंपे खानने, वो दिन दीसे अज्ज ॥२॥

—हाडा कूरम राठौड झरोखो मे आनन्द करता है। खानखाना से कहना कि हम वनचर हुए फिरते हैं। तुवर राजपूतो से दिल्ली गई। राठौडो से कन्नौज गया। अमर के लिए भी वह दिन आज दिखाई देता है।

इस पर खानखाना को बडा दु ख हुआ। मुसलमान होते हुए भी वह आदमी को पहचानते थे। उन्होंने उत्तर मे एक ही दोहा लिखा—

धर रहसी रहसी धरम, खप जासी खुम्माण।
अमर विसंभर ऊपरां, राखो नहचौ राण ॥१॥

—खानखाना ने जबाव दिया कि भूमि रहेगी, धर्म रहेगा, बादशाह मिट जायेगा। हे राणा अमरसिंह विश्वम्भर के ऊपर है निश्चय रखो।

महाराणा की प्रशस्ति मे एक 'अमरकाव्य' नामक सस्कृत ग्रथ की भी रचना हुई और उनकी आज्ञा से बालाचार्य के पुत्र धन्वन्तरि ने उस समय की प्रचलित मेवाडी भाषा मे 'अमर विनोद' नामक ग्रथ बनाया। इस ग्रथ मे हाथियो से सम्बन्धित अनेक ज्ञातव्य बातो का वर्णन है।

महाराणा अमरसिंह की मृत्यु के पश्चात् क्रमश महाराणा करणसिंह और जगतसिंह उदयपुर की गद्दी के अधिकारी हुए। करणसिंह ने अनेक महल अपने राज्यकाल मे बनवाये परन्तु साहित्यिक दृष्टिकोण से इनके राज्य की कोई उल्लेखनीय बात नही है।

महाराणा जगतसिंह (राज्याभिषेक सन् १६२८ ई०) को सम्राट शाहजहा का सम्मान प्राप्त हुआ। इन्हे अनेक युद्धो मे जय प्राप्त हुई। जगतसिंह बडे दानी थे। उनके लिये प्रसिद्ध है—

सिन्धुर दीधा सात सै, हयवर पांच हजार।
एकावन सासरण दिया, जगपत जगदातार ॥१॥

साई करे परेवड़ा, जगपत रे दरबार।
पीछोले पाणी पिया, कण चुग्गां कोठार ॥२॥

जगतौ तो जाणे नहीं, मात–पिता रो नाम।
तात पिता रटतै रहे, निसदिन यो ही काम ॥३॥

—जगदातार जगतसिह ने सात सौ हाथी, पाच हजार घोडे और इक्यावन गाव दान मे दिये। ईश्वर यदि हमे परेवा (कबूतर) भी बनावे तो जगतसिह के दरबार का, जिससे पिछौला झील मे पानी पिए और उनके कोठार (भडार) मे अन्न चुगें। जगतसिह माता और पिता का नाम तो जानते ही नही अर्थात् (ना–ना) करना समझता नही परन्तु तात पिता (दा दा–दो दो) ही रटता रहता है उसका दिन रात यही काम है।

उदयपुर मे जग–मन्दिर इन्ही का बनवाया हुआ है। विद्वानो के लिये उनके हृदय मे बडी जगह थी। नारायण वैद्य के पुत्र कवि विश्वनाथ ने 'जगत्प्रकाश' नामक १४ सर्गों का काव्य महाराणा की प्रशसा मे सस्कृत मे लिखा है।[1]

महाराणा राजसिंह–(राज्याभिषेक १६५२ ई०) महाराणा जगतसिह के उत्तराधिकारी हुए। इन्हे भी अपने पिता के समान सम्राट शाहजहा से उचित सम्मान की प्राप्ति हुई। परन्तु आगरे के सिंहासन के लिये जब शाहजहा की सन्तान मे भ्रातृ–युद्ध हुआ तो दारा शिकोह के लिखने पर भी राजसिह ने उसका साथ न दिया। यदि महाराज जसवतसिह और महाराणा राजसिह परस्पर मिलकर औरंग-जेब का विरोध करते तो भारत का मानचित्र ही कुछ दूसरा होता।

एक ओर तो महाराणा ने श्रीनाथजी की मूर्ति को उदयपुर राज्य मे ले आने का वचन दिया और दूसरी ओर जजिया का विरोध किया। इस प्रकार हिन्दुओ का नेतृत्व उन्हे स्वत ही मिल गया। महाराणा ने अपने शासन काल मे अनेको मदिर, महल और तालाब आदि का निर्माण किया। विख्यात राजसमुद्र की पाल पर महल के झरोखे के पूर्वी पार्श्व मे खुदा हुआ महाराणा का निम्न छप्पय प्रसिद्ध है –

1. **Third report of the sanskrit Mss.–Peter Paterson, Page 354-55.**

कहां राम कहां लखण, नाम रहिया रामायण।
कहां कृष्ण बलदेव, प्रगट भागौत पुरायण॥
वाल्मीक शुक व्यास, कथाकविता न करंता।
कुण सरूप सेवता, ध्यान मन कवण धरंता॥
जग अमरनाथ चाहो जिकै, सुणो सजीवण आखरा।
राजसी कहे जग राणरो, पूजो पाव कवीसरां॥

प० देवीदास के पुत्र श्री लाल भट्ट ने महाराणा राजसिंह के सम्बन्ध मे १०१ श्लोको का एक सस्कृत काव्य बनाया था। समस्त ग्रथ कल्पना परिपूर्ण है।

राजसिंह के उत्तराधिकारियो मे जयसिंह, अमरसिंह (दूसरे), सग्रामसिंह (दूसरे), जगतसिंह (दूसरे), प्रतापसिह (दूसरे) और राजसिंह (दूसरे) क्रमश उदयपुर राज्य के राणा हुए। महाराणा जयसिंह शातिप्रिय, दानी, धर्मनिष्ठ और उदार शासक थे। उनके राज्यकाल मे साहित्य की ओर कोई प्रगतिशील कदम नही उठाया गया।

महाराणा अमरसिंह (दूसरे) वीर, प्रबन्धकुशल और विलासी प्रकृति के राणा थे। उनके राज्य मे विद्वानो का सम्मान अवश्य होता था। प० हरिदेव सूरी के पुत्र प० मगल ने उनकी प्रशसा मे 'अमरनृप काव्य रत्न' की, और पल्लिवाल जाति के प० वैकुण्ठ व्यास ने उनके राज्याभिषेक विषयक काव्य की रचना की। महाराणा सग्रामसिंह (दूसरे) बडे दानी और विद्वानो का सम्मान करने वाले थे। प्रसिद्ध कवि करणीदान को उनका राज्याश्रय प्राप्त हुआ था। उनकी कविता से प्रसन्न होकर उन्हे महाराणा ने लाख पसाव (लक्ष प्रसाद) दिया।[1] निश्चय नही होता कि यह कवि करणीदान कौन से है? क्योकि एक कवि करणीदान का उल्लेख जगतसिंह के साथ आता है और दूसरा जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के आश्रित[2] कवियो मे।

'करनारो' 'जगपत' कियो, कीरति काज कुरव्व।
मन जिण धोको लै मुआ, साह दिलीस सुरव्व॥

---

१ उदयपुर राज्य का इतिहासः गौरीशकर ओझा, भाग २, पृ० ६२१
२ राजस्थानी भाषा और साहित्यः मोतीलाल मेनारिया, पृ० १७६

—जो सम्मान मेरा हुआ वह दिल्लीपति का भी नही हुआ। महाराणा जगतसिंह स्वय देवारी तक कवि को छोडने गये थे।[1]

महाराणा जगतसिंह (दूसरे) (राज्याभिषेकोत्सव सन् १७३४ ई०) बडे दयालु, वास्तुकला प्रिय, अदूरदर्शी और विलासी राणा थे। उन्हे ऐसा अवसर मिला था कि यदि वह चाहते तो समस्त राजपूतो और मरहठो को एक सूत्र मे बाध सकते थे परन्तु मेवाड और राजस्थान के भाग्य मे शाति कहा बदी थी।

महाराणा प्रताप (दूसरे) (राज्याभिषेक सन् १७५१ ई०) निर्बल राणाओ की तालिका मे आते है। मेवाड के प्राय सभी सरदार इनके समय स्वतत्र हो गये थे। साहित्यिक कोई भी प्रवृत्ति इनके अल्प राज्यकाल मे दिखाई नही देती।

महाराणा राजसिंह (दूसरे) का सप्तवर्षीय शासन काल भी बिना किसी उल्लेखनीय घटना के समाप्त हो गया।

महाराणा अरिसिंह (राज्याभिषेक सन् १७६१ ई०) महाराणा जगतसिंह के छोटे पुत्र थे अतएव राजसिंह के निस्सतान होने के कारण गद्दी पर बिठाये गये। इनका स्वभाव बडा उग्र था। सरदारो की इनसे अनबन रहती थी। वह स्वय कवि थे और कवियो के आश्रयदाता भी। किशनगढ के राजा नागरीदासजी की कविता का प्रभाव महाराणा पर विशेष रूप से लक्षित होता है। इनकी एक ही रचना पाई जाती है जिसका नाम 'रसिक–चमन' है। इस रचना का आधार नागरीदासजी का 'इश्क चमन' ही है। 'रसिक चमन' मे लेखक ने लिखा है—

इस्क चमन इस्कीन को, करयो नागरीदास।
रसिक चमन अरसी नृपति, कीनो अधिक प्रकास॥

प्रेम की महिमा और प्रेमी की तपस्या एव प्रेम मार्ग की कठोरता का अनेको अलकारो मे वर्णन इस रचना की विशेषता है। भाषा ब्रज और उर्दू का मेल है। इसे 'रेख्ता' भी कहते है। आलौकिक प्रेम का वर्णन इस शैली मे हिन्दी मे होता आया है। इस विषय पर आगे विचार किया जायगा अरिसिंहजी की विचारधारा और कविता इस प्रकार है—

---

१ विविध संग्रह: संपादक भूरसिंहजी शेखावत, पृ० १३८, इस घटना का उल्लेख मोतीलाल मेनारिया ने अपने किसी इतिहास में नहीं किया।

अगमइस्क के चिमन कौ, किसकी आसंग होय ।
सिर उतार पासंग करि, पहुंचे बिरला कोय ॥१॥

रे महबूब इते दिनो, खूब वीया वीदार ।
प्यारे तेरे दरस बिन, पल के लगत पहार ॥२॥

इस्क अखाड़ा अजब है, गजब चोट है यार ।
तन को तिनके सम गिनै, सो ही पावै पार ॥३॥

इस्की इस्क सुभाव का, जो पावै टुक स्वाद ।
मस्त रहे महबूब से, खलक लखै सब बाद ॥४॥

सिर उतार लोहू छिरक, उसही की कर कीच ।
आसिक बपरे पर रहे, उसी कीच के वीच ॥५॥

इस्क जहर की आबका, भरया कहर दरियाव ।
सिर उतारि धर नावकरि, तिर जानें तो आव ॥६॥

महाराणा हमीर (दूसरे) (राज्याभिषेक सन् १७७३ ई०) उत्तराधिकारी हुए परन्तु इनका शासनकाल परस्पर की अशाति मे ही वीता । और सन् १७७८ ई० को महाराणा भीमसिंह गद्दी पर बिठाये गये एव राज्य प्रवन्ध राजमाता की सलाह से होने लगा । महाराणा भीमसिह का राज्यकाल अपना महत्त्व रखता है । वर्तमान राज घराने की दृढता इन्ही के शासनकाल मे हुई । अग्रेजो के साथ सधि होने का भी यही काल था । प्रसिद्ध इतिहास लेखक कर्नल टॉड इन्ही महाराणा के शासन काल मे राजपूताने का इतिहास लिख रहे थे । 'भीम विलास' नामक काव्य से भीमसिहजी के जीवन की घटनाओ पर प्रकाश पडता है । इस ग्रंथ के रचियता किशन जी आढा थे ।

महाराणा की दानप्रियता का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

राणँ भीम न रविखयो, दत्त विन दिहाड़ोह ।
हम गयद देता हता, मुओ न मेवाडोह ॥

(मेवाड का राणा भीम जो दान दिए विना एक दिन भी खाली नही जाने देता था और जो हाथी घोडे दिया करता था, वह मरा नही है ।)

यह पद्य महाराजा मानसिंह (जोधपुर) का बनाया हुआ कहा जाता है । महाराणा के दरबार मे कवियो का वडा आदर था । किसी एक चारण ने निम्नलिखित दोहे पर पर्याप्त धन राशि पुरस्कार स्वरूप प्राप्त की थी—

भीमा थूं भाटोह मोटा मगरा मायलो।
कर राखूं काठोह, शकर ज्यूं सेवा करूं ।।

—हे भीमसिह ! तुम बड़े पर्वत ऐसे पत्थर हो जिसे यत्नपूर्वक रख कर मैं महादेव की भाति सेवा करूँ ।

जोधपुर राज्य निवासी रामदान चारण ने भी महाराणा की प्रशसा और उनके महल, राजदरबार, राज वैभव एव गणगौर की सवारी का भव्य वर्णन युक्त 'भीम प्रकाश' नामक काव्य बनाया था। सब मिलाकर इस ग्रथ मे १७५ छन्द है।

महाराणा जवानसिह का राज्याभिषेक ३१ मार्च, सन् १८२८ को हुआ। अग्रेजी सरकार की ओर से कप्तान काब राज्याभिषेक का टीका लेकर उदयपुर गये थे। महाराणा मद्य और शिकार के शौकीन, पितृभक्त, लोकप्रिय, अपव्ययी, विलासी और कवि थे। कविता मे इनका उपनाम 'ब्रजराज' था। यह ब्रजभाषा मे कविता लिखते थे। अनेको दोहे, कवित्त, सवैये, पद आदि इन्होने लिखे हैं। इनकी भाषा परिमार्जित, कल्पना सुन्दर और शैली प्राजल है। कविता का विषय अधिकतर भक्ति है। इनकी कविता मे प्रवाह है और आत्म-समर्पण भी। श्याम का सदेश लेकर उद्धव ब्रज मे आये। गोपिया कहती है—

सवैया

उद्धव आय गये ब्रज मे सुनि गोपिन के तन मे सुख छायौ।
आनंद सों उमगी सगरी चलि प्रेम भरी वधि आन बधायौ।।

पूछति है मन मोहन की सुधि बोलत ही दृग नीर चलायौ।
देखि सनेह सखा हरिकें घनस्याम वियोग कछू न सुनायौ।।

ब्रज मे सुनि आगम उद्धव को चहुं ओर सखी जन आनखरी।
सुधि पूछत हैं वहि प्रीतम की तनमे मनमे अति प्रेम भरी।।

ठगले हमको नवलाल सबै अब नैह दुरावन की जु करी।
मिलिहै कब स्याम सुजान कहो, तुम जानत मोमन की सगरी।।

दोहा

विकल भई सब ब्रज बधू गई देह सुधि भूल।
मन मोहन के चलत ही प्रगट लही उर सूल।।

कब मिलिहैं मोहन अली, अति सनेह दुख दैन।
जब जानत जीवो सफल, सुनिहैं सुन्दर बैन।।

उद्धव तुम आये यहाँ करत जोग की बात ।
बरत बचन ऐसे लगें, करत वज्र को घात ।।

कहत तुम्हीं सों व्रजबधू बात विचारि विचारि ।
नारि मारिवे कों मनों है मोहन तरवारि ।।

गोपियो की वियोग दशा का वर्णन इन छदो मे बडी सरलता और तल्लीनता से किया गया है । अन्तिम दोहे की अन्तिम पक्ति मे राजपूती भावना का बडा स्वाभाविक समन्वय है । मोहन का सदेश तलवार के समान स्त्री पर घाव करने वाला है और इस प्रकार का आघात निपिद्ध है । यह व्यजना कितनी अनूठी है :-

भक्ति के साथ-साथ महाराणा की कविता मे रीतिकालीन रग भी दिखाई देता है । मानवती नायिका से उसकी सखी कहती है ।

चमकि चमकि चपला चपल घुमड़ि घटा चहु ओर ।
पिय बिनु तिय तन छिनक मे डारत मदन मरोर ।।

कवित्तः

मोहन सौं मान करि बैठी प्रानप्यारी अति,
कैसौ री अयानपन पर्‌यौ है री तन मे ।
प्रानहू तें अधिक सुजान स्याम जानें नित,
राखत है मान तेरौ सब तिय जन मे ।
भोर अरु साझ, दिन राति मे न दीसे और,
लेत मुख नाम ध्यान चाहे छिन छिन मे ।
ऐरी अलबेली हेली सुनरी नवेली अब,
मेरो कह्यो मान कान राख मेरी मन मे ।।

मान को दूर करने के लिए प्राकृतिक पृष्ठ भूमि और समुचित तर्क उपस्थित किया गया है । इससे अधिक नायिका और क्या चाहती है कि जिसका प्रिय प्रात साय, दिन और रात सबके सामने केवल उसी का नाम रटता रहे ।

नेत्रो का स्वाभाविक सचालन, उसके प्रभाव और सौन्दर्य-बोध का अति सुन्दर वर्णन इस सवैये मे मिलता है ।

नैनन जोर मरोरन भौंह न मंत्र मनौ पढिके कछू दीनो।
तौ बिन स्याम सुजान अलि छिन ही छिन मे तन होत सुछीनो॥
दच्छन सो अनुकूल भयौ ब्रजराज पती अति ही परवीनो।
नेकनिहारत ही मनभावन मोहन को वस मे कर लीनो॥

महाराणा ने अनेक राग-रागिनियो मे पदो की रचना की है। मुक्तक काव्य मे उन्हे सफलता मिली है। इनकी कविताओ का एक सग्रह मेहता जोधसिहजी के पुत्र नवलसिह के पुस्तकालय मे विद्यमान है।

महाराणा सरदारसिह जवानसिह के उत्तराधिकारी हुए परन्तु उनका शासन काल किसी प्रकार से भी यश-सचय न कर सका। पुत्र विहीन होने से महाराणा सरूपसिह उनके उत्तराधिकारी हुए और १५ जुलाई सन् १८४२ को इनका राज्या-भिषेक हुआ। महाराणा सरूपसिह अपने अनेक गुणो एव दुर्गुणो के लिए प्रसिद्ध हैं। भारत की प्रथम सशस्त्र स्वतत्रता की लड़ाई मे इन्होने अग्रेज-सरकार की वडी सहायता की थी। साहित्य सम्वन्धी इनकी रुचि का कोई प्रमाण उपलब्ध नही है।

महाराणा शंभूसिह नम्र, मृदुभाषी, सकोचशील, विद्यानुरागी, सुधारप्रिय और स्पष्ट वक्ता थे। कहा जाता है इन्हे भी हिन्दी कविता से प्रेम था और कवियो का आदर भी करते थे परन्तु इनके समय की कविता उपलब्ध नही है।

महाराणा सज्जनसिह का राज्याभिषेक ८ अक्तूबर सन् १८७४ को हुआ। अग्रेजी सरकार की ओर से कर्नल राइट खलीता लेकर आये थे। महाराणा वडे गुणग्राहक और स्वय विद्यानुरागी थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा भरतपुर निवासी बिहारीलाल द्वारा हुई थी। बिहारीलाल स्वय अच्छे विद्वान थे, महाराणा के यहां विद्वानो का दिन रात समागम रहता था। अपनी विद्याभिरुचि के कारण उन्होने 'सज्जन वाणी विलास' नामक पुस्तकालय की स्थापना कर उसे कविराजा श्यामलदास के निरीक्षण मे रखा। यह पुस्तकालय विभिन्न भाषाओ के अनेक ग्रथो का सुन्दर सग्रह है। इन ग्रथों पर लगाने के लिए सोने की मोहर बनाई गई थी।

सज्जनसिह के दरबार मे अनेको विद्वान एकत्रित रहते थे। कविराजा श्यामलदास, फतहकरण उज्जवल, किशनसिह बारहठ और स्वामी गणेशपुरी इनमे विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके ससर्ग मे रहकर महाराणा को काव्य-शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान हो गया था और वह स्वय भी कविता करने लगे थे। काव्य-शास्त्र ज्ञान विषयक दो एक घटनायें बड़ी प्रसिद्ध हैं।

एकदिन महाराणा बूदी के कवि 'सूरजमल द्वारा लिखित वशभास्कर की कविता बारहठ किशनसिंहजी से सुन रहे थे। पढते-पढते बारहठजी रुक गये और कहने लगे इस पक्ति मे कुछ छूट गया है। पक्ति थी—

'पहुमान रूक्किय अक्क ठक्किय .... बिच्छुरे। महाराणा भी सोचने लगे और कुछ समय पश्चात् वोले 'वारहठजी इसमे 'बिच्छुरे' के पहले 'चक्क चक्किय' शब्द छूट गये मालूम होते है।' बाद को जव वशभास्कर की दूमरी प्रति मगाई गई तो उसमे महाराणा द्वारा वताये गये शब्द मौजूद थे। डिंगल की कविता मे महाराणा की गति का इस घटना द्वारा पता चलता है।

इसी प्रकार नरहरिदास द्वारा लिखित "अवतार चरित" की चौपाई पर विवाद चल रहा था।

"सहज राग अधरन अरुनाये। मानहु पानपान से खाये"। जोधपुर महाराजा मानसिंहजी ने चौपाई का अर्थ किया—"प्राकृत रग ने होठो को ऐसा लाल कर दिया है कि मानो पान जैसे पतले होठो ने पान खाया हो।" महाराणा सज्जनसिंह यह सुनकर कहने लगे—कवि का आशय होठो की प्रशसा करना नही है। वह तो केवल उनकी लाली का वर्णन करता है अतएव होठो की उपमा की योजना कर पान, जैसे पतले होठ का अर्थ ग्रहण करना कवि के अभिप्राय के विरुद्ध है। इसका सीधा अर्थ यह होना चाहिये कि स्वाभाविक रग से होठ ऐसे लाल थे मानो पाच सौ पान खाये हो। महाराणा की प्रखर बुद्धि के प्रमाण मे उनकी यह व्याख्या कितनी सही है।

एक अन्य घटना भी इसी प्रकार की है। कोटा से चारण फतहदान ने महाराणा के पास २५ कवित्त भेजे। एक कवित्त मे पक्ति थी —

"पहुमी—कसौटी हाटक सी रेख, रान रावरे सुयश की।" (पृथ्वी रूपी कसौटी पर हे राणा! तुम्हारे सुयश की रेखा ऐसी ही उज्जवल है जैसे सोने की रेखा कसौटी पर होती हे)।

इस पर महाराणा कहने लगे यदि "पुहुमी" शब्द के स्थान पर "काश्यपी" शब्द रख दिया जाय तो कसौटी से वर्ण मैत्री खूब हो जाय। फतहदानजी ने जब यह सुझाव सुना तो महाराणा को धन्यवाद देते हुए लिखा कि एक एक कवित्त पर यदि मुझे एक एक लाख पसाव मिलता तो भी इतनी प्रसन्नता न होती, जितनी मेरी कविता सुधार देने से हुई है।

अपने विद्या प्रेम के कारण महाराणा विभिन्न विषयो के विद्वानो को वडी प्रसन्नता से आश्रय देते थे। उन्होंने अपने दरबार मे अनेको पडितो को एकत्र किया

था । न्याय और अलकार के ज्ञाता सुब्रह्मराय शास्त्री, ज्योतिष तथा धर्मशास्त्र के पडित विनायक शास्त्री, सुप्रसिद्ध ज्योतिषी नारायण देव, वैयाकरण प अजित देव आदि महाराणा के सम्मान पात्र थे । स्वामी दयानद की विद्वत्ता और विचार-धारा से प्रभावित होकर उनसे महाराणा ने वैशेषिक दर्शन और मनुस्मृति आदि ग्रथ पढे और काफी दिनो तक बडे आदर के साथ उन्हे अपने यहा रखा । स्वामीजी की मृत्यु का दुखद समाचार सुनकर महाराणा ने लिखा था —

नभ चव ग्रह ससि दीप–दिन दयानन्द सह सत्व ।
वय त्रेसठ वतसर विचै पायौ तन पंचत्व ।।

जाकै जीह जोर तैं प्रपच फिलासिफन को ।
अस्त सो समस्त आर्य मंडल तै मान्यो मै ।।

वेद के विरुद्धी मत मत के कुबुद्धि मन्द ।
भद्र भद्र आदिम पे सिंह अनुमान्यो मै ।।

ज्ञाता खट ग्रन्थन को वेद को प्रणेता जेता ।
आर्य विद्या अर्क हूं को अस्ताचल जान्यौ मै ।

स्वामी दयानन्द जू के विष्णुपद प्राप्त हूं तै ।
पारिजात को सो आज पत न प्रमान्यौ मै ।।

महाराणा ने इतिहास कार्यालय की स्थापना कर "वीर विनोद" की रचना कराई । यही "वीर विनोद" आजकल उदयपुर और राजस्थान के इतिहास का मूल आधार माना जाता है । कविराज मुरारिदानजी का भी महाराणा ने आदर कर उन्हे 'कविराज' की पदवी से विभूषित किया था । स्वनामधन्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी महाराणा के यहा मान्य अतिथि रहे थे । विदा के समय सज्जनसिंह जी ने उन्हे सरोपाव और रु १०,००० प्रदान किया था ।

महाराणा की रचनाओ मे अनेक ठुमरी, सोरठे, दोहे, कवित्त और सवैये मिलते है । उनकी कविता इस प्रकार है ।

ठुमरी, राग भैरवी, ठेका पंजाबी

शंकर छवि छाय रही मन में ।
भूखन ब्याल खाल गज अबर भसम लगी तन में ।
माल कपाल भाल चख सोहत तड़िता ज्यो घन में ।
उमा संग अरधंग गंग जुत भूतन के गन में ।

सब व्यापक अव्यापक सोभित ज्यों पंकज बन में ।
कंठ नील अरु सील अमंगल दे मंगल छन में ।
जग विस्तार पार संहारत शिशु ज्यो खेलन में ।
काल काल कीलत अघहारी नेत्र निमीलन मे ।
"सज्जन" रान भिन्न भासत ज्यों उदधि तरंगन में ।

शिव के रूप वर्णन मे दार्शनिकता का पुट है जो महाराणा जैसे विद्वान की विचारधारा मे स्वाभाविक ही है !

कृष्ण का रूप डिंगल मिश्रित ब्रजभाषा मे देखिए —

राग देस, ताल झूमरा :—

वातड़ल्यां थारी विहारीजी म्हानें याद रहेली ।
म्हूँ जाणी बिछुड़ण री म्हारी बात बलाय सहेली ।
पण विपरीत करी अब प्रीतम कथनां जगत कहेली ।
धोके रही मोह रे थारें हूं तो राज गहेली ।
रसिक सनेही छलरी छायण डायण विरह दहेली ।

विरह दशा का वर्णन इन दोहो मे प्रस्फुटित हुआ है —

बदरा बदराही बने, इन्दु बदन की ओट ।
कैसे सहे कुमोदनी, विरह–बान की चोट ।
सरद चन्द्रिका सरज सर नील कमल बन नोक ।
पिय बिन सब ही ह्वै रहे, ताप तपन से ठीक ।

भावना प्रदर्शन के लिये यह पद देखिये —

निकट नित रहन चहत मतवारे ।
मधु ऋतु में मधुकर मन मोहित पंख प्रसून प्रसारे ।
चल चल त्रिविध समीर यहूं विस ताप त्रिविध कू टारे ।
विपिन वहार अपार बतावें किंसुक सुभ रतनारे ।
चैत्र चन्द्रिका चाह चकोरन हिय यो हास हमारे ।।
पाय प्रभात गुलाब कलिन के कान परत चटकारे ।
वारि सकुन वियुरे पत्रन पर बारिज छवि विस्तारे ।।
कोकिल डाल रसाल कुहूके पुहुप पराग पसारे ।
रसिक सनेही यह ऋतुराजा तुम राजन उजियारे ।।

महाराणा की रचनाओ का प्रकाशन "वीर विनोद" नाम से हो चुका है। वास्तव मे हिन्दी कविताओ के लिए महाराणा सज्जनसिह का व्यक्तित्व राजस्थान के लिये बडा प्रेरणापूर्ण और सारगर्भित था। उनके उत्तराधिकारियो मे महाराणा फतहसिहजी एव महाराणा भूपालसिहजी ने भी अपनी अपनी परिस्थिति और रुचि के अनुकूल साहित्यिक प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन दिया है परन्तु उनकी तुलना इस दृष्टि से महाराणा सज्जनसिहजी से नही की जा सकती।

उपसंहार

महाराणा कुभा से लेकर वर्तमान समय तक ५०० वर्षो के साहित्य का इतिहास बताता है कि कुल मिलाकर उदयपुर के राजघराने मे २८ महाराणा हुए और २६ वे इस समय वर्तमान है। उदयपुर राज्य सदा से धर्म का रक्षक और स्वतत्रता का पोषक रहा है। जिन महाराणाओ ने स्वय कविता आदि करके साहित्य को गौरव प्रदान किया उनमे महाराणा कुभा, महाराणा अरिसिंह, महाराणा जवानसिह और महाराणा सज्जनसिह विशेष उल्लेखनीय है। साहित्य की अभिव्यजना सस्कृत, डिंगल और हिन्दी तीनो भाषाओ मे हुई। आलोच्य काल मे जो भाषा का सौष्ठव और शैलियो की विशेषतायें प्रचलित थी उनका प्रयोग राजस्थान मे हुआ। डिंगल और पिंगल दोनो ही हिलमिल कर जनता की भावना को अभिव्यक्त करने मे सफल रही।

जिन महाराणाओ का उल्लेख ऊपर किया गया है उनकी कविता का मूल्याकन चाहे काव्यशास्त्र की दृष्टि से करें, चाहे सगीत के आधार पर अथवा भावनाभिव्यक्ति की दृष्टि से, सभी दृष्टिकोणो से यह साहित्य अन्य भूभागो के साहित्य सृजन से कही भी कम नही उतरता।

: ३ :

जोधपुर का राजघराना

बल हट वांका देवड़ा, किरतब बंका गौड ।
हाडा वका गाढ मे, रण–वका राठौड़ ।।

——प्राचीन कवि

जोधपुर का वर्तमान राठौड राजघराना १४ वी शताब्दी से अपना अस्तित्व रखता है। इनसे पूर्व मौर्य, कुशन, क्षत्रप, गुप्त, हूण, गुर्जर, चावडा, वैस, रघुवशी प्रतिहार, गुहिल, परमार, सौलकी और चौहान वश मारवाड के राजघराने रह चुके हैं परन्तु कालान्तर मे सभी का अस्तित्व समाप्त होगया और सभी अपनी विजय–पराजय की कहानिया लेकर काल कवलित हो गये ।

वर्तमान राठौड राजघराने के मूल सस्थापक राव सीहाजी थे जिनकी मृत्यु सन् १२७३ ई मे हुई। राव सीहाजी के पश्चात् उनके पुत्र राव आस्थान (अश्वा-थाम) उनके उत्तराधिकारी हुए और फिर क्रमश राव धूहड, राव रायमाल, राव कान्हपाल, राव जालणसी, राव छाडा, राव टीडा आदि से लेकर राव रणमल तक राव सीहाजी के वशजो का राज्याधिकार चलता रहा। इस काल का प्रामाणिक इतिहास दुर्लभ है। ख्यातो और अन्य आधारो से एकत्रित सामग्री अधिक प्रामाणिक नही है। सास्कृतिक विकास का इतिहास भी अधकार के गर्त मे लीन है। सामान्यत यही अनुमान निकाला जा सकता है कि मारवाड राज्य भी अन्य राज्यो की भाति अपने उत्थान–पतन, विस्तार–सकोच की सीमाओ को पार करता हुआ अपना अस्तित्व कायम रखता रहा। अनेको कठिनाइयो के पश्चात्, जिसका वर्णन इतिहासो मे मिलता रहा है, राव जोधा मडौवर (मडोर) पर अधिकार कर पाये। सन् १४५६ मे चिडियाटूक पहाडी पर नये गढ की नींव रखी गई और वर्तमान जोधपुर नगर की स्थापना राव जोधाजी के नाम पर हुई। तब से मडोर को छोडकर जोधपुर ही मारवाड की राजधानी बना और अद्यावधि उस रूप मे वर्तमान है। सन् १४८६ मे जोधाजी स्वर्ग सिधारे और राव सातल उनके स्थान पर राजगद्दी पर बैठे। तत्पश्चात् राव सूजा और फिर राव गागा। जिस समय अपने

पिता राव गागा को मार राव मालदेव सन् १५३२ मे राजसिंहासन पर बैठे उस समय उनके पास केवल दो ही परगने थे—जोधपुर और सोजत । परन्तु राव मालदेव, अबुलफज़ल के शब्दो मे 'भारत के शक्तिशाली राजाओ मे से एक थे' । उन्होने अपने बल से मारवाड की राज्य–सीमा का विस्तार कर उसे दृढता प्रदान की । रणमल के उत्तराधिकारी चन्द्रसेन का शासनकाल भी युद्धो मे बीता । उनकी मृत्यु के उपरात दिल्ली–पति ने उनके भाई उदयसिंह को मारवाड का राजा बनाया । उनके पश्चात् सूरसिंह राज्य के शासक हुए । ओझाजी ने राजा सूरसिंह को कवियो का आदर करने वाला लिखा है परन्तु रेऊजी इस विषय पर मौन है । सामग्री के अभाव मे कोई भी परिणाम इस सम्बन्ध मे नही निकाला जा सकता । केवल इतना पता चलता है कि दधवाडिया गोत्र के चारण चू डाजी के बेटे माधोदास इनके आश्रित कवि थे जिनकी मृत्यु सन् १६३३ ई के लगभग हुई थी । माधोदास भक्त कवि थे और 'रामरासो'[1] ग्रथ के लेखक थे ।

राजा सूरसिंह के पुत्र राजा गजसिंह सन् १६१६ मे राजगद्दी पर बैठे । बादशाह की ओर से खानखाना के पुत्र दौराबखा ने इनकी कमर मे तलवार बाधी । राजा गजसिंह बडे वीर और दानी थे, दिल्ली-पति ने इन्हे 'दलथभन' की उपाधि से विभूषित किया था । ख्यातो से पता चलता है कि इन्होने १४ कवियो को पृथक पृथक 'लाखपसाव' दिये थे । 'लाखपसाव' मे कुछ वस्त्र, आभूषण, हाथी, घोडे और कम से कम एक हज़ार रुपये सालाना की जागीर दी जाती थी । 'गुण-रूपक' के रचयिता गाडण शाखा के चारण कवि केशवदास और "अवतार-चरित"[2] के लेखक रोहडिया शाखा के चारण लक्खाजी के पुत्र नरहरिदास इन्ही महाराजा के आश्रय मे थे । महाराज गजसिंह ही वास्तव मे मारवाड मे वीर प्रसारक काव्य के आरभ-कर्ता थे । गजसिंह के पुत्र और उनके उत्तराधिकारी महाराज जसवतसिंह अपने समय के वीर, साहसी, शक्तिशाली, नीतिज्ञ, उदार और दानी व्यक्ति थे । वे काव्य-शास्त्र के पडित और एक अच्छे लेखक थे । महाराजा जसवतसिंह ने गद्य और पद्य दोनो मे लिखा है । उनके काव्य गुरु प. सूरतमिश्र आगरा निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । 'रसग्राहक चन्द्रिका'[3], 'अमर चन्द्रिका'[4], 'रसिकप्रिया टीका'[5], 'अलकार-माला'[6] तथा 'सरस रस'[7] आदि काव्य ग्रथ मिश्रजी ने लिखे थे । 'आडा किशना',

---

१. इसकी एक खंडित प्रति जोधपुर पुस्तकालय में उपलब्ध है ।
२. यह पुस्तक मुद्रित हो चुकी है ।
३ खोज रिपोर्ट १९०१
४ खोज रिपोर्ट १९०३
५. प्र० ग्रं० रि०
६. खोज रि० १९०३
७. रचना काल १७९४

'खेतसी लालस', 'नेहविधान' के लेखक नवीन कवि, और उनके पिता के आश्रय मे रहे हुए नरहरिदास आदि कवियो को महाराज जसवतसिंह का आश्रय प्राप्त हुआ था। राजस्थान के देसी गज़ेटियर लिखने वाले मुहणोत नैणसी इनके मत्रियो मे से थे। अनेक शाही युद्धो मे व्यस्त रहते हुऐ भी इन्होने कई ग्रथो की रचना की।

महाराजा जसवतसिंह :—

रचनाएँ :—(१) भाषा भूषण अलकार (प्रकाशित)
(२) आनदविलास :
(३) अनुभव प्रकाश :
(४) अपरोक्ष सिद्धान्त : वेदान्त (प्रकाशित)
(५) सिद्धान्त बोध :
(६) सिद्धान्त सार :

यह 'वेदान्त पचक' के नाम से जोधपुर के राज पुस्तकालय 'पुस्तक प्रकाश' मे प्रस्तुत है। इनमे के चार ग्रन्थ पद्यमय है और 'सिद्धात वोध' ग्रन्थ गद्य और पद्य दोनो मे लिखा गया है।

(७) चन्द्रप्रबोध — अनुवाद (प्रकाशित)
यह नाटक सस्कृत के 'प्रबोध चन्द्रोदय' नामक नाटक का अनुवाद है।

(८) फूली-जसवत-सवाद
और फुटकर दोहे व कुन्डलिया
वेदान्त (अप्रकाशित)

(९) आनन्दविलास – वेदान्त विषयक (अप्र०) पुस्तक है जो सस्कृत पद्यो मे है और इसका विषय भी भाषा के 'आनंद विलास' के समान वेदान्त ही है।

(१०) नायिका भेद – अप्राप्य है परन्तु महाराजा द्वारा लिखी बताई जाती है।

१ भाषाभूसण—हिन्दी साहित्य के इतिहास मे 'रस' विवेचन एव 'अलकार शास्त्र' और अलकारो के विकास का बडा महत्त्व है। 'भाषा भूषण' भी प्रधानत· अलकार का ग्रन्थ है। इसके रचयिता महाराज जसवतसिहजी ने अपने ग्रन्थ के अत मे लिखा है—

अलकार सव्दार्थ के कहे एक सौ आठ ।
किये प्रगट भाषा विषै देखि सस्कृत पाठ ॥२०८॥

ताहि नर के हेतु यह कीनो ग्रन्थ नवीन ।
जो पडित भाषा निपुन कविता विषै प्रवीन ॥२१०॥

लच्छनतिय अरु पुरुष के हावभाव रस-धाम ।
अलकार सजोग ते 'भाषा – भूपरण' नाम ॥२११॥

इन तीनो दोहो मे लेखक ने अपने ग्रन्थ के उद्गम, उसके अध्ययन, अधिकारी तथा उसमे प्रतिपादित विषय पर सक्षिप्त प्रकाश डाला है । प्रस्तुत पक्तियो मे ग्र थ के उद्गम एव प्रतिपादित विपय पर ही कुछ विचार करना है ।

'भाषा भूषरण' के कई सस्करण[1] निकल चुके है परन्तु सबसे अधिक लोकप्रिय श्री ब्रजरत्नदास द्वारा सम्पादित सस्करण (सन् १९२४) है। इस ग्रन्थ की कई टीकाओ का उल्लेख भी मिलता है[2] ।

अलकार ग्रन्थो की ऐतिहासिक परम्परा मे भाषा भूषरण का एक विशिष्ट स्थान है । डा० भागीरथ[3] मिश्र ने गोपाकृत 'अलकार–चन्द्रिका' (र० का० १५५८-१६१६ ई) को हिन्दी का सर्व प्रथम अलकार ग्रन्थ माना है और भाषा भूषरण को चौथा स्थान दिया है यद्यपि आगे चलकर पृ ८४ पर उन्होने छेमराज कृत 'फतह प्रकाश' को जसवतसिंह के ग्रन्थ के पश्चात् का माना है । अतएव भाषा भूपरण का स्थान तीसरा या चौथा होने पर भी अपनी विशेष महत्ता रखता है । मगलाचरण के पाच दोहो को छोडकर अन्य ३७ दोहो मे लेखक ने नायक–नायिका भेद, मान–लक्षरण, सात्विक अनुभाव, हाव, विरह–दशा, रस और स्थायी भाव तथा उद्दीपन, आलबन विभाव, सचारी भाव तथा अनुभाव पर भी सक्षिप्त प्रकाश डाला है। तत्पश्चात् ४३ वे दोहे से अलकारो का विवेचन है ।

'भाषा भूषरण' सर्वरूपेरण मौलिक ग्रथ नही है परन्तु उसकी टीकाओ और विभिन्न सस्करणो से यह अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि ग्रन्थ कितना

---

१. प्रकाशक मन्नालाल, बनारस (१८८६) वेंकटेश्वर प्रेस (१८९४) रामचन्द्र पाठक, बनारस (१९२४–२५)

२. (अ) देखो 'भाषा भूषरण' ब्रजरत्नदास द्वारा संपादित पृ. १२, १८
(आ) हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास, ले. डा. भागीरथ मिश्र पृ. ८४.

३. हि० का० शा० का० इ०, पृ० ४१

अधिक लोकप्रिय है। परन्तु यह अत्यन्त खेदजनक है कि इतने लोकप्रिय ग्रन्थ के विषय मे किसी प्रकार की भ्राति हिन्दी साहित्य ससार मे रह जाय।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है लेखक ने 'भाषा भूषण' का निर्माण आधार 'देखि सस्कृत पाठ' किया था। कुछ विद्वानो ने उसके मूल उद्गम की खोज करते हुए उसका आधार जयदेव का 'चन्द्रालोक'[1] माना है। बाबू ब्रजरत्नदास का इस विषय मे जो कथन है वह इससे भी दो पग आगे है। कुछ विद्वानो का कथन है कि 'भाषा भूषण' जयदेव कृत 'चन्द्रालोक' के पाचवे मयूख का अक्षरश. अनुवाद है[2]। बाबू साहब ने इस कथन की बड़े ही सक्षेप मे परीक्षा भी की है और अत मे इसी निर्णय पर पहुचे हैं कि 'भाषा भूषण' की रचना 'चन्द्रालोक' के आधार पर जरूर हुई है पर अन्य ग्रन्थो से भी सहायता ली गई है। साथ ही ग्रन्थकार ने निज मस्तिष्क से भी काम लिया है[3]।

"चन्द्रालोक" और "कुवलयानन्द" हिन्दी अलकार लेखको के प्रिय ग्रथ रहे हैं। "भाषा भूषण" के अतिरिक्त रसिक सुमति का "अलकार चन्द्रोदय" (र का १७२८ ई) तथा वैरीसाल का भाषा भरण (र का १८६८ ई) दोनो ही कुवलयानद के आधार पर बने हैं। यदि "चन्द्रालोक", कुवलयानद तथा भाषा भूषण मे क्रमश उल्लिखित अलकारो की सूची पर ही एक दृष्टि डाली जाय तो सुगमता से ज्ञात हो सकेगा कि "भाषा भूषण" का लेखक अपने पूर्ववर्ती इन दोनो आचार्यो का कहाँ तक ऋणी है ?

इस सबध मे पहली बात तो यह है कि यद्यपि लेखक ने 'भाषा भूषण' मे १०८ अलकारो का होना लिखा है परन्तु सम्पादित (ब्रजरत्नदास द्वारा) सस्करण मे केवल १०२ है। अतएव इन शेष ६ अलकारो का क्या हुआ, कुछ समझ मे नही आता।

दूसरी बात यह है कि "चन्द्रालोक" मे अलकारो की सपूर्ण सख्या १०२ ही है। दोनो ग्रथो की सख्या मे समानता होते हुऐ भी कुछ अतर है इस कारण कई प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं .—

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २६५

२. भाषा भूषण भूमिका, पृष्ठ १३.

३. वही . भूमिका, पृष्ठ १५.

१ "चन्द्रालोक" और "भाषा भूषण" मे समानरूप से पाये जाने वाले अलकार कितने है और कौन कौन से है ? समानता का अभिप्राय लक्षण और उदाहरण दोनो मे समानता का होना है।

२ वे अलकार कितने और कौन से है जिनमे आशिक समानता पाई जाती है ?

३ दोनो मे भिन्न भिन्न अलकारो की सख्या क्या है और उनके नाम क्या है ?

पहले प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है। २४ अलकार ऐसे है जो दोनो मे समान रूप से पाये जाते है। इनके नाम ये है —

(१) आक्षेप (२) अन्योन्य (३) अर्थान्तरन्यास (४) अत्युक्ति (५) उल्लेख (६) एकावली (७) काव्यलिंग (८) प्रतिवस्तूपमा (६) परिवृति (१०) परिसख्या (११) प्रत्यनीक (१२) पूर्वरूप (१३) सम (१४) समुच्चय (१५) समाधि (१६) तद्गुण (१७) व्याघात (१८) विचित्र (१६) विभावना (२०) व्याज-स्तुति (२१) निदर्शना (२२) मालादीपक (२३) मीलित (२४) यथासख्या।

इस सूची के अलकारो मे 'चन्द्रालोक' मे वर्णित प्रत्येक अलकार का लक्षण तथा उदाहरण वही है जो 'भापाभूपण' मे है।

यथा—

अन्योन्य—

(च०) अन्योन्यं नाम यत्र स्यादुपकार : परस्परम् ।
त्रियामा शशिना भाति शशी भाति त्रियामया ।।८४।।

(भा० भू०) अन्योन्यालंकार है अन्योन्याहि उपकार ।
ससि तें निसि नीकी लगै निसिही तें ससिसार ।।१३१।।

अत्युक्ति—

(चं०) अत्युक्तिरद् भुतातथ्य शौर्योदार्यादिवर्णनम् ।
त्वयि दातरि राजेन्द्र याचका : कल्पशाखिन : ।।११६।।

(भा० भू०) अलंकारअत्युक्ति यह वर्नत अतिसय रूप ।
जाचक तेरे दान ते भए कल्पतरू भूप ।।१६२।।

दूसरे प्रश्न के उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि दोनो रचनाओ मे आशिक समानता दो प्रकार की है। यदि दोनो मे लक्षण समान हैं तो उदाहरण भिन्न है अथवा उदाहरण समान है परन्तु लक्षण मे अतर है। ऐसे अलकार जो प्रथम वर्ग के अन्तर्गत आसकते है सख्या मे ५३ है और दूसरे वर्ग के अन्तर्गत आने वाले अलकारो की सख्या केवल १ है। समान लक्षण वाले अलकार ये है—

(१) अनन्वय (२) अपह्नुति (३) अतिशयोक्ति (४) अप्रस्तुत प्रशसा (५) असगति (६) अधिक (७) अवज्ञा (८) अतद्गुण (९) अनुगुण (१०) अनुप्रास (११) उपमा (१२) उपमेयोपमा (उपमानोपमेय) (१३) उत्प्रेक्षा (१४) उन्मीलित (१५) उल्लास (१६) उदात्त (१७) कारणमाला (गु फ) (१८) प्रतीप (१९) परिणाम (२०) परिकर (२१) परिकराकुर (२२) पर्यायोक्ति (२३) पर्याय (२४) प्रौढोक्ति (२५) प्रहर्षण (२६) पिहित (२७) स्मरण (२८) सदेह (२९) सहोक्ति (३०) समासोक्ति (३१) श्लेष (३२) सार (३३) सभावना (३४) सामान्य (३५) स्वाभावोक्ति (३६) रूपक (३७) भ्रम (३८) भाविक (३९) दीपक (४०) दीपकावृत्ति (आवृत्तिदीपक) (४१) दृष्टान्त (४२) तुल्ययोगिता (४३) व्याजोक्ति (४४) विपाद (विषादन) (४५) विकस्वर (४६) विकल्प (४७) विशेप (४८) विषम (४९) वक्रोति (५०) विशेषोक्ति (५१) विरोधाभास (५२) विनोक्ति (५३) व्यतिरेक।

समानता के उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित दो उदाहरण लिये जाते हैं—

अनन्वय—

(च०) उपमानोपमेयत्वे यत्रैकस्यैव जाग्रत:।
इन्दुरिन्दुरिवेत्यादौ भवे दैवमनन्वय:॥१२॥

(भा० भू०) उपमेयहि उपमान जब कहत अनन्वय ताहि।
तेरे मुख की जोड़ को तेरो ही मुख आहि॥४७॥

अवज्ञा—

(च०) अवज्ञा वण्यते वस्तु गुण दोषाक्षयं यदि।
म्लायन्ति यदि पद्मानि का हानिरमृतद्युते॥१०७॥

(भा० भू०) होत अवज्ञा और के लगै न गुण अरु दोष।
परसि सुधाकर किरन को खुलै न पकज कोष॥१६४॥

समान उदाहरण परन्तु भिन्न लक्षण वाला अलकार दोनो मे केवल १ है जिसका नाम 'असभव' है।

असभव—

(चं०) असम्भवोऽर्थ निष्पत्ताव सभाव्यत्व वर्णनम् ।
को वेद गोपशिशुकः शैल मुत्पाटयिष्यति ।।७६।।

(भा० भू०) कहत असभव होत जब बिनु सभावन काजु ।
गिरवर धरि है गोपसुत को जानत इहि आजु ।।११७।।

इनके अतिरिक्त एक और अलकार ऐसा है जिसके लक्षण तथा उदाहरण दोनो भिन्न है --

चित्रालकार—

(चं०) काव्यवित्प्र वरैश्चित्र खड्गवन्धादि लक्ष्यते ।
ते ष्वाद्यमुच्चते श्लोकद्वयी सज्जन रजिका ।।९।।

कामिनीक भवत्खड्ग लेखा चारु करालिका ।
काश्मीर सेका रक्तांगी शत्रु कराडान्तिकाश्रिता ।।१०।।

(भा० भू०) चित्र प्रश्न उत्तर दुहू एक वचन में सोई ।
मुग्धातिय की केलि रुचि भौन कौन मे होई ।।१७९।।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि भाषा–भूषण चन्द्रालोक का नितान्त अनुवाद नही है। यद्यपि उसका अधिकाश भाग उसी पर अवलबित हैं। केवल भाषा-भूषण मे पाये जाने वाले निम्न अलकार[1] और चन्द्रालोक मे उनका अभाव भी इसी परिणाम का द्योतक है—

अब प्रश्न यह है कि इन २३ अलकारो का समावेश भाषा भूषण में कहा से हुआ है ?

---

१ अनुज्ञा २. प्रस्तुतांकुर ३. प्रतिबध ४. गूढोक्ति ५. गूढोत्तर ६. काव्यार्थापत्ति ७. अल्प ८. कारकदीपक ९. सूक्ष्म १०. रत्नावली ११. विधि १२. विवृतोक्ति १३. विशेषक १४. व्याजनिन्दा १५. निरुक्ति १६. मिथ्याध्यवसिति १७. मुद्रा १८. लेख १९. छेकोक्ति २०. ललित २१. लोकोक्ति २२. मुक्ति २३. हेतु

कुवलयानन्द से भाषा भूषण की तुलना करने पर इस प्रश्न का उत्तर भी मिल जाता है।

ये अलकार कुवलयानन्द में ज्यो के त्यो दिये हुये है—

(१) अनुज्ञा (२) प्रस्तुताकुर (३) गूढोत्तर (४) काव्यार्थापत्ति (५) अल्प (६) कारकदीपक (७) सूक्ष्म (८) रत्नावली (९) विधि १०) विवृतोक्ति (११) विशेषक (१२) व्यानर्निदा (१३) लेख[1] (लेश) (१४) ललित (१५) लोकोक्ति।

यथा—

अनुज्ञा—

(भा० भू०) होत अवज्ञा और के लगे न गुन अरु दोष।
परसि सुधाकर किरण कौ खुले न पंकज कोष ॥१६४॥

(कुवलयानन्द) दौषस्याभ्यर्थनानुज्ञातत्रैव गुण दर्शनात्।
विपदः सन्तु न शश्वत्तासु सकीर्त्यंते हरि ॥१३७॥

निम्न अलकारो के लक्षण समान है किन्तु उदाहरण भिन्न हैं—

(१) प्रतिषेध (२) गूढोक्ति (३) निरुक्ति (४) मिथ्याध्यवसिति (५) मुद्रा (६) छेकोक्ति (७) युक्ति (८) हेतु

यथा—

प्रतिषेध—

(भा० भू) सो प्रतिषेध प्रसिद्ध जो अर्थ निषेध्यो जाइ।
मोहन कर मुरली नहीं, है कछु बड़ी बलाई ॥१६४॥

(कुव) प्रतिषेधः प्रसिद्धस्य विषेधास्यानुकीर्तनम्।
न द्यूतमेतत्कितव क्रीडनं निशितै शरै ॥१६५॥

इस तालिका से भाषा भूषण के १०२ अलकारो का एक सक्षिप्त परिचय प्राप्त हो जाता है।

महाराजा जसवतसिंहजी ने वेदान्त विषयक छोटे-छोटे ५ ग्रंथों की रचना की है।

१ आनन्दविलास (रचनाकाल स० १७२४ कार्तिक सुदि दशमी)

२ अनुभवप्रकाश

---

१. इनके नाम क्रमशः उत्तर, लेश, कुवलयानन्द में दिये हुये है।

३ अपरोक्ष सिद्धान्त
४ सिद्धान्त बोध
५ सिद्धान्त सार

आनन्द विलास सार के अत मे लेखक ने लिखा है—

"जो आनन्दविलास कौ पढे सुनै चित लाई।
ताको उपजे ज्ञानपुनि जीवन मुकत सुभाई ॥१६८॥
भाषा कीन्हो ग्रंथ यह जसवर्तसिघ बनाई।
अरु आनन्दविलास तव दीन्हो नाँव जनाई ॥१६६॥
रस याकौ याके पढे जाँव पढे चित लाई।
फल याकौ तव आपही समुझे वहै बनाई ॥२००॥"

लेखक का भाव इससे स्पष्ट है। ज्ञानद्वारा वह पाठक को जीवन मुक्त बनाना चाहता है। आनन्दविलास की रचना ब्रह्म सूत्र पर लिखे गये शंकर–भाष्य के आधार पर हुई है।

"व्यास सूत्र को भाष्यपट शकर कर्‌यो बनाई।
ता ओढे अज्ञान कौ सकल सीति मिटि जाई ॥३॥"

इस पुस्तक मे शकर और एक जिज्ञासु के प्रश्नोत्तर के रूप मे दु ख और उससे छुटने के उपायो पर परस्पर सवाद है। शकर गगातट पर बैठे थे उसी समय एक व्यक्ति उनके पास आया और अपने दु ख की गाथा गाने लगा। उसने कहा-

एतो दुख मै जान्यौ अपने जानि।
तब मै छांडयौ घरु अरु कुल की कानि ॥४८॥
आवत आवत आयौ तुमरे पास।
जानत हौं अब ह्वै है पूरन आस ॥४६॥
मेरी इच्छा हुती सु कही बनाय।
तुम सरनै हौं आयौ लेहु बचाय ॥५०॥

शरणागत की आन्तरिक इच्छा का समाधान करने के लिये शकर ने सूत्र रूप मे कहा है—

एक अविद्या आसरे जानि सकल ससार।
नास अविद्या ज्ञान तें यहै मानि निरधार ॥५५॥

तत्पश्चात् दोनो के प्रश्नोत्तर चले और शकर ने अपने अद्वैतवाद के आधार पर उसकी शकाओ का समाधान किया।

'अनुभव प्रकाश' का विषय ईश्वर स्वरूप का वर्णन और तत्सबधी आपत्तियो का निराकरण है। यह भी पद्य मे लिखा गया है।

'अपरोछ सिद्धान्त' (अपरोक्ष) मे ईश्वर ब्रह्म और जीव की एकता तथा कारण-कार्य रूप से ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है। सक्षेप मे इस पुस्तक को लेखक के अनुसार 'आतम तत्व विचार' अथवा 'विवेक व्याख्या' कहा जा सकता है।

लेखक के शब्दो मे ही—

जुदौ समुझि कै एक ब्रह्म ऐसौ कहत अनेक।
पै वामै जब होत सब तब वह पूरन एक ॥९६॥

सब वामै वामै सबै सब ही कछु वा माहि।
न्यारे होत अज्ञान तै तेऊ न्यारे नाहि ॥९७॥

यह निश्चे करि जानि तू कहिये याहि विवेक।
एक एक वह एक है एक एक वह एक ॥९८॥

कीनौं जसवर्तसिंघ यह आतम तत्व विचार।
अरु अपरोछ सिद्धान्त यह धरयो नाम निरधार ॥९९॥

या अपरोछ सिधान्त के अरथ धरे मन मांहि।
छूटे सो ससार तै फिरि फिरि आवै नाहि ॥१००॥

'सिद्धान्त बोध' ब्रजभाषा गद्य मे ब्रह्म बोध का छोटा सा प्रयत्न है। अन्त मे लेखक ने १० सवैये भी जोड दिये हैं उसका सार यही है 'कि मुक्ति कौ उपाय ग्यान ही है, विना ग्यान मुक्ति ना होई और यह नि सन्देह करि जानि कि विना अनुग्रह ग्यान न होय।' ऐसा प्रतीत होता है कि अनुग्रह को लाकर लेखक ने भक्ति मार्ग और ज्ञान मार्ग को एक करने का प्रयास किया है। 'सिद्धान्तसार' मे आत्मज्ञान विचार है। अह का नाश भ्रम का नाश और—

"कहयौ समुझि सब विस्व कौ मिथ्या करि मन माहि।
एक आतमा अतिरिकत, और दूसरो नांहि ॥९७॥
नाना विध भासत जगत, हेत अविद्या ताहि।
ईश्वर जीव अभेद तै, नास अविद्या आहि ॥९८॥"

आदि का प्रतिपादन है। इसमे व्यापि–व्यापक सबध दिखाया गया है।

हिन्दी साहित्य मे वेदान्त विषयक ज्ञान की चर्चा इन ग्रथो से पहले भी होती आई है परन्तु यह ज्ञान प्रच्छन्न रूप मे मिलता है। गोरखनाथ, कबीर आदि सतो की वाणिया, जायसी आदि प्रेममार्गी सूफियो के आख्यान एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद की भावनाओ से भरपूर है। भक्ति सम्प्रदायो की तो कुछ बात ही निराली है परन्तु वेदान्त जैसे विषय को लेकर सीधे उसी पर लिखने का श्रेय महाराज जसवन्तसिह को मिलना चाहिए जैसा कि ऊपर दिखाया गया है। इन ग्रथो मे ब्रह्म, जीव–जगत, माया आदि सम्बन्धी अनेक तत्त्वो की सक्षिप्त व्याख्या प्राप्त होती है। जिज्ञासु शिष्य ने गुरू से अनेक प्रश्न किये—

जीव – जीव कह्यो ओ सीप मे भूठो रूप जोइ
भ्रम रूपे को चित्त मे, सीप न जाने होइ
विश्व रुपया भरम कौ कारण कहिये मोहि
सत्य आतमा एक तै दूजो भ्रम क्यो होहि ?

शंकर :– ब्रह्म अविद्या रीति यहै तू लेखिरे।

× × × ×

माया ब्रह्म प्रकाश तै आपुनि ईश्वर होइ।
ईश हुई ब्रह्माण्ड को रूप दिखावत सोइ ॥

जीव – वह ज्ञान कहो जिससे अविद्या का नाश हो।

शंकर .– ग्यान यहै जो एकता जीव ब्रह्म की होइ
माया ब्रह्म तै आपितु ईश्वर होई
ईश हुई ब्रह्माड को रूप दिखावत सोई।

जीव – वह ज्ञान कहो जिससे अविद्या का नाश हो।

शंकर – ग्यान यहै जो एकता जीव ब्रह्म की होई।

जीव – ईश्वर का क्या रूप है ?

शंकर – **प्रतिबिम्ब माया कै विषै, सुद्ध ब्रह्म को आहि।**
यह निहचै करि जानि तू ईस्वर कहिये ताहि ॥

शिष्य – चेतन तो सर्व व्यापक है अरु एक ही है, पै यह देखन मे अंत' करण प्रतिबिंबित चेतन अरु जड मे भेद भासै है। सु यह जुक्ति पूर्वक समुझाई कहिये।

गुरू – चेतन तो एकै है, अरु जड जुहै सु मिथ्या है, तामै तो सदेह है नाही, और यह भेद जुहै सु व्योहार मे है, तहाऊँ देखि कि ऐसे है ज्यो आकाश मे चन्द्र है ताकौ बिम्ब सब पर एक सौ परै है, कहा जल, कहा पृथ्वी, कहा परवत, कहा अछ, कहा रेत, पै देखि कि जल मे प्रतिबिब होई हौ और ठौर स्वच्छ नाहिं, तहा चादनी ये होई है, त्यौहि देखि कि जैसे जल स्वच्छ है तेसै ही अत करण स्वछ है, तातै चेतन कौ प्रतिबिव होई है तव चेतन भासै है और जहा स्वछ नाहि तहा हूँ चादनी की भाति चेतन तौ है ही, पै प्रतिबिव नाही होत तातै जड कहै है, पे तूयौ जानि चेतन एकै है तामे कछु भेद नाही, और जड जुहै सु अग्यान करिकै भासै है अरु जव ईश्वर के अनुग्रह से ग्यान हो ही है तव सब एकै चेतन भासै है, जैसे सव आभूषण सुवन मे ही है।

शिष्य – ईश्वर कौ अनादि हूँ मानै है, सु जो ईश्वर कौ उतपति है तो अनादिपनो कहा तै, और जो ईश्वर अनादि है तो उपजनो कैसे वने और शास्त्र मे तो ईस्वर की ए दोऊ रीतै कही है, और इन दोऊ भातिनी मे तो विरुद्ध प्रतछ है सो यह तुम्हारी क्रिपा विना कैसे समुझयौ जाइ, तातै हौ तुमसौ विनती करो हो। क्रिपा करिकै जैसे ईश्वर की इन दोऊ भातिन कौ विरुद्ध मिटै तैसे समुझाई कहिये।

गुरू – ईश्वर अनादि मान्यौ हे, व्यापक मान्यौ है, और करता मान्यौ है, तातै सगुन मान्यौ है, और देखि कि ब्रह्म तौ अनादि ही है, निराकार हूँ है, अरु व्यापक हू है, और अकर्त्ता कहे है, तातै निर्गुन है, तातै ब्रह्म की इच्छा को ईश्वर जानि और विश्व है सु इच्छा ही सौ उपज्यौ है, तव देखि कि इच्छा कौ ईस्वर मानै अनादिता आई और उतपति हू आई क्योकि इच्छा बिना भयै हू चेतन मे इच्छा बीज रूप है ही।

इस प्रकार इसमे प्रश्नोत्तर दिये गये हे।[1]

भाषा भूषण के ऐतिहासिक महत्व का पहले उल्लेख हो चुका है। उपसहार मे कहा जा सकता है कि जसवतसिंह जी ही वह प्रथम महाराज हैं जिनका ध्यान साहित्य के इस अग की पूर्ति पर गया। यदि एक वार पूर्ण मौलिक ग्र थ निर्माण करने का ध्येय इन्हे न भी दिया जाय तो भी अनुवादक के नाते उनकी यह देन हिन्दी साहित्य के लिए न्यून नही है। सफल अनुवादक होते हुए अन्य ग्र थो से अपनी रचना को सपूर्ण वनाकर उन्होने अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है।

---

१ 'प्रवोध चन्द्रोदय' के अनुवाद के सम्वन्ध मे देखिये 'हिन्दी नाट्य साहित्य का इतिहास' डा० श्री सोमनाथ गुप्त कृत पृ० ८१।

राजघराने के किसी अन्य व्यक्ति ने काव्य शास्त्र की ओर कदम नही बढाया। इस स्थिति मे सेहरा भाषा भूषण के लेखक के सिर रहेगा ही।

महाराजा अजीतसिंह —

महाराज अजीतसिंहजी महाराज जसवर्तासिह प्रथम के पुत्र थे। वही उनके उत्तराधिकारी हुए। महाराज अजीतसिंहजी की रचनाओ के सम्बन्ध मे हमे उनकी ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि को भूलना नही चाहिए। औरगजेब जब जसवर्तासिहजी से खुल कर लोहा न ले सका तो उसने उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके परिवार से प्रतिशोध लेने की बात सोची। महाराज अजीतसिंह और उनके अभिभावको को मारवाड की रक्षा करने के लिए जितना उद्योग करना पडा उसका विवरण इतिहास के पन्नो मे लिपिबद्ध है। उनकी जीवन घटनाओ के सम्बन्ध मे 'बालकृष्ण दीक्षित' रचित 'अजीत चरित्र' तथा 'जगजीवन' कृत 'अजीतोदय' से बडी सहायता मिलती है। दोनो ग्रन्थ सस्कृत मे है[1]।

हमे अजीतसिंहजी की जीवन घटनाओ मे विशेष रूप से गहरा पैठने की आवश्यकता नही यद्यपि दु:ख की बात यह है कि राजस्थान के इतिहासकारो ने उनकी साहित्यिक प्रवृत्तियो और ज्ञान प्रसार करने वाले कार्यों के ऊपर मौन रहना ही उचित समझा। जिस व्यक्ति का जीवन राजसी विरोध मे अपनी शक्ति को सुगठित एव सुरक्षित रखने मे ही व्यतीत हो उसका साहित्य प्रेम आश्चर्य और विवाद का विषय हो सकता है। अपने पिता के पद-चिन्हो पर चलने वाले इस व्यक्ति ने अनेक साहित्य सम्बन्धी सेवाये की है।

अजीतसिहजी के बनाये दो ग्रथो का पता चलता है[2]।

१ गुणसार

२ भाव विरही

मिश्रबन्धु विनोद के अनुसार उनके बनाये हुये ग्रथो मे दुर्गापाठ-भाषा, राजरूप का ख्याल, निर्वाणी दोहा, ठाकुरॉ रॉ दोहा, भवानी सहस्त्र नाम और फुटकर दोहे आदि रचनाये भी सम्मिलित है[3]। इन फुटकर रचनाओ मे से भवानी सहस्त्र नाम,

---

१. 'पुस्तक प्रकाश' जोधपुर मे उपलब्ध।

२. वही

३. मिश्रबन्धु विनोद भाग-२ (संवत् १९८४), पृष्ट ५५६-५७।

निर्वाणी दोहा, फुटकर दोहे, गुणसार मे सग्रहीत है। दुर्गापाठ इनकी रचना नही प्रतीत होती।

'गुणसार' मे देवी चरित्र के अन्तर्गत, हिंगुलाज की स्तुति, योगमाया की स्तुति, अवश्य आती है। ऐसा प्रतीत होता है कि देवी के इन दोनो रूपो को दुर्गा मानकर सभवत· ये रचनाये दुर्गापाठ के नाम से ही विख्यात होगई है।

'राजरूप का ख्याल' नामक रचना का कोई चिन्ह दोनो पुस्तको मे उपलब्ध नही है। दोनो का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

भावविरही:—

इस ग्रन्थ मे महाराजा श्री अजीतसिंहजी की अपनी रानी सिसोदणीजी के विरह के विषय की कथा पाई जाती है। अजीतसिंहजी का विवाह मेवाड की राजकन्या से हुआ था। स० १७६८ से पूर्व ही इनकी रानी की मृत्यु होगई जैसा कि निम्न दोहे से प्रकट है :

सवत् सतरह अठसवें बवअने सिव
सपना मे वे ही सजन मुझको मिले करप्पा ॥३६॥

यह रचना महाराज ने अपनी रानी की मृत्यु के उपरात लिखी है। इसका नाम 'भाव विरही' इस प्रकार हुआ कि कवि ने अपनी स्वर्गगता पत्नि के प्रति अपने विरहउद्गारो को प्रकट किया है।

रचना का विषय इस प्रकार है—कवि केशव से अपने विरह का अन्त करने के लिए प्रार्थना करता है। कवि जानता हे कि उसकी प्रेयसी वहाँ गई है जहाँ से मिलने की कोई आशा नही।

वसन्त ऋतु आई। आम फले, कोयल बोली, किन्तु प्रिया पास मे नही है। उसे बाल्यकाल के खेल, जब वे साथ खेले थे, स्मरण आते हैं। रानी का स्वरूप आखो के सामने आता है। वह व्यथित हो उठता है–एक दिन रानी अपने वचनानुसार उसे स्वप्न मे मिलती है और कहती है हम फिर मिलेगे, तुम्हारे स्वागत के लिए मै इसी राह आऊगी। स्वर्ग के सुख मुझे अच्छे नही लगते। मै तुम्हारी राह देख रही हूँ। रानी अपनी सखी से अपनी विरहदशा का वर्णन करती है। वह विरहिणी लौकिक नारी की तरह विरह व्यथा से पीडित है। कवि का स्वप्न टूटता है तो देखता है प्रेयसी पास नही। वह अनुभव करता है स्वप्न के समान ससार मे उसका कोई साथी नही। वह रानी का पुन पुन· स्मरण करता है और प्रार्थना करता है

कि जिस प्रकार तुम स्वप्न मे मिलती हो वैसे ही प्रगट रूप मे मुझसे मिल सको तो तुम्हारे समान कोई नही ।

प्रस्तुत रचना दोहा छद मे लिखी गई है । दोहो की सख्या ८३ है । इसमें वर्णित विरह का कारण, प्रेयसी की मृत्यु है । कवि के सहज स्वाभाविक उद्‌गार इस रचना मे प्रकट हुए है ।

उदाहरणार्थ .—

सदा निपट कोमल ऊंतो क्यु मन कियो सवोर ।
नेह करे निरखे नही प्यारी मेरी ओर ॥४॥

सजन नित कोमल ऊंतो क्यु कीधो प्रिठमन ।
तो सु मोकु विण मिल्यॉ वऊला बीता दिन ॥५॥

जिण मारग सजना गया नहीं मिलणरी आस ।
पग पापी पोहचें नही नां घुतैनी सांस ॥६॥

जब रानी मिलने का वचन देकर भी नही आई तो—

वसत-अंब फल्या अणपार बोलें कोयल सांघणी ।
सुरापोस बदतिणवार सालें मो सीसोदणी ॥१०॥

बचपन के साथी जीवन-साथी बने—

बालापण ले लौ गयौ षेल्या षेल अपार ।
तो बिण मोकु सुंदरी दुष लागै अणपार ॥१७॥

रूप-वर्णन मे कवि की युक्ति इस प्रकार है—

तौ मुख पुनिम चंद सो नयण मृग जणीहार ।
चमकत दामणि ऊसण द्युति अंग सोता अणपार ॥१८॥

अरुण वरण मृगराज कर तो मुख पुनिम चद ।
सबै सुविध सीसोदणी सुंदर सुख को कंद ॥१९॥

कोकिल कंठ विसाल चष कंचण वरणी देह ।
वीबडीयां बऊ दिन ऊआ सुन्दर मैलो देह ॥२०॥

कवि की व्यथा इन पक्तियो में व्यक्त हुई है । वह कहता है—

उवै बातां उण सु गइ अब वैं बातां काइ ।
आठ पोहर दिल माह रे लागी रहत हैं लाइ ॥२८॥

उवै बातां उणसुं गइ अब वै बातां नाहि ।
तातें कोउ आगरी लागी मो दिल माहि ॥२६॥

उवै बातां उण सु गइ अब वे बातां न पाय ।
सेंऊ सालें मुकरीयें मौ मन विरह न माय ॥३०॥

सेऊ बातां सैणरी ऊब ऊब आवत चित्त ।
उर तीतर पैरे प्रघल करवट चालत नित्त ॥३१॥

वै बातां उण सु गई अब वे बात न पाय ।
मो मन जल ओवे मबी पड़ी तडफा थांय ॥३२॥

कवि को स्वप्न में मिलने की चाह —

सेंऊ सपनेंय कही कवल दियो कर आय ।
जब तुम चाहत मुक कुं तुरत मिलैंगे आय ॥३५॥

स्वप्न में रानी कहती है——हम फिर मिलेगे । तुम्हारे आगम हित राह में तुम्हारे सामने आऊ गी ।

सजन तेरे राहसिर तहारे होंड जाय ।
तुम आगम जांणऊं साह्मी मिल सूं आय ॥४३॥

सजन तेरे कारणें मैं कीनो इत धाम ।
सती संग लीने उंते आय लीयो विसराम ॥४४॥

स्वर्ग मे रहकर भी रानी स्वर्ग के सुख उपभोग नही कर पाती है क्योकि वह अपने प्रिय को राह देख रही है—

कचनपुर के बीच ही रतन जटन है धाम ।
अेंय वस ऊन तुझ कऊ मेरे इनाहि काम ॥४५॥

जब तुम सजन इत कु आवोगे जगनाथ ।
मारग मे साम्ही मिलै तबें चलु गी साथ ॥४६॥

उसकी विरह व्यथा लौकिक नारी के समान उलाहना भरी है—

सखी सैण आये नहीं आयो सावण मास ।
देषो कपटी पीवरो कुण करै बैसास ॥५५॥

देख सषी आये नहीं आयो भऊं मास ।
ताते कपटी पीवरो करें कौण वेसास ॥५६॥

रित बीति आये नहीं आयौ आसु मास ।
लोली कपटी पीवरो करे कौण बैसास ॥५७॥

स्वप्न टूटने पर कवि की उक्ति इस प्रकार है—

च्यार ओर फिर जोवियो दिलह मिटावण दाह ।
जागत उण कब पाइये सपने ही की राह ॥७०॥

मै जारायो ससार मे सुपने समो न सैण ।
बऊ दिन का बिबरासयण आंण मिलावै रैण ॥७१॥

स्वप्न टूटने पर कवि को अपनी प्रेयसी की स्मृति हो आती है और वह उसे स्मरण कर कहता है—

सुधासायण चिंतामणी पुनि महदो चंद ।
अमखेल आणद भइ सुभ गुण तणो समंद ॥७५॥

इसके पश्चात् कवि कामना करता है—

सुपना में जो साजनां आणं मिलावे मोय ।
सो तु परगट मेल ज्यु नाहीं तुझसौ कोय ॥८३॥

गुणसार[1]—

गुणसार में महाराजा अजीतसिहजी की कुछ रचनाओ का संग्रह है जिसकी सूची इस प्रकार है—

१. मगलाचरण योगमाया स्तुति
२ देवी चरित्र–हिगुलाज स्तुति
३ शभु निशभु वध
४. सर्वांग रक्षा कवच (ब्रह्म कवचानुवाद)
५ भवानी सहस्त्रनाम
६. हिंगुलाज–स्तुति
७. श्रीकृष्णचरित्र दोहा (१) चीरहरण (२) कस–वध
८ देवी कृपा से अजीतावतार
९ निर्वाणी दोहा
१०. रतन कवर रत्नावती

---

१. रचनाकाल संवत् १७६०, फागुन बदि त्रयोदशी । देखो पृष्ठ ९५.

(क) रागो का वर्णन

(ख) राजा सुमीत को रिषीश्वर उपदेश

१ गीता १० वा अध्याय

२ पापी की गति

३. भागवत चार स्कध

४ ध्रुव वर्णन

५. एक धार्मिक नृपकथा

६. महाभारतीय राज्य स्थिरता

७. एकादशी कथा

८ हेमाद्रि प्रयोग विविधदान

(ग) माता का सतीत्व
पिता की अतिम क्रिया, स्वराज प्राप्ति

(घ) हास्य विनोद

(ङ) ऋतुओ के दोहे

(च) स्वप्नो के दोहे

(छ) पपीहा

(ज) अखवाड़े

(झ) परस्पर दम्पति पत्री

(ण) पति आगम

(त) वसत वर्णन

(थ) कृतज्ञ लक्षण पुन पाठन

(द) सिहादि गुण वर्णन

(ध) पुत्र को शिक्षा विविध

(न) हिंगुलाज स्तुति

(प) गगा स्तुति

पुस्तक का प्रारभ इस प्रकार हुआ है—

।। श्री परमात्मनें नम. श्री गणेशायनमः ।। श्री महामाय हींगुलाज जी सदा सहाय ! अथ श्लोक नवा महाराजधिराज महाराजा श्री श्री अजीतसिंहजी क्रित गुणसार ग्रन्थ लिष्यते ।। अथ गाथा

१. सबसे पहले 'मगलाचरण' है। इसमे योगमाया की स्तुति सस्कृत मे लिखी हुई है। एक श्लोक 'कटारिका पूजन' का भी है (जिसका आशय है मेरी देह की

रक्षक कटारी को प्रणाम) । इसके पश्चात् हिंगुलाज स्तुति दोहो मे लिखी गयी है। उदाहरणार्थ–

लक उथापण ऊतथपण । परवेछद परमाज।
अमर कियो हनुमान कुं । सोहे श्री हिंगुलाज ॥२६॥

इस प्रकार' मगलाचरण' और 'कटारि का पूजन' सस्कृत श्लोको के सकलन हैं।

२. देवी चरित्र—यह खण्ड काव्य है जिसमे शभु-निशभु वध का वर्णन किया गया है। यह दोहो मे लिखा गया है।

इसकी कथा इस प्रकार है कि एक राक्षस दूत किसी रूपवती नारी के सौदर्य पर मुग्ध हो जाता है। वह अपने दैत्यराज के पास आकर निवेदन करता है कि वह स्त्री उन्ही के योग्य है। इस पर दैत्यराज राक्षसो को उस स्त्री को पकड लाने की आज्ञा देता है। वह स्त्री, जो देवी थी, राक्षसो को युद्ध मे पराजित कर देती है। अत मे शभु-निशभु स्वय उससे युद्ध करने जाते है—देवी उनका भी सहार कर देती है। देवता हर्षित होते है—

देव घणु मन हरषीया, निरभय हुआ नचित।
अबा सु असुराण री, मिट गई सबै अनीत ॥१३७॥

३. सर्वांग रक्षाकवच—यह ब्रह्मकवचानुवाद है। इसका आरभ दस दसारक्षक स्तुति से हुआ है।

पुरबदिशी रिष्या करे, सहज चक्षु सुर राय।
महाराजा अगजीत रें इन्द्राणी यह भाय ॥१४५॥

दक्षिण मे वाराह, पश्चिम मे वारूणी इत्यादि दसो दिशायें नाना रूप धारण कर रक्षा करती हैं।

दस ही दिस रिक्षा करें नाना रूप धराय।
महाराज अगजीत रें श्री हींगुलाज सहाय ॥१५३॥

सर्वांगरक्षा के अतर्गत—

जया अग्र रिक्षा करें विजया पृष्ट सहाय।
महाराज अगजीत रें हींगुलाज महामाय ॥१५५॥

रक्त मजामां से रहे सदा पुष्ट की दाय।
अस्तमेद रक्षा करें पारबती यह पाय ॥१७५॥

यह सस्कृत का अनुवाद है। यह सब स्त्रोत साहित्य है। भाषा मे इसी तरह का 'हिंगुलाज स्तुति' ग्रंथ है।

४. **भवानी सहस्त्रनाम**—इसमे सस्कृत श्लोको की प्रधानता के साथ हिन्दी छद भी प्रयुक्त हुए है यथा–भुजग, प्रयात, त्रिभँगी, कवित्त, दोहा, हसावली, हरिगीतिका, नाराच आदि।

जब लग सूर सुमेर चद्र मां शकर उडगन
जब लग पवन प्रताप जगत मधि तेज अगनितन
जब लग सात समुद्र सयुगत धरा विराजै
जब लग सुर तैंतीस कोटि आनद समाजै
तब लगाय वै लाषा सुक्रत सहस नांम ~ मे रहो।
अगजीत कहे इनको पढत सुनत सकल सुष को लहो ॥१७६॥

५ **दुहा श्री वांकुरा रा**—इसमे रीतिकालीन ग्र थो की तरह राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन है।

धनो दिहाजो धन घड़ी धन महोरत धनवार।
अवनि भार उतारवा प्रभु लीयो अवतार ॥१॥
पीताम्बर कबनी कबै सीस–मुकट उर–माल।
रीझो राधे लामली आवत देषि गुपाल ॥२॥

कृष्ण, रुक्मणी, सत्यभामा और गोपियों के साथ रासलीला करते है, उन्होंने काली नाग को नाथा, कस का वध किया इत्यादि—

क्रीड़ा काजें केसवो आये गोपिन मांहि।
सबहन के अंबर हरे बैठे तरपर जांहि ॥११॥

इसी प्रकार लीला के दोहे कहे है।

६. **श्री चीरहरण चरित**—कथात्मक रूप से लिखा गया है। प्रसग इस प्रकार हे—गोपिया नहा रहीं हैं तव कृष्ण,

'ले अवर तरुपर चढे लेप न आप अलेष'

गोपियाँ व्याकुल है कौन चोर ले गया। इतने मे कृष्ण कदम्ब पर बैठ बाँसुरी की तान छेडते हैं, गोपियाँ समझ जाती हैं कि उनके चीर के हरणहार कृष्ण ही हैं। वे

गोपियो को बाहर बुलाते है। गोपियाँ हार मानकर जल से बाहर निकलती हैं एव सूर्य से प्रार्थना करती है कि कृष्ण के सिवाय कोई उन्हे निरावृत्त न देखे। फिर कृष्ण उन सब के साथ रासलीला करते है। जल मे नग्न न नहाने की भागवत की शिक्षा यहा नही दी गई है। उदाहरण के लिये—

गोपियाँ कहती है—

केशव कपटी आनि के देष्यो चाहत गात।
लाल षटाइ मन लग्यो लषी तुम्हारी बात ॥२६॥

कृष्ण उत्तर देते है—

वचन हमारो मांनि ल्यो करो मती कबुकांण।
जाणि न देऊ गेह कु मोहि नद की आंण ॥२९॥

गोपियाँ फिर हठ करती है—

लालन हममे चुके हैं फिर फिर उत्तर देह।
अबर दीजें लामले गुनो माफ कर लेह ॥३१॥

अत मे गोपियो को जल से बाहर आना ही पडता है और वे सूर्य से वदना करती है—

रवि वंदे कर जोड़ के जल तें बाहर आय।
नद ललारी के तबै अंबर दिये उठाय ॥३७॥

सबै गोपिकां संग लीये करै रास ब्रजराज ॥३८॥

अत मे कवि राम और कृष्ण को एक समझ कर उनके चरित्र का गुणगान करता है। इस प्रकार यह समाप्त होता है।

कंस चरित्र एवं कंसवध—यह कथा कवि इसके बाद तुरत ही प्रारंभ कर देता है—

एक समै अकरूर कु निकट बुलाये कस।
गोकल तें ल्यावो किसन राजव मेय कुवंस ॥६४॥

अक्रूर के गोकुल पहुँचने पर नंद उनका स्वागत करते है किन्तु—

नंद यसोदा सुनत ही सिथिल भये सब गात।
वचन सुनत चक्रत भये उतर दियो न जात ॥८०॥

तब कृष्ण मथुरा जाते है और कंस का बध करके—

'जाय मिले वसुदेव सु' मिलु देवकी माय"

इस प्रकार यह भी कथात्मक रूप में लिखा गया है—

७. श्री अजीतावतार—यह रचना समवत किसी और कवि की है। इसकी कथा इस प्रकार है—

सृष्टि पर अनाचार देखकर श्रीजी सोचते हैं-किसका अवतार कराकर उस पर अपना हाथ धरू̐। उनकी दृष्टि श्री हिंगुलाज पर पडती है। पृथ्वी और धर्म श्रीजी के पास औरगशाही के विरुद्ध पुकार लेकर जाते है। सब देवता व्याकुल हैं। हिंगुलाज सबको आश्वस्त करती है। दुर्गादास को स्वप्न दिखाई देता है जिसमे एक मुनिराज उन्हे बतलाते हैं कि अजीतसिंह के रूप मे हिंगुलाज अवतार लेगी और उन्हे आज्ञा दी है कि दुर्गादास उनका कार्य सम्पन्न करे। दुर्गादास जागते हैं किन्तु स्वप्न को सत्य समझ कर वे जोधाणा और दिल्ली दोनो को फतह करते है।

८ श्री निर्वाण दुहा—इसमे नीति, राधाकृष्ण का प्रेम, वैराग्य और ससार की क्षणिकता के सम्बन्ध मे उक्तियाँ है। उदाहरणार्थ—

मन के विषय में—

मैं मन जान्यो कछु और हैं होय गयो कछु और।
अजीतसिंघ मन की प्रक्रित रहें न एकों ठौर ॥७४॥

उसी प्रकार नीति के विषय में भी—

होत नार इक पुरुष सु' तजकर पर-घर जाय।
बाम लाज कुल आपणो वेश्या नाम कहाय ॥७५॥

भगवतगुण—

हिरणकुस प्रहलाद कु' बहोत दिषाइ त्रास।
प्रगट भये जब थंभ से पुरी जन की आस ॥८४॥

लीलावर्णन—(कवित्त)

सुन्दर श्याम घटा उनइ बग पंक विराजत मोतसरी
सीतल मंद समीर चले पटपीत चमंकत ज्यु' विजुरी
उत चातक मोर जिगोर करें इत मोहन बंसी सु रागकरी।
घन से बनि राजत हैं घनश्याम लवें हसि राधिके पाय परी ॥१३४॥

राधागोपीकृष्ण प्रेम—

प्रीत लगाई सांवरे सो जानी सब कोय।
अब कवऊं न बिसारियो सो फिर हांसी होय ॥२॥

६. रतनकुंवर रतनावती—यह एक वृहद प्रबन्ध काव्य है। इसकी कथा इस प्रकार है—

आनदग्राम मे सुमीत नामक एक अत्यन्त न्यायप्रिय राजा था। उनके राज्य मे सुख और शाति थी। उनकी रानी सतरूपा (सत्यरूपा) प्रतिव्रता थी। इनके रतनकुंवर नाम का एक पुत्र था जिसे आखेट बहुत प्रिय था। वह एक बार अपने साथियो सहित आखेट को गया। शिकार खेलते देर हो जाने पर वह अपने साथियो सहित एक बाग मे, जो पास ही था ठहर गया। वह बहुत दूर निकल गया था। यह उद्यान विलासपुर के राजा मोरधज का था। उसी उद्यान मे मोरधज की लड़की रतनावती भी अपनी बुद्धिमती दासी गुणमाला सहित माता की पूजा करने आई।

सुकल पक्ष की अष्टमी सब पूजापो साज।
चली कुँवरी रतनावती देवी पूजण काज ॥६॥

'इण भाँति सुं रत्नावती नें रतनकुँवर री च्यार निजर उई। रतनकुँवर तो आगे आय बाग मे उतरयो थो सो बाग रा मेहले झरोषे बैठो बाग रो तमासो जोवतो थो। ने रत्नावती नेमवध माताजी रे मारग होय ने हर रे ने देव रे आई। तरै वारला बाग मे घोडा आदमियो रो बोलणो सुणियो। तरै उवीनुं जोवण लागी। तरै झरोषा सामी नजर पडी। तबै रत्नावती रतनकुँवर नुं दीवो। वहा दूं री निजर मिली। निमष एक निजर जोड रह्या। इतरै दासी गुणमाला पापती आयनै कह्यो काऊ जोवो। वाइते पवर रापो। अवे थाह राज मा रहणरी ने जोवण री जायगा नवें। हालो माताजी री पूजा करो। तरै इण आयी। उणी रहने माहे ले गई। पिण इण रौ जीव कवर माहि रहियो ने कवर रो जीव इण मे रहयो।

फिर रतनावती को छोडकर गुणमाला रतनकुँवर से मिलती है। रतनकुँवर उससे पूछता है कि रतनावती से कैसे मिला जा सकता हे ?

आविय चौदस किसनसित लेहरजा पोसाज।
नेम वध आवे इहां देवी पूजण काज ॥१॥

वह राह मे जाकर बैठ जाता है और दोनो एक दूसरे की ओर देखते हैं। 'तवे फेर च्यार निजर ऊआ। पीठि दृष्टि सुं देपि। कुंवर रा चित्त सु चित्त लगाय

ने धरा दिसी हाली । सो देह तो दोय दीसें वे । पीण जीव पालें ही जदें देषणें मे मिल रह्यावैं' ।

रतनकुंवर विरह–व्याकुल हो उठता है । उसके मित्र बुद्धिपाल और वीरपाल उसे दिलासा दिलाते हैं कि यह नारी तुम्हारी ही है । रतनावती भी उसके लिये अत्यत व्याकुल होती है । उसकी दशा निम्न पक्तियो मे वर्णन की गई है—

घायल ज्युं घुमत रऊं षड़ी रऊ इक पाय ।
नैंन हमारे साजनां देषें तपत बुझाय ।।४६।।

नैंन लगे निसदिन रहैं करें नहीं विसवास ।
सेवा मे सजनतणें पलक न बोये पास ।।४७।।

छ सात बार वे दोनो मिलते है और अत मे दोनों का विवाह कराने का गुणमाला पूर्ण प्रयत्न करती है। शादी हो जाती है। इसमे कुछ अश्लील वर्णन भी है। उसके पश्चात् दुहे है जो डिंगल भाषा मे दिये गये हैं।

इसके बाद राजा सुमीत का पत्र आता है जिसमे रतनकुंवर को जल्दी आने को कहा जाता है। रतनावती को दहेज आदि देकर रवाना कर दिया जाता है। वहाँ पहुँच कर रागरग मनाया जाता है। यहाँ पर समय समय के अनेको रागो का वर्णन दिया गया है। कुछ समय पश्चात् उनके पुत्र होता है। वह बडा हो जाता है और राजा सुमीत उसका विवाह कराते हैं। अवस्था प्राप्त करके उनका अत समय निकट आता है और वे धर्मशास्त्रो के अध्ययन मे लगते है। गीता, भागवत, रामायण, महाभारत आदि सभी उसने पढ ली। तब राजा सुमीत की मृत्यु हो जाती है। पुत्र माता को सती होने से रोकता है किन्तु रानी अपनी सास की शिक्षा का स्मरण करती है–

'बिना पुरुष जिकी स्त्री एक पलक उभ्रे रहे वैं तिणानु अनत कोट ब्रह्म हत्या———।' अत वह सती हो जाती है।

इसके पश्चात् राजा रतनकुंवर और रानी रतनावती सानद रहते हैं। इस समय एक सदेशवाहक राजा बुद्धसेन का एक पत्र लेकर आता है जिसमे लिखा था कि वऊसेन ने बुद्धसेन पर आक्रमण कर दिया है और बुद्धसेन रतनकुंवर से सहायता की प्रार्थना करता है।

रतनवकुंर और उसकी सेना के स्वागत के लिये बुद्धसेन अपने राज्य-की सीमा पर उसे मिलता है। जब वऊसेन को यह बात ज्ञात होती है कि रतनकुंवर

बुद्धसेन की सहयता के लिये आया है तो वह अपने सदेशवाहक के साथ रतनकुंवर को आत्म समर्पण का पत्र भेजता है। बुद्धसेन और वऊसेन दोनो ही रतनकुंवर की आज्ञा का पालन हैं। इधर रतनकुंवर और रतनावती को वियोग की पीडा असह्य हो उठती है। रतनावती वादलो से कहती है कि जाकर सेना पर बरसें इत्यादि।

इसके पश्वात् ऋतुओ का वर्णन एक एक दोहे मे दिया गया है-'रिता रा दोहा' के वाद 'सुपना रा दुहा', पपहीया (पपीहा) रा दुहा', 'पपवाडा रा दुहा', 'पत्रीलाव रा दुहा' सवैये आदि है। दोनो के पत्र एव पत्रोत्तर वर्णन है फिर 'पीय आगम दुहा' है और वसत वर्णन है। फिर कुंवरलाल को शिक्षा आदि देने के लिये व्यासजी को वुलाया जाता है। कुमार सव विद्याओं मे निपुण हो जाता है। एक दिन राजा को वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। उसकी प्रवृत्ति आध्यात्मिकता की ओर बढती है। राजा सन्यास ले लेता है रानी भी साथ चली जाती है। कुंवर और प्रजा भी उनके पीछे जाते है किन्तु राजा की प्रवल विरक्ति भावना देख वे पुन· लौट आते हैं। राजा रानी तीर्थयात्रा करते हैं। श्री हिंगुलाज की स्तुति करते है। इस प्रकार उन्होने कई बार पृथ्वी की परिक्रमा की फिर तपस्या करने लगे। भगवान प्रसन्न हुए और दर्शन दिये एव सामीप्य मुक्ति का उन्हे अधिकार दिया। स्वर्ग से विमान आया। राजा ने अपनी देह छोड दी और रतनावती ने अपनी देह मे से अग्नि प्रकट की और उसमे जल गई। स्वर्ग मे दोनो माता-पिता से मिले। वे उन्हे देख वहुत हर्षित हुए।

कहे वहें श्रवनन सुनें वलि देखें कर लाय।
नहचे उण मानव तणा पाप दूर होय जाय ॥१॥

प्रथम वरण शृ गार को राजनीति निरधार।
जोग जुगति यामें सबे ग्रंथ नाम गुणसार ॥२॥

सवत् १७६० वर्षे फागुण वदि त्रियोदशी दिने गुणसार ग्रंथ श्रीमहाराजधिराज महाराज श्री अजीतसिंह जी कृत गुणसार ग्रंथ सम्पूर्णम्।

महाराजा अजीतसिंह की कविता विषय और शैली की दृष्टि से उनके पिता से नितान्त भिन्न है। व्यक्तिगत सुख और दुख की जिस भावना का प्रस्फुटीकरण इनकी कविता मे हुआ है वैसा महाराज जसवतसिहजी की कविता मे नही पाया जाता। पिता और पुत्र का स्वय कवि होना और कवियो को आश्रय देना राठौड घराने के लिये एक महत्त्वपूर्ण परम्परा की स्थापना है। इनके आश्रित कवियो मे बालकृष्ण, जगजीवन और श्याम राम के नाम उल्लेखनीय हैं।

महाराज अभयसिंह

महाराज अजीतसिंह के पश्चात् उनके पुत्र महाराज अभयसिंह जोधपुर राज्य के स्वामी हुए। दिल्लीपति ने इनका सम्मान किया और अजीतसिंह के समय मे जब्त किये गये कई परगने इन्हे वापिस दे दिये। परन्तु अभयसिंह का शासन काल उनके सरदारो के उपद्रवो का काल ही अधिक रहा। छोटी छोटी जागीरो को देकर उन्होने अपने साथियो को प्रसन्न करना चाहा। परिणाम यह हुआ कि अनेक जागीरो के कारण राजसत्ता की एक सूत्रता दृढ न रह पाई। नागौर के परगने को अपने भाई बखतसिंह को देकर अभयसिंह ने एक नई मुसीबत मोल ले ली। बखतसिंह सदा ही जोधपुर की गद्दी के स्वप्न देखते रहे और अपने भाई को चैन की नीद सोने से वचित रखा।

महाराज अभयसिंह को काव्य और साहित्य से अनुराग था। अनेको चारण उनके आश्रय मे रहते थे। चारण कवि करणीदान इनमे प्रमुख थे। इनके लिखे हुए 'विरद-शृ गार' नामक ग्र थ पर महाराजा ने 'लाख पसाव' दिया था और स्वय अश्वारूढ हो करणीदान को हाथी पर चढाकर मडोर से उसके घर तक पहुँचाने गये थे। इस घटना के विषय मे यह दोहा प्रसिद्ध है——

अस चढियो राजा अभो, कवि चाढे गजराज।
पोहर एक जलेब मे, मोहर हले महाराज॥

करणीदान के अतिरिक्त अनेक कवियो ने इनके आश्रय मे रहकर काव्य रचनाएँ की। भट्ट जगजीवन रचित 'अभयोदय', वीरभाण लिखित 'राजरूपक', रसपुंज का 'कवित्त श्री माताजी रा', माधोराम कृत 'शाक्त भक्ति प्रकाश' एव 'शकर पचीसी' तथा 'माधवराम कुण्डली' आदि ग्र थ एव ग्र थकर्ता उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त रसचद, सेवक, प्रयाग, माईदास, सॉवतसिंह, प्रेमचन्द, शिवचद, अमदराम, गुलालचद, भीमचद, पृथ्वीराम आदि को भी राज्याश्रय प्राप्त था। नरहर, आढाकिशन, सिढायचहरि, मेहड्डवलू, दधवाडिया, खेम, सादूनाथ और आढामहेश को कई बार पसाव दिये थे। महाराज की काव्य विषयक गुण-ग्राहकता का परिचय इससे भी मिलता है कि उन्होने सुरतिमिश्र से विहारी-सतसई की 'अमर चन्द्रिका' नामक टीका लिखवाई थी।

महाराजा अभयसिंह की रुचि डिंगल और पिंगल दोनो प्रकार के साहित्यो की ओर थी। वे स्वय कवि नही थे परन्तु साहित्य का जो सम्मान उनके राज्य मे था वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। काव्य ग्र थो से महाराजा की विचार स्वतत्रता का भी

प्रमाण मिलता है। यदि रसपुंज ने 'माताजी के कवित्त' लिखे तो माधोराम ने 'शाक्त भक्ति' और 'शकर पचीसी' जैसी पुस्तकें भी लिखी। महाराज के विरद के ग्र थ लिखे गये तो विहारी सतसई की टीका भी बनी। अतएव मानना पडेगा कि महाराजा अभयसिह काव्य साहित्य के लिये विशिष्ट व्यक्ति थे और उनके राज्याश्रय मे अबतक पल्लवित होनेवाली साहित्य बेली को मुरझाने से केवल बचाया ही नही वरन् उसे पुष्ट कर और अधिक विकसित होने का अवसर दिया।

अभयसिह के पश्चात् उनके पुत्र रामसिह को गद्दी मिली परन्तु रामसिह की दुर्गुणता ने राज्य को शीघ्र ही उसके हाथो से गवा दिया। महाराजा अभयसिह को मृत्यु के समय जो चिन्ता थी वह सही निकली। सरदारो ने यथासभव रामसिह की सहायता कर अपने वचन का पालन किया परन्तु राज के पतन की आशका मे अभय-सिह के भाई बखतसिह का साथ देकर उन्हे गद्दी पर बिठाया। परन्तु उनका राज्य-काल नृशसता और बर्बरता का राज्यकाल था। इसलिए साहित्यिक प्रगति कुछ न हो सकी। महाराज विजयसिह बखतसिह के पुत्र थे और उनके मरने पर विजयसिह राज्य के अधिकारी हुए। महाराज विजयसिह ने पूरे ४० वर्ष तक जोधपुर पर राज्य किया परतु इस विशाल अवधि मे शाति इनके भाग्य मे नही बदी थी। कुटुम्बियो और विरोधियो का सामना करने और कूटनीति मे ही इनका समय बीता। वर्तमान गुलाबसागर इन्ही की पासवान गुलाबराय के नाम पर बना था। इनके नाम पर 'विजय विलास' नामक काव्य की रचना बारहठ बिशनसिह ने की थी। इस ग्र थ मे महाराजा की वशावली, उनकी गद्दी नशीनी और आपाजी सिंधिया से उनकी लडाई का वर्णन है।

महाराजा विजयसिह के उत्तराधिकारी उनके पोते महाराज भीमसिह हुए और इन्होने १० वर्ष तक राज्य किया। इनका व्यक्तित्व राज्य और साहित्य दोनो के लिये अमगलकारी था। कामवासना और कादम्बनी मे लिप्त यह महाराज किसी का क्या उपकार कर सकते थे ? फिर भी इनकी प्रशस्ति का गान करने वाला एक श्रीमाली कवि इन्हे मिल ही गया। अपने 'भीम प्रबन्ध' मे भट्ट हरिवश ने इनकी बसत क्रीड़ा, भ्रातृ–सम्बन्ध एव अन्य वर्णनो द्वारा इनके यश का गान किया है। कहा जाता है कि रामकर्ण कवि ने 'अलकार समुच्चय' पुस्तक की रचना भी की थी।

महाराजा मानसिह .— जीवन का परिचय .—

सन् १८०३ मे महाराज भीमसिह की मृत्यु के उपरात महाराज मानसिह उनके उत्तराधिकारी हुए। मारवाड के लिये यह समय बडे सघर्ष का था। बाह्य

आक्रमणों और आन्तरिक विरोधो ने मारवाड के इतिहास का एक विचित्र रूप कर दिया था । फिर भी महाराज मानसिह ने अपने राज्य मे वहुत कुछ शाति स्थापित की । परिणामस्वरूप उनके राज्यकाल मे साहित्य सम्वन्धी अनेक ग्रथो का निर्माण हुआ ।

वैसे तो मानसिहजी के जीवन के आरम्भिक वर्ष सरदारो और विरोधियो से लोहा लेने मे ही बीते । इस समय की घटनायें उनके साहित्यिक जीवन पर कोई विशेष प्रकाश नही डालती । हमारे दृष्टिकोण से सबसे अधिक उपयोगी घटना 'मानसिह देवनाथ' मिलन था । महाराजा मानसिह युद्ध–विग्रह से तग आकर जालौर के गढ मे अपने साथियो सहित रहने लगे थे । उसी समय कही दूर खुले जगल मे नाथ सप्रदाय का अनुयायी देवनाथ नाम का एक व्यक्ति तपस्या करता था । अपने युद्ध जीवन से विरक्त होकर अतिम बार शत्रु से भिड जाने की चेष्टा का निर्णय, दिन प्रतिदिन क्षीण होती हुई सामग्री तथा युद्ध के महत्वपूर्ण उपकरणो के अभाव मे, मानसिह के लिये स्वाभाविक था कि वे जीवन की समस्त आशाओ को छोडकर एक दिन शत्रु पर टूट पडने के लिये उतारू हो जाय । कहते है इसी अवसर पर देवनाथजी ने उनके पास एक सदेश भेजा । उन्होंने आदेश दिया कि किसी प्रकार कार्तिक सुदि ६ तक यदि महाराज अपनी और दुर्ग की रक्षा कर सकेंगे तो विजय निश्चित रूप से उन्ही की होगी । डूबते हुए को तिनके का सहारा मिल गया । यथासभव महाराज मानसिह ने निश्चित अवधि तक स्वय को और साथियो को जीवित रखा । देवनाथजी की वाणी सत्य हुई । महाराजा मानसिह मारवाड के अधिपति वनें । सफलता के इस अवसर पर देवनाथ के प्रति असीम श्रद्धा और भक्ति का होना महाराज मानसिह के लिये एक स्वाभाविक बात थी । देवनाथ अनायास ही उनके गुरू वन गये और मानसिहजी ने असीम भक्ति के साथ उनका शिष्यत्व स्वीकार किया । नाथ सम्प्रदाय सम्वन्धी इतने अमूल्य और वृहद साहित्य की रचना इस घटना से वडी सम्वन्धित है । कौन कह सकता है कि इस सम्पर्क के अभाव मे मानसिह के द्वारा हिन्दी साहित्य की क्या सेवा होती ?

विभिन्न इतिहासकारो के विभिन्न मत

मारवाड के इतिहासकारो ने इस भूभाग के इतिहासकारो के द्वारा की गई साहित्यिक सेवाओ का उल्लेख वडी तत्परता और उत्साह के साथ किया है । इन लेखको मे मारवाड निवासी और विदेशी दोनो सम्मिलित थे । 'वातो और ख्यातो' के आधार पर साहित्यिक सेवाओ का मूल्याकन वडी कठिन समस्या है । ये 'वाते और ख्यातें' प्राय उन्ही लोगो के द्वारा लिखी गई हैं जो राजाओ के आश्रित थे । ऐसी अवस्था मे यह आशा करना कि लेखक शुद्धता और सत्यता से अपने आश्रयदाता

की कृतियो का वर्णन करे, दुराशामात्र है। उनके वर्णन मे अतिशयोक्ति और असत्यता का अश होना स्वाभाविक ही है। खोज सम्बन्धी कार्य करने वाले विद्यार्थी के लिये 'इन बातो और ख्यातो' का तब तक कोई मूल्य नही रह जाता जब तक उनमे आये हुए उल्लेखो का अन्य प्रमाण न मिल जावे। समस्त उपलब्ध सामग्री के आधार पर जिन इतिहासकारो ने इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला हे उनमे कर्नल टॉड कृत राजस्थान एव रेऊजी कृत मारवाड के इतिहासो का बडा महत्त्व हे। ओझाजी ने भी इस ओर प्रशसनीय कार्य किया है। इन तीनो के आधार पर महाराज मानसिहजी की रचनाओ के विषय मे कोई अधिक उल्लेख नही मिलता। कर्नल टॉड का विवरण सबसे अधिक प्रामाणिक सिद्ध होता हे क्योकि महाराज मानसिह के राज्यकाल मे यह व्यक्ति अग्रेज सरकार का एजेन्ट होकर महाराज मानसिह से मिला था और उनके राज्य की अनेक घटनाओ, उनके कारणो तथा परिणामो से स्वाभाविक रूप मे परिचित था[1]। टॉड ने केवल इतना ही लिखा है कि मानसिहजी को प्राचीन इतिहास, फारसी भापा और अपनी मातृ बोली का अच्छा ज्ञान था। महाराज ने उसे अपनी वशावली के छ छदोबद्ध वर्णन दिये थे जिनमे से दो ऐसे थे कि उनमे से प्रत्येक मे ७००० छद थे। ओझाजी ने हस्तलिखित हिन्दी पुस्तको के सक्षिप्त विवरण के आधार पर मानसिह रचित कुछ ग्र थो की चर्चा की है[2] जिनका उल्लेख यथास्थान आगे किया गया है। इस सूची से किसी ऐतिहासिक प्रामाणिकता का बोध नही होता। मानसिहजी सम्बन्धित अन्य विवरणो का उल्लेख टॉड के 'राजस्थान' के आधार पर किया गया है। ओझाजी के ये शब्द 'महाराजा का हिन्दी और अपने देश की भापा का ज्ञान तो बढा चढा था ही साथ ही उनको फारसी भाषा का भी अच्छा ज्ञान था[3]' टॉड के पूर्वोक्त उद्धरण का रूपान्तरमात्र है[4]। मोतीलाल मेनारिया ने अपनी पुस्तक मे मानसिह कृत हिन्दी तथा सस्कृत के ग्र थो की एक सूची दी है[5]। उनकी सूची रेऊ कृत मारवाड के इतिहास मे दी हुई सूची की एक प्रतिलिपि मात्र है। अतर इतना ही है कि रेऊजी की सूची मे ग्र थ सख्या २५ है और मेनारियाजी की पुस्तक मे २४। रेऊजी की सूची मे न० ७ पर जो 'नाथ चरित' का उल्लेख है वह नम्बर

---

1. **Annals and Antiquities of Rajasthan (1920) by Lt Col James Tod, Volume II, Page 833.**
२. राजपूताने का इतिहासः ओझा कृत जिल्द २, पृष्ठ ८७२
३. वही, पृष्ठ ८७३
४. वही, पृष्ठ ८३३
५. राजस्थानी भाषा और साहित्य–मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ १९७

मेनारियाजी से छूट गया है। इसलिये ग्रथो की सख्या भी एक कम है। इन परिस्थितियो मे इतिहासकारो की सूचना के आधार पर यह निर्णय करना असभव है कि महाराज मानसिह ने स्वय कितने ग्रथ लिखे और उनके नाम क्या–क्या थे ?

रचनाएँ

कुल मिलाकर मानसिह जी की छोटी वडी ६६ रचनायें हैं। इन रचनाओ का सक्षिप्त परिचय ही पूरे ग्र थ के लिये पर्याप्त सामग्री है। अतएव यहाँ पर उनकी सपूर्ण सूची के साथ केवल महत्वपूर्ण ग्र थो का ही परिचय दिया जाता है।

१ अनुभवमजरी
२ आराम रोशनी
३ उद्यान वर्णन
४. कृष्ण विलास
५ काशी का सस्कृत पत्र
६ कवित्त सवैया और दोहा
७ ग्र थ नामावली
८ गोरक्षावली
९ गोरखपुर महिमा
१० चौरगीनाथ कथा
११ चौरासी पदार्थ नामावली
१२ जलन्धर ज्ञानसागर
१३ जलन्वर चन्द्रोदय
१४ जलन्धर चरित
१५ तेज मजरी
१६ दत्तात्रेय–कपिल–सवाद
१७. देव महिमा
१८ नाथ अवतार
१९ नाथ अष्टक
२० नाथ उत्पत्ति
२१. नाथ कवित्त
२२ नाथ कीर्तन
२३ नाथ चरित
२४. नाथ चन्द्रिका

२५ नाथ दोहा
२६ नाथधर्म निर्णय
२७ नाथ ध्यानाष्टक
२८ नाथ पद
२९ नाथ पुराण
३० नाथ प्रशसा
३१ नाथ महिमा
३२ नाथ वर्णन
३३ नाथ वाणी
३४ नाथ सचिता
३५ नाथ स्त्रोत
३६ नाथ स्वरूप वर्णन
३७ नायिका नायक लक्षण
३८ पचावली
३९ पद सग्रह
४० परमार्थ विषय की कविता
४१ प्रश्नोत्तर
४२ बिहारी सतसई की टीका
४३ भागवत की टीका
४४ मरुदेश वर्णन
४५. महाराज मानसिंहजी की वनावट
४६. मानविचार
४७ मानसिह की वशावली
४८ योग ग्र थ सूची
४९ योग शृ गार पुस्तक सूची
५० रागा रो जीलो
५१- रागसार
५२ रामविलास
५३ रुक्मणी ककण बधन
५४ षोडश भक्ति भाव
५५ श्रीनाथजी
५६ शृ गार रस की कविता

५७ सयोग शृ गार का दोहा
५८ साधन निरूपण
५९ सिद्धगगा
६० सिद्ध गगा मुक्ताफल
६१ सिद्ध मुक्ताफल
६२ सिद्ध सम्प्रदाय
६३ सिद्ध शृ ंगारी पाव अवतार
६४ सेवासार
६५ स्वरूपो के कवित्त
६६ स्वरूपो के दोहे

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट प्रतीत होता है कि सब मिलाकर मानसिंह कृत रचनाओ (छोटी–बडी) की संख्या कम से कम ६६ है। इनके अतिरिक्त जोधपुर के 'पुस्तक प्रकाश' की सूची मे मानसिंह की कविता के अन्तर्गत नौ और पुस्तको का उल्लेख मिलता है परन्तु स्पष्ट रूप से ये रचनाये मानसिंह सबधी होते हुए भी उनकी लिखी हुई नही कही जा सकती।

अब प्रश्न यह है कि इस तालिका मे दी हुई पुस्तको मे से किनको मानसिंह रचित समझा जावे ? साधारण तर्क तो यही है कि स्थानीय पुस्तकालय की सूची को इस सम्बन्ध मे प्रामाणिक मान लिया जाय। इसके दो कारण है। महाराजा मानसिंह जोधपुर राज्य के अधिपति थे अतएव जोधपुर राज्य मे ही उनके ग्र थो के अस्तित्व की सभावना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त यह भी प्रतीत होता है कि कुछ छोटी छोटी रचनाये वडे ग्रथो की अश मात्र है जिन्हे मूल से अलग कर पृथक नाम दे दिया गया है। उदाहरण के लिए 'नाथ-चरित्र' लिया जा सकता है। यह ग्रथ बहुत वडा है जिसकी रचना सस्कृत और हिन्दी दोनो मे हुई है। हिन्दी ग्रन्थ सस्कृत ग्र थ का रूपान्तर है। 'नाथ–चरित्र' के प्रसगो मे 'नाथावतार', 'नाथोत्पत्ति', 'नाथ-कवित्त', 'नाथ महिमा', 'नाथ वर्णन', 'साधननिरूपण' आदि अनेक विषय सम्मिलित हैं परन्तु पुस्तक प्रकाश, की सूची मे इन प्रसगो को पृथक पृथक रचनाये माना है। इसी प्रकार नायिका–नायक लक्षण 'शृ गार के कवित्त' के अन्तर्गत एक विषय है परन्तु सूची मे ये दोनो रचनायें भी भिन्न मानी गई है। 'नाथ पुराण' मे 'चौरगी नाथ की कथा', 'जलन्धर चरित्र', 'दत्तात्रेय-कपिल–सवाद', 'देव महिमा', 'नाथ ध्यानाष्टक', 'सिद्ध-शृ गारीपाव-अवतार', 'रुक्मणी ककण बधन' आदि बहुत से प्रसग आगये है। पूर्वोक्त तालिका मे नम्बर १८ से ३६ तक की रचनाये 'नाथ चरित' के अन्तर्गत हैं।

इस प्रकार 'पुस्तक प्रकाश' मे वर्तमान मानसिंह की रचनाओ को ही प्रामाणिक मानना चाहिये अन्य सूचियो को नही। 'पुस्तक प्रकाश' मे प्राप्य पुस्तको का एक सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है .—

नाथ–चरित्र —यह एक प्रबन्ध काव्य है जो सस्कृत और हिन्दी दोनो मे मिलता है। यह कहना कठिन है कि हिन्दी सस्करण सस्कृत का रूपान्तर है अथवा सस्कृत का 'नाथ चरित' हिन्दी का अनुवाद है। हिन्दी ग्र थ, गद्य और पद्य दोनो प्रकार की शैलियो मे पृथक–पृथक मिलता है। छन्दोबद्ध 'नाथ चरित' असम्पूर्ण है।

प्रबन्ध काव्य अनेक प्रबन्धो मे विभाजित है। प्रत्येक प्रबन्ध मे एक से अधिक अध्याय है। प्रत्येक अध्याय एक प्रसग को लेकर लिखा गया है। नाथजी की महिमा से लेकर उनकी जीवन सम्बन्धी अनेक घटनाओ का उल्लेख इसमे मिलता है। उदाहरण के लिए प्रथम प्रबध के प्रथम अध्याय मे अग्रेश्वर देवता, गुरुदेव श्रीनाथजी की स्तुति तथा नाम वर्णन है और दूसरे अध्याय मे अनेक अग–उपागादि का स्तुति वर्णन है। दूसरे प्रबन्ध के प्रथम अध्याय मे गिरनार पर्वत का वर्णन है। दूसरे और तीसरे अध्याय मे कनीपाव के प्रश्न और श्रीनाथजी द्वारा उनके उत्तर सम्मिलित है। चौथे मे बगदेश का वर्णन, पाचवे मे गोपीचन्द के भवन मे श्रीनाथजी का आगमन, छठे मे मैनावती द्वारा गोपीचन्द को योगोपदेश कथन, सातवे मे गोपीचन्द का ऐश्वर्य वर्णन, आठवे मे गोपीचन्द–विलास–वर्णन, नवे मे ऋतु–वर्णन, दसवे मे नृप–विलास–वर्णन, ग्यारहवे मे ऋतु वर्णन, मैनावती–कनीपाव–सवाद और बारहवे मे गोपीचन्द का योग ग्रहण और गृह-त्याग, तेरहवे मे श्रीनाथजी का गिरनार वापिस जाना और चौदहवे मे अनेक भूभागो मे होते हुए श्रीनाथजी का गिरनार पदार्पण आदि प्रसग हैं।

तीसरे प्रबन्ध मे नाथजी का गिरनार मे रहना तथा शिष्यो व सिद्धों द्वारा उनका सम्मान एव सगलाभ वर्णन है। शेष अपूर्ण है।

पुस्तक व्रजभाषा मे है। आरम्भ मे गणेशजी की, सरस्वती की, गुरू की और श्रीनाथजी की स्तुतियाँ है। गणेशजी की स्तुति इस प्रकार है।

'मद जल झकृत मधुप लसत गज मुख सुखमामय
सिदूरार्चित अरुण सीस चंचल चन्दोदय
वक्र दंत इक विमल वसन तन अरुन विराजित
परसि पान सत गुन निधान निधान अमल चित

सुर वृंद अग्रवर्ती सुधर जगत विघन हर सुजस जय
जाति नाथ विमल हिमाजपन त्वांनमामि गवरी–तनय'।

गुरू की स्तुति मे लेखक ने अपने गुरू देवनाथ की स्तुति की है। देवनाथजी ही 'भेद के वतावन सरन मत्रदाता' है।

इस पुस्तक मे नाथ सप्रदाय सम्वन्धी लेखक के विश्वास, विचार और उसकी भावना स्पष्ट रूप से प्रकट होते है। काव्यात्मक अशो मे, जो प्रसगवश आगए है, लेखक की भाषा, अभिव्यजना–शक्ति और भाषा–प्रवाह अपनी रसात्मकता लिए हुए स्पष्ट हो रहा हे। काव्य की दृष्टि से उसका क्या स्थान है ? इस प्रश्न का उत्तर काव्य-विषयक प्रसग मे यथास्थान दिया जायेगा। इस स्थान पर उदाहरण के लिए वसत-वर्णन के अन्तर्गत दक्षिण पवन का वर्णन ही पर्याप्त है —

'करत सुवासित दिसनि विपन मलयाचल वारे
सघन लता श्रीखड भरे रस प्रस्पनि भारे
झुकि तिनको झकझोर, नीर झरननि के न्हायो
विमल नदी नद कर विहार, जलकन ते छायो
सीतल सुगध अरु मंद शुचि, तृविध मिटावत ताप तन
संचरन लग्यो उवहि सुख समय प्रिय दच्छन दिस कौ पवन।'

नाथ पुराण —प्रसिद्ध पुराणो की तरह यह भी एक पुराण हे। इसकी रचना गद्य मे हुई है। गद्य की भाषा मारवाडी है। पुराण वर्णित अनेक कथाओ को कुछ परिवर्तित रूप मे इसमे प्रस्तुत किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक का उद्देश्य नाथजी की महानता और नाथ सम्प्रदाय की उत्कृष्टता का प्रतिपादन करना है। उदाहरणार्थ प्रह्लाद के सम्वन्ध मे इसमे कहा गया है .—

'श्रीनाथजी रो उपासक प्रह्लाद। सो ऊ वारा अनुग्रह सु ही ब्रह्म ज्ञान री प्राप्ति। सो पछै उन समय ही उत्तर दिसा पैस्यौर[1] श्री नाथजी रा चरण स्थापन किया। सो सतजुग रो प्रथम स्थान ससार मे प्रसिद्ध हुवो। उठै श्रीनाथजी सर्वदा विराजै, भैरव अर प्रह्लाद दोनू सेवा करें है।'

---

१ पेशावर नगर

साम्प्रदायिक रूप का एक दूसरा उदाहरण 'नाथ पुराण' का निम्नलिखित अवतरण है :—

> 'श्री करणीरी नाथ पूछै है – सिद्ध सभा सजुत श्री नाथजी नू–'लक्षमनजी आपरा सिप किण प्रकार हुआ ? जद श्री नाथजी आज्ञा करे है 'रघुवशी राजा वारै म्हारी ने शिव री सदा उपासना रहे सो परवरती[1] मे तौ जिणरी इच्छा हुवै सू तो शिवरी उपासना करे !

निवरत[2] रूप मे इच्छा हुवे सो म्हारी उपासना करें। सो सीता, लछमन, हनुमान ऐ तीनौ तौ उपासना करे। ने रामचन्द्र मिसरत[3] म्हारी नै शिव री दोनू उपासना करै। सू वारै विपै मे सन्तुष्ट हुवै गोरखपुर अजोध्या रै विषै मे निवास कियो। सो म्हारा नै शिव रा अनुग्रह सू याल का री जै कर पाछा अजोध्या प्रथी रौ भार उतार विरम स्वरूप विषै लीन हो। सो सरजू तीर समस्त अजौध्या रा लोक सजुगत वैठा है। सो पुरवासी लोग सिनान कर कर विमान मे वैठा सुरग रै विषै जावै है अर रामचन्द्र, सीता, लछमन हनुमान ऐ जोगाभ्यास कर म्हारा स्वरूप रै विपै लीन होता हुवा। सो लछमण, सीता, हनुमान ऐ तीन तो आतमा रूप होई गया ने रामचन्द सू सरूप रे विपे लीन उवै सकै नही। जद वशिष्ट ऋप नै पूछियो इन विघन रो कारण कई ? जद वशिष्ट कयो श्री नाथजी री कैवल उपासना थारै नही थी जिण वास्ते गमन अवस थारो है। विषे परवर्ती प्रतवधक हुई सो श्री नाथजी रो स्मरण करनौ। रामचन्दजी स्मरण कियो। श्री नाथजी पधारता हुआ। सौ श्री नाथजी इसा स्वरूप सौ पधारया। सू रामचन्दजी ने पिण भाव हुयौ नही नै लोकां इन पर हास कियौ। जव श्री नाथजी वड़ो विशाल भारी स्वरूप कियो। मस्तक तो आकाश विषै लागे, चरण पाताल सपरस[4] करे है। इसो स्वरूप देख लोक तो मूर्छित ने रामचन्दरजी वशिष्टजी हाथ जोड स्तुति करता हुआ के टूक ससै रामचन्दरजी रौ रूदै[5] मे था सू उठे एक प्रहर भर श्रीनाथजी रे ने रामचन्दरजी रे सवाद हुऔ जिनमे

---

१. प्रवृत्ति मार्ग

२. निवृत्ति मार्ग

३. मिश्रित

४. स्पर्श

५. हृदय

समसत[1] सासौ[2] रामचन्दरजी री निर्वतक हुश्री। केवल उपासना कीनी। जद श्रीनाथजी प्रसन्न हुवे। च्यारा ही ने आपरे स्वरूप मे कर सिद्धावस्था दे साथ लिया। सू आप अर हनुमान तो रेवताचल पर्वत रे विषे गया। ने रामचन्दरजी ने सीताजी मरूस्थल देश रै विषे कलसाद्रिचल पर्वत विपै गया। श्रीनाथजी कहे है इन परकार लछमन आदि म्हारा शिष्य हुआ।'

गगा की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे नाथ–पुराण का कथन है 'एक समै भगीरथ राजा श्रीनाथजी ऊपर तपसा करी सौ श्रीनाथजी प्रत्यक्ष हुआ। गगा मृत्यु लोक मे आवन रो बरदान दियो' इत्यादि।

नाथ–पुराण से यह भी प्रतीत होता है कि जिस प्रकार बुद्ध भगवान ने अनेक बोधिसत्व वनकर जन्म लिया उसी प्रकार श्रीनाथजी के भी अनेक स्वरूप हैं यथा–कणीपाव उनका उष्ण स्वरूप, कणेरीपाव–शीतल स्वरूप और जलधरीपाव-तेजरूप। इस पुराण मे और भी अनेक प्रसग है जिनके औचित्य-अनौचित्य का निर्णय करना बडा कठिन है। रुकमणी–ककण वन्धन को अलग भी माना जाता है[3]। इसी का एक अस्पष्ट अश राठौरो को वरदान और तेरह शाखा प्रसग है जिसे पृथक रचना माना गया है। सक्षेप मे नाथ–पुराण एक विशाल ग्र थ है जिसमे अनेक छोटे-छोटे ग्र थ आत्मसात हो गये हैं।

पद्य–सग्रह —यह अनेक फुटकर पदो का सग्रह है। मान-पद्य-सग्रह के नाम से इस ग्र थ का प्रकाशन हुआ है। बीकानेर के प्रसिद्ध सेठ श्री रामगोपाल मोहता ने इसे दो भागो मे प्रकाशित कराया था। इस ग्रन्थ की भूमिका के आधार पर यह पता चलता है कि जोधपुर निवासी कबीरपथी साधु मोहनरामजी को मानसिह के ये पद कठस्थ थे। वे उन्हे गाते भी थे और इन्ही पदो को सुनकर लिपिवद्ध कराया गया तथा दो भागो मे इनका प्रकाशन हुआ। प्रथम भाग मे लगभग ७६३ और द्वितीय भाग मे ७८२ पद हैं। ये पद भिन्न–भिन्न रागो और भिन्न-भिन्न तर्जो पर बनाए गए हैं। एक ही राग के अनेक पद बिखरे हुए से प्रस्तुत सग्रह मे मिलते हैं। कही-कही दोहा, सवैया और कवित्त भी सम्मिलित हैं। इनकी भाषा कही शुद्ध ब्रजभापा है तो कही मारवाडी है, कही गुजराती है और कही सबका मेल है। विपय की दृष्टि से इसमे

---

१ **समस्त**

२. **संशय**

३ **देखो सूची न० ५३**

नाथ – धर्म और नाथ – सम्प्रदाय की महिमा तथा उसके द्वारा मान्य वेदान्त के प्रतिपादन की प्रधानता है। कही केवल श्रृ गार विषयक पद है। सब मिलाकर महाराजा मानसिह के विचारो पर इन पदो से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

विषय की एकता होते हुए भी 'पुस्तक–प्रकाश' मे सुरक्षित पद–सग्रह मे और मुद्रित-पद-सग्रह में बडा भेद है। यह निर्णय करना कि वास्तव मे मानसिह की कौन सी रचना है बडा कठिन कार्य है। मुद्रित पदो के लिए प्रमाण एक मौखिक परम्परा है जो महाराज मानसिह के समय से चलती आ रही है और जिसकी सत्यता के विषय मे किसी प्रकार की आशका नही की जा सकती। 'पुस्तक–प्रकाश' के पदो की प्रामाणिकता केवल यही है कि वे 'पुस्तक–प्रकाश' के है। दोनो का मिलान करने से सभावना यही है कि मुद्रित सस्करण कदाचित अधिक प्रामाणिक है। उसकी भाषा, उसका वाक्य–विन्यास एक मारवाडी राजा के अनुरूप ही प्रतीत होता है। सत्य तो यह है कि जब तक मानसिह द्वारा रचित रचनाओ की विभिन्न प्रतिलिपिया न मिले पदो की प्रामाणिकता एक सदिग्ध विषय है।

कृष्ण–विलास :—यह भागवत के दशम स्कन्ध के ३२ अध्यायो का भाषानुवाद है। यह अनुवाद ब्रजभाषा मे है। छन्दो मे दोहा, पद्धरी, कवित्त और सवैया प्रधान है। सब अध्यायो मे लेखक ने मूल का अनुगमन नही किया है। अतएव अनुवाद भावानुवाद मात्र है। काव्य की दृष्टि से कुछ अश बहुत सुन्दर बन पड़े है। उदाहरणार्थ रास–क्रीड़ा के वर्णन मे लेखक का यह कवित्त देखने योग्य है :—

'वन के प्रफुल्लिकज लतिका लपटि द्रुम,
चन्द्रमा की चादनी अनूप सी प्रकासी है।

जमुना के जल मे सौं लहरैं हिलोरा लहै,
तीर तीर कोमल सी बालुका बिकासी है।

मोहन मदन स्याम एकाकी विपन आये,
बंसी की ललित धुनि असुरी बिसासी है।

मान कहे व्रज की सब गोपिका सुनत कान,
आगम गगन मानो चग सी हुलासी है।'

फुटकर रचनायें —तेज मंजरी, प्रश्नोत्तर, पंचावली, सिद्धगगा, सिद्ध-गगा-मुक्ताफल, परमार्थ रा कवित्त इत्यादि इनकी फुटकर रचनाएँ है।

प्रबन्ध काव्यकार मानसिंह —

मानसिंह की प्रबन्ध-पटुता और भाव-विदग्धता उनके नाथ-चरित मे स्थान-स्थान पर अभिव्यजित हैं। जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है, नाथ-चरित एक सर्गबद्ध रचना है। यह अवश्य दुर्भाग्य का विषय है कि पुस्तक सम्पूर्ण रूप मे हिन्दी मे उपलब्ध नही है।

प्रबन्ध काव्य सदैव वर्णन-प्रधान काव्य होता है। अतएव इस प्रबन्ध काव्य मे अनेक वर्णन देखने योग्य है। उदाहरण के लिए—

१. स्तुतियो मे गणेश-स्तुति का वर्णन रचना-परिचय मे आ चुका है। लेखक की शब्द-योजना, आलकारिक भाषा-प्रवाह और हृदय से निकला हुआ गणेशजी का मूर्त चित्रण पाठक को हठात् अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

नाथ-स्तुति मे 'नाथजी' के गुणो और उनकी व्यक्तिगत महानता का वर्णन भी बडा ही सात्विक और प्रभावशाली है। 'अनुप्रास' की महिमा के साथ ही साथ वह मस्तिष्क को पवित्रता की ओर प्रेरित करने वाला है। सूर और तुलसी जैसे भक्तो ने भी इसी आवेश मे अपने इष्ट का वर्णन किया है —

अखिल लोकपति नाथ, नाथ संश्रित सहायकर।
सर्व विश्वमय नाथ, नाथ लीला लोकोत्तर।
निजानंदमय नाथ, नाथ सुख कंद निरन्तर।
नित्य एक रस नाथ, नाथ निर्गुन निरीहवर।
श्रीनाथ सिद्ध नायक सदय, नाथ पतित पावन परम्।
अवधूत वेष आरति हरन, इष्ट नाथ आदेस मम्॥१॥

२ इष्ट की वस्तुओ का वर्णन भी सराहनीय है :—

कमण्डल महिमा मे लेखक कहता है —

'सरस सुधा के कुंभहू तै जल, जाको पियै तै अमर पद देत सेवा कै सहित।
सिंधु तै सरस यामें नीर है अलप तऊ, पूरन प्रभावमय रहित अखूट नित।
तीरथ समाजनि तै सरस कहत याको, स्वामी के निकटवर्ती है रहित।
नाथ कै प्रचंड लवस्यो है कर मंडल में ऐसो यों कमडल करो किल्विषचित।'

यद्यपि 'सिंधु तै सरस' मे 'सिंधु' का प्रयोग उचित नही प्रतीत होता क्योकि सिंधु का जल 'सरस' नही माना जाता, परन्तु लेखक का अभिप्राय मात्रा से है और

व्यजना इसी भाव की हुई है कि अल्प होते हुए भी वह सिन्धु के समान महान है ।

विभूति महिमा भी इसी प्रकार निराली है —

'अंगीकृत कीन्हीं नाथ याही ते भई सनाथ
बंदनीय भई सुर नर मुनि अवधूत की ।
जिन या विभूति कौ प्रसाद पायो,
ते नरहू गनत विभूति न धनद पुरहूत की ।
सरद सील सी विमल परि भासत है,
करिहै विमल मेरी मति करतूत की ।
नाथ गुन–गान हेतु–सरनै सुजन आयौ,
वरनै कहां लौ ऐसी महिमा विभूति की ।'

किसी अन्य शैव कवि ने शिव–विभूति का ऐसा सागोपाग वर्णन नही किया ! **मुद्रा** नाथो की एक बडी विशेषता है । लेखक के इष्टदेव के कानो की मुद्रा साधारण नही, काश्मीरी मुद्रा है–जो आकृति, प्रभाव और कान्ति मे अपने उपमानो से कही बढ-चढ कर है ।

'अगजग पोषण अरु प्रकास अद्भुत आकृति कर,
जिन जीत्यो छवि जुक्त पूर्णिमा कौ पियूस धर ।
जासु चांदनी छांह निपत आए जे सुर नर ।
ते दिनेस–सुत ताप रहित बहु भये अवनि पर ।
कश्मीर संभवी स्वजन मति कुमुद जुन्है ही संकरी ।
विलसत जतीन्द्र श्रुतवासिनि जय मुद्रा जोगेश्वरी ।।१।।

जटा की कान्ति भी बडी मनोहारिणी है–जिससे जगबन्धन छूट जाय उससे अधिक पावन अन्य कौनसी वस्तु सभव है ?

'तप्त कनक के तार सी सुवरन पीत सुहात ।
छुटी जटा निरखै तनक, जग-बन्धन छुटि जात ।।'

इन छोटी-छोटी वस्तुओ के वर्णन से लेखक सम्प्रदाय के अनेक लक्षणो पर भी प्रकाश डालता गया है और अपने चरित्र नायक की शिक्षा के अनुरूप वातावरण भी उत्पन्न करता गया है ।

३ अन्य वर्णनो मे गिरनार-वर्णन, कलसाचल वर्णन, रक्ताचल-वर्णन आदि है। लेखक ने वगदेशीय ढाका नगर का वर्णन भी बडी सुरुचि से किया है'। यह ढाका नगर राजा गोपीचन्द की राजधानी था। लेखक कहता है —

'अति लसित संपति मनहु अलका स्वर्ग सोभा स्वच्छ हैं।
श्रीनाथ कृपय्या बसत निर्भय पुर पुनीत प्रतच्छ है ॥१॥

शिव रूप मन्दिर अधिक ऊंचे चण्द्र संवरता लिये।
बिच जलद-गन सिति कंठता जुत होत लखि दुख रिपु हिये ॥२॥

मणिखचित कंचन रचित रम्य, समूह कलस सुहावने।
जनु अंग शिवगिरी के विराजत, भानु द्वादस दुतिसने ॥३॥

फरहरत मारुत लगि पताका, विविध पट रंगनि बने।
अमरावती के डुलत ऊचे, विमल मानो बीजने ॥४॥

बहु कूप वापीनीर निर्मल सुघट बध समेत है।
जनु बरन गेह पटराल भीतर दिव्य सोभा देत हैं ॥८॥

सुचि वार आच्छादित सरोवर अमित अम्बुज पर्ण तं।
नहिं देषिये जा ब्रह्म निर्गुण, अविधा आवर्ण तं ॥६॥

अनुराग कारण बाग अद्‌भुत, सुगधित मधु अग सं।
डहडहे पुस्प समेत सब दिन, नव मनोज निषंग सं ॥१०॥

पुर आसपास तरंगणी, बहु कवि छटा वर्णन करें।
जल स्वच्छ धारा बहत मानों हंस माला मन हरें ॥११॥

पाकिस्तान मे जाने से पूर्व इस नगर की शोभा हिन्दू सस्कृति की द्योतक थी—यह अनुमान कौन कर सकता था ?

४ लेखक का षट्-ऋतु-वर्णन भी देखने योग्य है .—

बसंत-वर्णन :—

'बिन मानव धन सीचनें, बिनु वर्षे धन पंत।
होय हरे वनहू सरे, उवाते अधिक बसंत ॥१॥

मिले सघन मृदु अंब भौर, विकसे केसू बन।
रहे भूमि दिन रैन, चहुं दिस प्रफुलित चंदन।

कुहकत लीला करन, मिलिय कोकिल मद मातिय
सुक सारिका समूह, रमन बानी रस रातिय
मृदुलता प्रफुल्लित मालती, विमल गुच्छ वानिक बनी
सुन्दर समाज आई सुषद, ऋतु बसंत मन-रंजनी ॥१॥

सुचि गुलाब की सघन, विविध कलिका विकसंतिय
सकल कला निस समय, उदय नभ चन्द्र अखंडित
उज्जल किय सब एक रंग महि नभ छवि मंडित
विहरत चकोर पंकति विपन हिये वदन आनन्द हितु
प्रिय चतुर रसिक लेकिन परम रस रूपनि बसंत ऋतु' ॥२॥

ग्रीष्म ऋतु-वर्णन :—

'विलसित फूल बहार, ऋतु बीती ऋतुराज की।
वरनी ग्रीषम वार, फल बंडार करि कै फवत ॥१॥

तेजस्वी तपवंत, राजत ग्रीषम ऋतु यहैं।
वृच्छनि को रसवंत, सब ठां फलदायक सदा ॥२॥

द्रुमनि सरस फल ग्रीषम वैही, को अचिरज ता मध्यक हैही।
जग मह तेजवान सो होई, सुषहि देत निश्चय फल सोई ॥१॥,

अति तपत भानु किरनै उदार, सूके सर सरिता सरनु धार।
जल भुवि नभ पवन न सहे जातु, वर्त्तत सब तेजोमय विख्यात ॥१॥

बन भ्रमत नीरहित मृग विहाल, चहुदिस रही लूवें लपट चाल।
ऋतुराज विरह करि दुष्य रास, उर ग्रीषम डारत मनु उसास ॥२॥

घटि रैन बढ्यो दिन असह धाम, मुरवा पुकारतै मेघनाम।
प्रजरत इक पल्लव प्रस्यसाज, सोभा मिटि झषर वन समाज ॥३॥

वर्षा ऋतु-वर्णन :—

'तापवंत सीतल किरन, सूके हर विसेस
किलरीते पूरन किये, ऋतु पावस राजेस।

उमड़ि घटा आकाश, महा सोभित दिस मंडल
चपल दामिनी चमक रही बक पंत वीचरल
सरर चलत चंचल समीर वर्षत बहु बादल
घररत मिलि घनधार, लसत जहाँ तहाँ नयो जल
द्रुमलता प्रफुल्लित देखियत, मुरवा चातक मोदमय
गिरिश्रृंग चलत जरना गहर, सुखकारी पावसमय ॥१॥'

शरद ऋतु-वर्णन :—

'सरस घटा सी स्वेत, लसत अटारी नभ लगि
सोहत त्रियनि समेत, सित संज्याधित नृप सरद ॥१॥
सरवर अरु सरितानि की, कमलनि हंस निकेर
दिव्य वहार जु देखिवें, वनिता जुत उवही वेर ॥१॥
चलत बनवि मे नृप चतुर, विहरत तट छवि वान
चहुं दिसिहिं चुकावही, मुक्ताफल सुषमान ॥२॥

हेमन्त ऋतु-वर्णन :—

'दिन लघु दीरघ रात, दिश्व प्रबल सीत जु बढत
सब सीतउ ह्वै जात, अवनी जल नभ अरु अनल ॥१॥
बाजत विषम बयार, उत्तर को सीतल अधिक
तैसो परत तुषार, जित तित पकज बन जरत ॥२॥'
'जिह समय नमतै जोर, अनगनित च्यारों ओर
करि पवन वेग विसेस, हिम पुंज परत असेस ॥१॥
प्रजलन सौरभ वंत, अगर कनक की तापनी
हितकारी हेमन्त, सुख इत्यादि समाज मे।'

शिशिर ऋतु-वर्णन :—

'वासर निस अरु दिवस विदिस, ललित रही छवि लाग
महि नभ छबिमय अरु मधुर, विहग शब्द वन बाग ॥१॥

जांझ ताल डफ बजत जब, रयन घोस रसवान
सोहत घरी वसंत सुचि, ग्रह ग्रह होरी गान' ॥२॥

'सोह रहे सब नर नारिन कै विविध
वसंतिया नवल पाग उवैसी सारी सिर की।
कर पिचकारी फेंटे सोहत गुलाल अरु
भुवि सौहे उवै सियै सुगंध जल छिरकी
रंग लै चलावैं लोक बरुन अचानक हैं
कोतुकौ ठाठे छवि गेहन की षिरकी
ग्रह ग्रह मोद माघ फागन मचाई
सुषदाई आई ऋतु सुन्दर सिसिर की।'

'ऋतुसिसिर उमंडि कै रही आज
सजि आवहिं सुन्दरी फाग साज
विविध जु वसंतिया विमल वेस
विलसित केउ केसरमय विसेस।'

५ 'नाथ चरित' में संवादो की प्रधानता है—आरम्भ मे ही कणीपाव जी ने जलधरनाथजी से प्रार्थना की है .—

'कामना दैन प्रभु कल्प अच्छ, पावन प्रयाग जेसे प्रतच्छ
सिष पूछत है उछाह सान, गुरुनाथ बतावहु तत्वज्ञान।'

प्रार्थना सुनते ही गुरु ने अपना उपदेश देना आरम्भ कर दिया। अन्य सवाद, नाथ–मैनावती–सवाद, नाथ–गोपीचन्द–सवाद, नाथ–शिष्य–सवाद आदि हैं। इनकी महत्ता उस धार्मिक विचार धारा की प्रधानता है जो सम्प्रदाय द्वारा प्रवाहित हुई।

६. **रस दृष्टि से** प्रस्तुत पुस्तक मे शान्त रस की प्रधानता है तथा शृ गार करुण आदि उसमे प्रसगवश आगये हैं।

७ **चरित्र-चित्रण** अधिक नही है परन्तु नाथजी के मगलमय चरित ने सभी अन्य पात्रो को अपने जोगेश्वरी मार्ग पर आकर्षित कर लिया है।

गीति-काव्य :—मानसिंह का अधिकाश साहित्य इसी कोटि का है। उनके गीति-काव्य के दो रूप हैं। प्रथम विभाग के अन्तर्गत उनकी वे रचनाएँ हैं जिनमे सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य विषयो का वर्णन हे। इनका उल्लेख फुटकर रचनाओ के अतर्गत पहले हो चुका है। यद्यपि यह गीति-काव्य अधिकाशत: कवित्त, सवैये और दोहो मे आवद्ध है, परन्तु गेय पदो की सख्या भी कुछ कम नही है। शृंगार, नीति और प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी अनेक वर्णन इसमे मिलते हे, उदाहरण के लिये —

'छुटि अलक बेसर हलन चारु पलक चक जोत।
मूँह झलक भूषण झलक, देखि खलक बस होत ॥'

नायिका के बाह्य रूप का यह शृंगारमय वर्णन रीतिकाल के कवियो की याद दिला देता है। इसी प्रकार रात्रि के समय चपला की चमक विरहिनी के हृदय को तलवार की चोट के समान दुखद होती है।

'चपला की सारी रयन, चमक रही चल जोत।
विरहिन कैं तलवारि सी, हियैं दुहैली होत ॥,

विरह का एक और चित्र कवित्त मे वर्णित है :—

'कागद जो लिखूँ तो सखी कलम हूँ न रहत हाथ,
स्याही मै भरूँ तो कलम वाही रह जात है।

लिखूं कहा हृदय बीच जरत विरह भट्टी सखी,
बिरह की बिमारी तै कंपत उर गात है।

बहुत समाचार लिखन बचे नहीं ओली सखी,
और की और मेरे नैनाँ बच जात है।

नैनो मे नीर मानो खीर सो समुद्र उलट्यो
रोकूं मैं बहुत पर मोते न रुकात है।

मैं तो हूँ नारी पर पीव है अनारी सखी,
नारी ते अनारी की जोड़ आ मिलात है।

कहे यूँ मानसिंह करो तो विचार करो,
कैसो भाव विरह को यह हँसने की न बात है।'

अनुभाव वर्णन द्वारा लेखक ने विरह की तीव्रता और विरह से उत्पन्न ताप की मात्रा का स्वाभाविक वर्णन किया है।

उद्धव द्वारा सदेश–पत्रिका के ग्रहण करने पर गोपियो की दशा का वर्णन लेखक ने बडे मार्मिक ढग से किया है :—

'प्रेम की पतैयाँ ऊधो वाँची हू न जावे रे।
कागद तो धनुष जान, स्याही डोर लीन्हीं तान।
शब्द के वान मेरे, हिरदे चुभावे रे।
बांचूँ मन दुख आय, विरह कह्यो न जाय।
कैसे मै वाचूँ वाको, नयन जल छावे रे।'

दूसरे प्रकार का गीति–काव्य वह है जिसमे नाथ सप्रदाय सम्वन्धी सिद्धान्तो और तत्वो का वर्णन है। इसमे से अनेक तो जलधरनाथजी के महत्त्व पर लिखे गये है और कुछ मानसिंहजी ने अपने गुरू देवनाथजी की स्तुति मे लिखे हैं। अपने इष्ट के स्वरूप का वर्णन करते हुए लेखक ने उन्हे ससार का स्वामी, अवधूत, जोगेश्वर और त्यागी सभी कुछ कहा है। उनके प्रभाव का वर्णन करते हुए लेखक कहता है –

'सत्गुरु सहज वतायो, जव रतन हाथ मे आयो।
मन ममता को दूर हटाई, ज्ञान - भान दरसायो।
अपनो रूप आप मैं परख्यो, दूजो हतो मिटायो।
मुझमे जगत जगत में मैं हूं, यह स्वरूप समझायो।
मिथ्या भरम मान कर बैठो, तन अभिमान गिरायो।
सत संगत अमृत रस पायो, पीवत खूब छकायो।
अनन्त छक्यो जब सोय गयो फिर, जग्यो फेर भर पायो।
नाथ जलंधर प्रताप भयो जद सत सरनागत आयो।
देवनाथ गुरु मानसिंह के भ्रम तम दूर भगायो।'

जगह–जगह पर लेखक ने योग की महिमा गाई है :—

'घूँघट पट खोल राधे, मोहन मन्दिर आयो।
बाहिर मन्दिर खोज हारी, कछु न थाह पायो।
मंदिर के पट खुले पड़े, झालो दे बुलायो।
वृत्ति मेरी राधे बनी, भ्रम सब भगायो।
मान यो आनद भयो, कृष्ण को रिझायो।'

योग के सम्बन्ध मे मानसिंह और उनके गुरू मे जो प्रश्नोत्तर हुआ उससे भी हठ-योग की महिमा स्पष्ट व्यजित होती है।
मानसिंह ने पूछा –

'क्या मैं इड़ा पिंघला साधूँ, क्या लेऊँ स्वांस रुकाय।
रेचक पूरक करलूँ कुम्भक लेऊँ स्वाँस चढ़ाय ?'

गुरू ने उत्तर दिया :–

'इड़ा पिंघला स्वाँसा ने रोक्या तन तो स्थिर हो जाय
रेचक पूरक कुम्भक कीयाँ मन स्थिर होसी नाय
पान अयान की जानो सधि कर ब्रह्म जीव ने एक
सहजें सूर अभय घर ऊगे टल जावैं लिखिया लेख।'

कबीर आदि सतो की तरह सुरति, शून्य, सहज आदि की महिमा मानसिंह ने भी की है और भेष की निंदा करते हुए उन्होने कहा है –

'भेष दीयो नहीं कान ज्यो फारे
ना हमको उन भीख मँगाई
आपही पूरन नाथ हुतै असही
हमको निज घूँटि पिलाई
मेट दी सब ताप मेरी उन आपके
बीच मे दीन लखाई
मान कहे जब जान परी तब जाय मिले
हम नाथ के माई।'

मानसिंह का गद्य —इनके गद्य मे एक ही उल्लेखनीय रचना है जिसका परिचय ऊपर दिया जा चुका है। यह गद्य मारवाडी भापा मे है। आजकल का गद्य अधिक सुव्यस्थित है, परन्तु मानसिंह के गद्य मे कुछ शिथिलता है, विशेष रूप से वाक्य विन्यास की। यथा :–

सृष्टि रचना के विषय मे नाथ–पुराण मे कहा है :—

'एक समय निरजन निराकार नाथ सृष्टि रचणा री इछा करी सो आकाश मडल मे नाद बजाई सो प्रथम तौ अनेक नाथ परगट हुआ पछे जीवणी दिस कानी तिरछी

नाद बजाई जिनसूँ शिव, शक्ति, गणेश, साम कार्तिक, भैरूँ, शेषनाग, अनेक देव परगट हुआ पछै ऊवी दिसकानी तिरछी नाद फेर बजाई जिनसूँ ब्रह्मा, बिसन, सूरज अनेक देव, मिनक रिखेषर, पशु, पषी, परगट हुआ, पछै उल्टी नाद बजाई जिनसूँ राकस, दैत, दाणव, समस्त पैदा हुआ। इण भाँति सूर्य चन्द्र की मुद्रा, तारा री माला, असख्य जुग जनेऊ।'

वेदान्त विषयक गद्य की यह परम्परा भाषा भूषण के लेखक महाराज जसवतसिह से चली आ रही है।

मानसिह स्वय साहित्य के प्रेमी थे और वे साहित्यिको का आदर भी करते थे। उनके दरबार मे अनेक साहित्यिक समय समय पर रहे। इनमे से कुछ उल्लेखनीय है—नाथ चन्द्रोदय, जलधर स्तोत्र और राजकुमार प्रबोध के लेखक कवि शभुदत्त; अवधूत गीत की सस्कृत टीका लिखने वाले पडित सदानद त्रिपाठी, जलधर जस वर्णनकार शिवनाथ कवि, नाथ स्तुति ,रचयिता कवि बाकीदास और गोरक्ष सहस्त्र नाम के टीकाकार तथा सस्कृत की पद्यात्मक मेघमाला के लेखक सेवक दौलतराम।

उपसंहार

प्रस्तुत विवेचन से यह प्रकट है कि महाराजा मानसिह उच्चकोटि के साहित्यकार थे तथा साहित्यकारो के आश्रयदाता थे। उनकी रचनाओ के सम्बन्ध मे यह प्रश्न स्वाभाविक है कि वे कहा तक उनकी लिखी हुई है ! इसके उत्तर मे प्रमाण यही है कि ये रचनाये उन्ही के नाम से मारवाड़ मे प्रचलित हैं और उनकी प्रतिलिपिया महाराज मानसिंह की रचनाओ के अन्तर्गत ही 'पुस्तक प्रकाश' मे सग्रहीत है, जो सुरक्षित है। यह बात अवश्य है कि भाषा की दृष्टि से उनके पदो और प्रबन्ध काव्यो मे कुछ स्पष्ट भेद है। इस भेद का कारण यही हो सकता है कि पद उनके आरम्भ की रचनायें हो अथवा उनकी रचना मे सार्वजनिकता और सर्वप्रियता की भावना सन्निहित हो। मारवाड मे अभी तक भी कुछ ऐसे लोग है जिन्होंने महाराजा मानसिंह के सम्बन्ध मे अनेक बाते उन व्यक्तियो से सुनी थी जो सदैव लेखक के साथ रहा करते थे। इनमे से कुछ रचनाओ को उन्ही के द्वारा सुनने का सौभाग्य इनको प्राप्त हुआ था। वर्तमान साहित्य को सुनकर उसमे से अधिकाश वे अपनी स्मृति के आधार पर मानसिंह की ही रचनाएँ बताते है। अतएव जबतक कोई नकारात्मक प्रमाण न मिले तब तक इन रचनाओ को मानसिंह कृत मानने मे कोई आपत्ति नही होनी चाहिये।

राठौरो के साहित्य, धर्म और कला के सम्बन्ध मे किसी ने एक दोहा कहा है—

'जोध बसाई जोधपुर, ब्रज कीनी बिजपाल।
लखनेऊ काशी दिली, मान करी नैपाल ॥'

इसका भाव यह है कि राव जोधा जी ने जोधपुर बसाया और महाराज विजयसिंह ने अपनी वैष्णवी भावना से इसे ब्रज बना दिया। चौपासनी[1] मे आज भी गोसाई जी की एक गद्दी वर्तमान है। परन्तु महाराज मानसिंह ने इस नगरी को लखनऊ, काशी, दिल्ली और नेपाल सब कुछ एक साथ बना दिया। उनके समय मे लखनऊ और दिल्ली के गवैये और कत्थक, काशी वालो के समान पडित और शास्त्रज्ञ तथा नेपाल मे रहने वाले योगियो और नाथ सम्प्रदाय वालो के समान सिद्ध और योगी यहां एकत्र हो गये।

१. जोधपुर के एक स्थान का नाम

: ४ :

बीकानेर का राजघराना

बीकानेर राज्य के भूभाग का प्राचीन नाम 'जागल–प्रदेश' है। इतिहासकारो का मत है कि महाभारत के युग मे यह प्रदेश 'कुरु प्रदेश' के अन्तर्गत था। वर्तमान राठौड वश से पूर्व किन-किन जातियो ने इस भूभाग पर राज्य किया इसका विस्तृत एव प्रामाणिक विवरण अभी उपलब्ध नही है। म० म० प० गौरीशकर ओझा का कहना है कि यहाँ पर समय-समय पर मौर्य, यूनानी, क्षत्रप, गुप्तवशी और प्रतिहारो ने राज्य किया। इनके पश्चात् राजसत्ता जौधेयो (यौधेयो), चौहानो, साँखलो, भाटियो और जाटो के हाथ मे क्रमश आई।

वर्तमान बीकानेर राज्य के सस्थापक राव बीकाजी थे। बीकाजी राव जोधाजी के पुत्र थे। एक दिन की बात है कि राव जोधाजी दरबार मे बैठे हुए थे। पास मे उनके भाई काँधल थे। बीकाजी घर के अन्दर से आए और काधल से कान मे बात कहने लगे। यह देखकर जोधाजी ने व्यग्यपूर्वक कहा–'आज चाचा–भतीजे क्या सलाह कर रहे है? क्या कोई नया ठिकाना जीतने की बात हो रही है?' काँधल ने व्यग्य को समझते हुए उत्तर दिया–'आपके प्रताप से यह भी हो जायगा। काधल के आत्माभिमान को ठेस पहुची। भाग्यवश उस समय जाँगलू का नापा साखला भी दरबार मे आया हुआ था। उसने बीकाजी से कहा-'परगना जाँगलू बिलोचो के आक्रमण से कमजोर हो गया है और कुछ साँखले उसका परित्याग कर अन्यत्र चले गए है। यदि आप चाहे तो वहा सरलता से अधिकार किया जा सकता है'। राव जोधाजी को भी यह बात पसन्द आई और उन्होने काधल को नया राज्य स्थापित करने की आज्ञा दे दी। काधल, बीकाजी और अन्य साथियो को लेकर जोधपुर से चल दिए।

मँडावर होते हुए बीकाजी दर्शनो को पहुँचे। वहाँ 'करणीजी' के दर्शन कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया–'तेरा प्रताप जोधा से सवाया बढेगा और बहुत से भूपति तेरे चाकर होगे।' फिर कोडमदे सर मे जाकर अपने को राजा घोषित किया। तत्पश्चात् जाँगलू को भी अपने राज्य के आधीन कर लिया। अनेक सघर्षों के पश्चात्

बीकाजी ने अपने शासन को दृढ किया। सन् १४८५ ई मे राती घाटी पर गढ की नीव रखी गई एव सन् १४८८ मे इसी के आसपास बीकाजी ने अपने नाम पर बीकानेर नगर की स्थापना की। इस घराने का नाम तभी से अद्यावत चला आ रहा है, वैसे बीकानेर नरेश 'जागल प्रदेश' के बादशाह कहलाते है।

राव बीकाजी सन् १५०४ मे स्वर्ग सिधारे। वह बडे उदार व्यक्ति थे। साहस की अनेक घटनाएँ उनके जीवन से सम्बद्ध है। उनका जीवन सघर्ष मे ही बीता अतएव कोई साहित्यिक परम्परा स्थापित करने का श्रेय उन्हे नही मिल पाया।

राव बीका के पश्चात् उनके पुत्र नरा बीकानेर के स्वामी हुए परन्तु कुछ मास तक शासन करने के उपरान्त उनका देहान्त हो गया (सन् १५०५)। नरा के निस्सन्तान होने के कारण उनके छोटे भाई राव लूणकर्ण गद्दी पर बैठे। राव लूणकर्ण अपने पिता के समान ही वीर, साहसी और प्रजापालक थे। उनकी दान-शीलता प्रसिद्ध है 'कर्म चन्द्रवशोत्कीर्तन'-काव्य मे उन्हे कर्ण के समान दानी बताया गया है।

आकर्णितः पुरा कर्णः स कर्णरीक्षितो ऽधुना।
दानाधिकतया लब्धावतारोऽयं स एव किं ॥१५३॥

प्रसिद्ध बीठू सूजा ने भी अपने 'जैतसी रो छन्द' मे राव लूणकर्ण द्वारा चारणो, कवियो आदि गुणीजनो को हाथी, घोडे आदि दिए जाने का उल्लेख किया है।

'लड़िय नट हूँता गुजरात
बीकउत उबारण सुजस बात।
ताजी हसति दीन्हा तियाई
रण हूँत पिता मोखावि राई ॥५६॥
इल राइ करन वारउ कि ईंद
गुणियाण ग्रिहे बाधा गईंद।
ताकुआं रेसि सौभाग तत्ति
हिन्दुवइ राइ दीन्हा हसत्ति ॥६२॥

राव लूणकर्ण स्वय कवि नही थे परन्तु कवियो का आदर करते थे। इस प्रकार साहित्य सम्मान का परिचय देकर उन्होने, जोधपुर के राजघराने की तरह, बीकानेर के राजघराने मे एक परम्परा की नीव डाल दी।

अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर राव जैतसिंह तुरन्त ही बीकानेर की गद्दी पर बैठ गए (सन् १५२६) । पिता को धोखा देकर मारने वाले से प्रतिशोध लेने के लिए उन्होने सन् १५२७ मे द्रोणपुर पर चढाई की और उसे अपने अधिकार मे कर लिया । अन्य सघर्षों के अतिरिक्त जैतसिंह के जीवन की घटनाओ मे कामरान से युद्ध होना एक विशेष घटना है । इस युद्ध मे सफलता प्राप्त कर जैतसिह ने अपनी नीतिकुशलता का पूर्ण परिचय दिया है । बीठू सूजा ने अपनी रचनाओ मे अपने आश्रयदाता की वीरता का कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन अवश्य किया है परन्तु फिर भी यह काव्य जैतसिंह के व्यक्तित्व की महानता का सूचक है । प्रशसात्मक काव्यो की परम्परा मे इस रचना का बडा महत्त्व है और इस सब का श्रेय यहा के राजघराने को है । राव लूणकर्ण ने केवल दान आदि देकर काव्य को प्रोत्साहन दिया था परन्तु राव जैतसी ने अपने व्यक्तित्व से साहित्य–सृजन को प्रेरित किया । यह दुख का विषय है कि ऐसा शासक दूसरे शासक द्वारा मारा जाय और उसका राज्य दूसरे के हाथ मे चला जाय ।

राव मालदेव द्वारा जैतसी की मृत्यु होने के कारण बीकानेर के अधिकाश भाग पर राव मालदेव का अधिकार हो गया । परन्तु ऐसी भीषण परिस्थितियो मे भी कुछ स्वामीभक्त निकल ही आते है । राज्य पर इस सकट को देख कर मत्री नगराज ने राव जैतसी के पुत्र कल्याणमल को सकट से पृथक कर दूसरे स्थान पर सुरक्षित कर दिया था । कालान्तर मे यही कल्याणमल बीकानेर के शासक हुए परतु राजकीय झझटो मे इतने फसे रहे कि उनके अतिरिक्त इन्हे दूसरी ओर ध्यान देने का अवसर ही नही मिला और अन्त मे सन् १५७४ मे स्वर्ग सिधारे । डिंगल साहित्य के प्रसिद्ध कवि पृथ्वीराज इन्ही के पुत्र थे । पृथ्वीराज की लिखी हुई 'बेली क्रिसन रुक्मणीरी डिंगल का प्रसिद्ध ग्रन्थ है । डिंगल को प्राय. वीर रस प्रधान माना जाता है परन्तु 'बेलि' मे शृगार का भी बडा सुन्दर और भावपूर्ण वर्णन है । पृथ्वीराज वैष्णव भक्त थे । उनकी भक्ति की अनेक दन्त कथाएँ उनके अलौकिक शक्ति सम्पन्न होने की महिमा का वर्णन करती है । प्रसिद्ध है कि छ महीने पहले ही उन्होने अपनी मुत्यु का दिन और स्थान बता दिया था जिस पर अकबर ने उसे असत्य प्रमाणित करने के लिए उन्हे अटक भेज दिया । परन्तु फिर अकस्मात् उन्हे १५ दिन पहिले बुला लिया गया और अकबर को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि पृथ्वीराज की भविष्यवाणी नितान्त सत्य निकली । 'बेलि' के अतिरिक्त पृथ्वीराज के फुटकर गीत भी मिलते है जिनका विषय राम और कृष्ण सम्बन्धी है ।

राव कल्याणमल के पश्चात् उनके पुत्र महाराजा रायसिंह गद्दी पर बैठे (सन् १५७४ ई.) । अपने पूर्वजो की तरह महाराजा रायसिंह को भी युद्धो से विश्राम नही मिला । उनके जीवन मे जितने उतार–चढाव आए उस मात्रा मे दूसरो के भाग्य मे कम ही लिखे होगे । अकबर उनसे कभी खुश हुआ तो कभी नाखुश । रायसिंह ही ऐसे महाराजा थे जिन्हे अकबर ने अपने अतिम दिनो मे अपने पास बुलाया था और जब जहागीर के विरोध मे खुसरो के अकबर का स्थानापन्न सम्राट बनाने का षडयन्त्र राज दरबार मे चल रहा था उस समय महाराजा रायसिंह ही जहागीर के एक मात्र सहायक और विश्वासपात्र थे । गद्दी पर बैठते ही जहागीर ने रायसिंहजी के व्यक्तिगत पद मे वृद्धि भी कर दी थी ।

रायसिंहजी बडे दानशील और विद्यानुरागी व्यक्ति थे । उनकी दानशीलता की गणना अकबर, बीरबल और खानखाना जैसे व्यक्तियो के साथ की जाती है । चारणो ने तो उन्हे राजपूताने का कर्ण तक कह डाला है । अपने पहिले विवाह मे, जो महाराणा उदयसिंह की राजकुमारी जसमादे के साथ हुआ था, इन्होने दस लाख रुपये दान मे बाटे थे । उनके समय की एक घटना प्रसिद्ध है–एक बार जब वे चित्तौड के ज़नाने महल मे जाने लगे तो राणाजी की वडारनो (दासियो) ने एक ज़ीना दिखा कर कहा कि जो कोई इसकी एक एक पैडी पर एक एक हाथी दे वह इसमे होकर ऊपर जा सकता है नही तो दूसरा रास्ता और भी है । महाराज उसी रास्ते से ऊपर गए और गिनी तो ५० पैडियाँ निकली । दूसरे दिन दरबार किया और ५० हाथी तथा ५०० घोडे सिरोपाव सहित चारणो को दिए । इनमे से एक एक हाथी दूदा, आसिया, देवराज रतनू, भूला साइयाँ और भाट खेतसी को भी मिला था । महाराज ने नागौर का पूरा परगना ही शकर बारहठ को दे दिया था ।[१]

महाराजा की दानशीलता के और भी अनेक उदाहरण मिलते है । दान–शील होने के साथ साथ महाराजा स्वय साहित्यिक व्यक्ति थे । भाषा और सस्कृत दोनो मे उन्होने कविता की है यद्यपि भाषा की कविता उपलब्ध नही होती । मुशी देवी प्रसादजी का कहना है कि महाराजा ने स्वय 'रायसिंह महोत्सव' और 'ज्योतिष-रत्नाकर' नामक दो सस्कृत ग्रथो की रचना की । एक वैद्यक का ग्रथ है और दूसरा ज्योतिष का[२] । ओझाजी का मत है कि इन दोनो ग्रथो की भाषा टीका महाराजा ने लिखी[3] । महाराजा के आश्रय मे भी कई ग्रथो के निर्माण की बात कही जाती

---

१. राजरसनामृत–मुं. देवी प्रसाद कृत, पृष्ठ ३६–३७

२ राजरसनामृत –मुंशी देवीप्रसाद कृत–पृष्ठ. ३८

३ बीकानेर का इतिहास, भाग १ पृ. २०४ (ओझा कृत)

है। इनमे जैन साधु ज्ञान विमल द्वारा महेश्वर के 'शब्द भेद' की टीका की रचना होना सत्य बात है।

महाराजा के देश प्रेम की एक घटना प्रसिद्ध है। एक बार अपनी दक्षिण यात्रा मे कही उन्हें 'फोग'[1] का पेड दिखाई दे गया। अपने देश के पेड को दूर दक्षिण मे उगता हुआ देखकर महाराजा अपने घोडे से नीचे उतर पडे और उस बूटे को गले से लगाकर कहने लगे—

तू तौ देशी रूँखड़ा म्हैं परदेशी लोग।
म्हानें अकबर तेड़िया[2] तू क्यो आयो फोग॥

(हे वृक्ष! तू देशी है, मैं परदेसी हूँ! मुझे तो अकबर ने बुलाया है पर तू यहा कैसे आया?)

महाराजा कल्याणमल जो स्वय न कर सके वह उनके दो पुत्रो—पृथ्वीराज और रार्यासह ने किया। बीकानेर के इतिहास मे यह एक महत्वपूर्ण प्रसग है।

महाराजा रार्यासह के पश्चात् महाराजा दलपतसिह बीकानेर के स्वामी हुए। सन् १६१२ ई को दलपतसिह ने जहाँगीर के दरबार मे उपस्थित होकर राय की पदवी और खिलअत प्राप्त की परन्तु एक वर्ष के भीतर ही इनके भाई महाराजा शूरसिह ने इन्हे परास्त कर राज्य अपने हाथ मे ले लिया और सन् १६१३ ई मे स्वयं गद्दी पर अधिकार कर लिया। जहागीर ने भी शूरसिह के मनसब मे वृद्धि की और उन्हे बीकानेर का राजा स्वीकार किया। साहित्यिक प्रवृत्ति के विकास मे महाराजा शूरसिह की कोई उल्लेखनीय देन नही है।

महाराजा शूरसिह के पश्चात् उनके पुत्र महाराजा कर्णसिह राज्य के शासक हुए। तत्कालीन बादशाह शाहजहां ने उन्हे दो हजार जात और डेढ हजार सवार का मनसब प्रदान किया। बाद को सन् १६४८–४६ ई मे डेढ हज़ार के स्थान पर दो हजार सवार का मनसब कर दिया गया और दो हजार जात के स्थान पर उसे ढाई-हज़ार कर दिया गया। इससे स्पष्ट है कि शाहजहा उनसे प्रसन्न था। सन् १६६६ मे महाराजा की मृत्यु औरगाबाद मे हुई। इस प्रकार अपने राज्यकाल मे महाराजा कर्णसिह को जिन दो शासको के राज्य देखने का अवसर प्राप्त हुआ वे थे शाहजहा और औरगजेब।

---

१. बीकानेर का एक विशेष वृक्ष।
२. बुलाया

बीकानेर के शासको मे महाराजा कर्णसिंह का व्यक्तित्व बडा महत्त्वपूर्ण हे। कट्टर मुगल शासक औरगज़ेब से बीकानेर के राजाओ मे सबसे पहले उन्ही का सम्पर्क हुआ। औरगज़ेब के साथ कई युद्धो मे काम करने से वह औरगजेब की शक्ति और बुद्धि से परिचित थे। अतएव शाहजहा द्वारा इतना सम्मान पाने पर भी वह भाइयो की लडाई मे किसी पक्ष मे सम्मिलित न हुए परन्तु नीतिवश अपने दो पुत्रो–पद्मसिंह और केसरसिंह–को औरगज़ेव के साथ छोड दिया। कर्णसिह की नीतिकुशलता और दूरदर्शिता का प्रमाण इससे बढकर दूसरा मिलना कठिन है। हिन्दुत्व की रक्षा करने मे भी महाराजा कर्णसिंह हिन्दुओ के बडे सहायक हुए और इसीसे प्रसन्न होकर सब हिन्दू राजाओ ने उन्हे 'जगलवर पादशाह' की उपाधि से विभूषित किया। यह उपाधि अभी तक भी बीकानेर के राज्य मे परम्परागत चली आ रही है। वहाँ की राजकीय चिह्न मुद्रा पर भी यही शब्द अकित है।

महाराजा कर्णसिंह विद्वान, विद्यानुरागी और विद्वानो के आश्रयदाता थे। अलकार सम्बन्धी ३८३ पत्रो का वृहद 'साहित्य कल्पद्रुम' उन्होने ही अन्य विद्वानो की सहायता से बनाया था[1]। परन्तु मु शी देवीप्रसाद इसे प० दिनकर की रचना मानते है[2]। रचना की हस्तलिखित पोथी से ओझाजी के मत का समर्थन होता है। उसके अन्त मे लिखा है—

'इति श्री महाराजाधिराज श्री शूरसिह सुधोदधि सभव श्री कर्णसिह विद्वत्सवर्द्धिते साहित्यकल्पद्रुमे अर्थालकार निरूपण नाम दशम स्तवक ॥ समाप्तश्चायं साहित्यकल्पद्रुमनिवध ॥ शाके १५८८ पराभव नाम सवत्सरे वैशाख शुद्ध ५ रविवार दिने लिखित श्यामदास अबष्ठ काशीकरेण मुकाम अवरगाबाद कर्णपुरा मध्ये लिखित।'

इस ग्रन्थ के अतिरिक्त महाराजा की स्वय लिखित रचना का कोई अन्य प्रमाण नही मिलता। उनकी आज्ञानुसार मैथिल कवि प० गगानन्द ने सस्कृत मे 'कर्णभूषण' और 'काव्य डाकिनी' नामक दो रचनाए लिखी। 'कर्णभूषण' के आरम्भ मे कवि ने कहा है–

.... "............

'आशया तस्य भूमिन्द्रोर्न्याय काव्य कलाविद :
गगानंद कवीन्द्रेण क्रियते कर्ण भूषण ॥'

---

१. बीकानेर का इतिहास, ओझा कृत, भाग १, पृ० २५२
२. राजरसनामृत, देवी मु शी प्रसाद कृत, पृष्ठ. ४६

यह ग्र थ भी काव्य शास्त्र सम्बन्धी है। 'काव्य डाकिनी' मे काव्य दोपो पर विशेष विचार किया गया है–

'काव्य दोषाय बोधाय कवीना तम जानतां।
गंगानन्द कवीन्द्रेण क्रियते काव्य डाकिनी ॥'

मु शी देवीप्रसादजी ने भट्टहोसिग कृत कर्णावतन्स, कवि मुद्गल कृत कर्ण सन्तोष और यशोधर कृत वृत्तसारावली का भी उल्लेख किया है। ये सब ग्रथ भी काव्य शास्त्र विषयक है परन्तु सस्कृत मे होने के कारण प्रस्तुत विवेचना क्षेत्र की परिधि से परे हैं। महाराजा ने स्वय एक गीत लिखा था जो अब भी श्रीकरणीजी के मन्दिर मे रत–जगे मे गाया जाता है।

–१–

भिड़ती खुरसाण जिते दल भाग,
आइ, करण तुम्हारी ओट।
बीकाणे देसाणें वांसे,
करनादे, पलटे क्यूँ कोट ॥

–२–

मूगल–दल मेटो, बेगाई।
घर जंगल सिर माय धरो।
नीके दुरग थापियो बांको,
काटां सरण उबेल करो ॥

–३–

आई जगल राखियो ओले,
राजा धरम हींदवॉ राह।
करण सहाय आवतां करणी,
पाछा दल मुड़िया पतसाह ॥

इतने ग्रन्थो का लिखा जाना महाराजा कर्णसिह के काव्य ज्ञान और साहित्य सम्मान का द्योतक है। महाराजा रायसिंहजी की परम्परा को सजीव रखने का श्रेय कर्णसिहजी को मिलना ही चाहिए।

सन् १६६६ ई० मे महाराज कर्णसिह की मृत्यु हुई और इसी वर्ष उनके तीस वर्षीय पुत्र अनूपसिह उत्तराधिकारी हुए। वैसे औरगजेब ने कर्णसिह के जीवनकाल मे ही अनूपसिह को बीकानेर का शासन भार सौप दिया।

अनूपसिहजी बडे वीर, राजनीतिज्ञ, दयालु और विद्याप्रेमी व्यक्ति थे। दक्षिण भारत अनेक बार उनकी वीरता के चमत्कार देख चुका था। इसी कारण वह बादशाह की ओर से औरगाबाद के शासक भी रहे और उसका प्रबन्ध उन्होने बडी कुशलता और बुद्धिमानी से किया जिसके कारण उन्हे 'माहीमरातिब' की उपाधि भी बादशाह की ओर से सम्मान मे मिली।

यह महाराज अनूपसिह की दूरदर्शिता और चातुर्य का ही परिणाम था कि उन्होंने बीकानेर के हिन्दू राज्य को मुसलमान राज्य होने से बचा लिया। अन्यथा उनके अनौरस भाई बनमालीदास ने बादशाह के पास जाकर, इस्लाम धर्म स्वीकार कर, बीकानेर का आधा राज्य अपने नाम लिखवा लिया था। जिस गुप्त षडयत्र द्वारा बनमालीदास के बीकानेर आते ही अनूपसिह ने उसे मरवा डाला उसका पता तक बादशाह को न चल पाया !

अनूपसिह कला के बडे प्रेमी थे विशेपकर सगीत के। औरगजेब ने जब सगीत को पृथ्वी मे गडवा दिया था तो गवैये अधिकाश मे बीकानेर आकर ही सतुष्ट हो सके थे। महाराज स्वय सगीत के विद्वान और पारखी थे। सगीतवेत्ताओ से उनका दरबार भरा रहता था। प्रसिद्ध सगीताचार्य जनार्दन भट्ट के पुत्र भावभट्ट ने बीकानेर मे ही अपने ग्र थ 'सगीत अनूपाकुश', 'अनूपसगीत विलास' 'अनूप सगीत रत्नाकार' एव 'सगीत विनोद' तथा 'नष्ठोदिप्ट प्रबोधक ध्रोपद टीका' की रचना की। रघुनाथ गोस्वामी ने 'सगीत अनूपोदेश्य' भी इसी समय बनाया। स्वय महाराज अनूपसिह ने 'सगीतानूपराग'[1] और 'सगीत वर्त्तमान' दो ग्र थ लिखे।

महाराजा को वैद्यक और ज्योतिष मे भी बडी रुचि थी। 'सन्तान कल्पलता' 'चिकित्सा मालतीमाला', 'सग्रह-रत्नमाला' रचनाएँ वैद्यक सबधी है और 'अनूप रत्नाकार' ज्योतिष विषयक है। इन्ही के आश्रित होसिंग भट्ट एव अम्बक भट्ट ने क्रमश 'अमृत मजरी' और 'शुभ मजरी' नामक पुस्तके वैद्यक के सबध मे लिखी। इसी प्रकार ज्योतिप विषयक 'अनूप महोदधि' तथा 'अनूप मेघमाला' 'अनूप व्यवहार सागर' एव 'ज्योत्यत्वासना' ग्रथ भी क्रमश वीरसिह, ज्योतिपराट, रामभट्ट मणिराम एव विद्यानाथ सूरि द्वारा निर्मित हुए।

धर्मशास्त्र मे महाराज की अच्छी गति थी। आचार-शास्त्र और दर्शन जैसे विपय भी उनकी रुचि के अनुकूल थे। इस सबध मे उनका रचा हुआ 'नीति ग्र थ'

---

१. **महाराज अनूपसिह रचित ये दोनो ग्र थ बीकानेर राज्य के पुस्तकालय मे विद्यमान हैं।**

प्रसिद्ध है। अन्यथा अनत भट्ट, राम भट्ट, विद्यानाथ सूरी, मणिराम दीक्षित, पन्तुजी भट्ट आदि ने धर्मशास्त्र विषयक ग्र थो की रचना की है।

'वैष्णव पूजा' और 'शिवपूजा' प्रसग सबंधी कई रचनाएँ स्वय अनूपसिहजी की उपलब्ध हैं। 'लक्ष्मीनारायण स्तुति', 'लक्ष्मीनारायण पूजा सार छन्दोबद्ध', 'शालग्राम ग्र थ अनूप विवेक' वैष्णव पूजा विषयक है और 'साब सदाशिव स्तूप' शिवपूजा विषयक है। इनके अतिरिक्त शिव पडित ने भी 'श्री लक्ष्मीनारायण स्तुति' लिखी एव रामभट्ट, नीलकण्ठ, विद्यानाथ, दामोदर, सरस्वति भट्टाचार्य एव त्रिम्बक नामक विद्वानो ने शिवपूजा विषयक अनेक छोटे मोटे ग्र थ लिखे। राजधर्म विषयक पुस्तके जनार्दन, शिवराम एव शाब भट्ट ने लिखी। काव्य विपयक महाराजा का 'पाडित्य-दर्पण' नामक एक ही ग्रथ उपलब्ध है।

प्रायः यह कठिन होता है कि निश्चयपूर्वक यह कहा जा सके कि स्वय महाराजा की लिखी कितनी पुस्तके है[1] और उनके नाम से दूसरो ने कितनी लिखी परन्तु अनूपसिहजी के विषय मे यह शका निराधार सी है। उनका पाडित्य अपार था और विभिन्न विषयो मे उनकी रुचि थी। वह विद्वानो के सम्मानकर्त्ता और आश्रयदाता थे। ऐसी अवस्था मे दूसरे की रचना को अपना बना लेना और उसका श्रेय स्वय ले लेना विद्वानो के आचरण के विपरीत है। महाराजा का विद्या प्रेम इससे भी प्रतीत होता है कि उन्होने अपने राज्य मे 'अनूप पुस्तकालय' की स्थापना की जो अद्यावधि वर्तमान है। इस पुस्तकालय मे अनेको अमूल्य हस्तलिखित ग्रथ-सस्कृत, हिन्दी, फारसी और अरबी भाषा के अभी तक मौजूद है। ये पोथिया अधिकाश मे दक्षिण विजयो से लाई गई है। प्रसिद्ध है कि जब लूटमार मे मुसलमान धन दौलत पर हाथ मारते थे तो महाराज पुराने ग्रथो की रक्षा की चिन्ता करते थे और इसके लिए जो कुछ सभव होता वैसा करने मे कभी पीछे नही हटते थे। यही कारण है कि मुसलमानो द्वारा हिन्दुओ पर यदाकदा होने वाले सकटो मे उन्हे सस्कृति की सुरक्षा का ध्यान सदैव बना रहता था।

---

१ (i) **अनूप विवेक सालग्राम परीक्षा**
(ii) **संस्कृत व भाषा कौतुक**
(iii) **कौतुक सारोद्धार राज विनोद**
(iv) **सांबसदा शिवस्तूप (शिवपूजा)**
(v) **अनूप महोदधि**
ये ग्रन्थ भी महाराज कृत कहे जाते हैं—
देखो देवी मुंशी प्रसाद कृत राजरसनामृत, पृष्ठ ४६,४७

उनकी प्रशसा मे अनेको चारणो ने सैकडो गीत रचे है। चारण गाडण बीरमाण के गीतो मे 'राजकुमार अनोपसिह री वेल' के ४१ गीत प्रसिद्ध है। महाराज अनूपसिंह के प्रोत्साहन से ही 'बैताल पच्चीसी' की कथाओ का कविता मिश्रित राजस्थानी गद्य मे अनुवाद हुआ। इसी प्रकार 'दपति विनोद' नाम से 'शुक सारिका' का रूपान्तर भी राजस्थानी मे प्रस्तुत किया गया।

जिन पुस्तको का वर्णन ऊपर आया है, वे सस्कृत मे है भाषा मे नही। अतएव उनका अधिक विस्तृत परिचय हमारे विवेचन क्षेत्र की परिधि मे नही है। परन्तु यह तो स्पष्ट है ही कि साहित्य और सस्कृति की रक्षा एव उसके विस्तार के लिए महाराज अनूपसिह का व्यक्तित्व एक अपूर्व देन है।

महाराज अनूपसिंह की मृत्यु के बाद महाराज स्वरूपसिह और महाराज सुजानसिंह बीकानेर के अधीश्वर हुए परन्तु इनके राज्यकाल मे (१६७१-१७३५) साहित्य-विषयक किसी भी प्रगति के चिन्ह प्राप्त नही होते।

महाराज सुजानसिह के पश्चात् महाराज जोरावरसिहजी सन् १७३६ मे बीकानेर की गद्दी पर बैठे। अपने पूर्वजो के समान यह भी विद्यानुरागी और पडितो का सम्मान करने वाले थे। इनके बनाए हुए दो ग्रथ सस्कृत भाषा मे उपलब्ध है – 'वैद्यक सार' और 'पूजा पद्धति'[1]। फुटकर दोहे जनश्रुतियो मे आते है परन्तु निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि ये उन्ही के है। केशव की 'रसिक प्रिया' और 'कवि प्रिया' की टीकाएँ भी इन्होने ही बनाई थी जो 'ललित का' अथवा 'जोरावर प्रकाश' के नाम से प्रसिद्ध है[2]। टीकाएँ बडी विद्वता से लिखी गई है जो महाराजा की अध्ययन प्रवृत्ति की सूचक है। इससे यह भी विदित होता है कि केशव १८वी शताब्दी मे कितने लोकप्रिय थे।

महाराजा जोरावरसिह निस्सन्तान स्वर्ग सिधारे अतएव उनके पीछे राज्य के स्वामित्व के विषय को लेकर अनेक कुचक्रो का जन्म हुआ। अन्त मे महाराज गजसिंह सिहासनारूढ हुए (सन् १७४५ ई०)। यह पहले बीकानेर-नरेश थे जिन्हे दिल्ली के बादशाह की ओर से 'श्री राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजा शिरोमणी' की उपाधि प्राप्त हुई। यह उपाधि उनके नाम की मुद्रा और शिलालेखो मे पायी जाती है। 'माहीमरातिब' का सम्मान भी इन्हे प्राप्त हुआ था।

महाराजा गजसिह की योग्यता और चतुरता का ही यह परिणाम था कि बडे भाइयो के रहते हुए भी जोरावरसिह के निस्सतान मरने पर, बीकानेर के सरदारो ने इन्हे शासक नियुक्त किया।

---

१. राजरसनामृत—मुंशी देवीप्रसाद कृत, पृष्ठ ५० २. वही, पृष्ठ—५०

महाराजा गजसिंह स्वय कवि थे और कवियो का सम्मान भी करते थे। जोधपुर के महाराज विजयसिंह और उदयपुर के राणा अरिसिंहजी से इनकी अच्छी मित्रता थी। दोनो मित्र परम वैष्णव थे। गजसिंहजी पर इस वैष्णव वातावरण का पूरा पूरा प्रभाव था। इनके गीतो का सग्रह बीकानेर के 'अनूप पुस्तकालय' मे मौजूद है।

महाराज गजसिंहजी की कविता भक्ति भाव से सपन्न है—

भौह बाँकी हो राधेवर की।
रास समय कर नीकी विराजत मुरली अधर अधर की।
राधाराई सब वन आई और आई है घर घर की।
सुनत तान मुनि जन अकुलाये उछलि मीन सर सर की।
गजा कहै भव पीड़ मिटत है छवि निरखत गिरधर की[1] ॥१॥

रास समय का यह वर्णन भक्त के हृदय की उमग का द्योतक है। कविता मे नवीनता न होने पर भी उसमे अपना प्रवाह और प्रभाव–शक्ति है। 'टेसिटरी'[2] ने अपनी पुस्तक मे इनके आश्रित कई कवियो का नाम दिया है जिन्होने महाराज गजसिंह के विषय मे प्रशसात्मक काव्य लिखे थे। चारण गाडण गोपीनाथ तथा सिढायच फतहराम इन चारणो मे एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्हे महाराजा से विशेष पुरस्कार मिला था। सन् १७८७ मे इनका स्वर्गवास हो गया।

महाराज गजसिंह के पश्चात् उनके पुत्र राजसिंह राज्य के शासक हुए परन्तु दुर्भाग्यवश केवल इक्कीस दिन तक राज्य करने के पश्चात् परलोकवासी हुए। इनके पश्चात् महाराज प्रतापसिंह गद्दी पर बैठे। परन्तु कुछ इतिहास लेखको का कहना है कि प्रतापसिंह नाम से कोई भी राजा बीकानेर मे नही हुआ।

सन् १७८७ ई० मे महाराजा सूरतसिंह बीकानेर के सिंहासन पर बैठे। महाराजा का राज्यकाल (१७८७–१८२८:) अग्रेजो के अभ्युत्थान का समय था। एक बार भारत को मुसलमानो के सामने अवनत होना पडा था। तब हिन्दू और मुसलमान दोनो को अग्रेजो के प्रभुत्व का लोहा मानना पड रहा था। स्थानीय सघर्ष और षडयन्त्र भी बढते जा रहे थे। अतएव महाराजा सूरतसिंह ने यही उचित समझा कि अग्रेजो के साथ हाथ मिला लिया जाय और हुआ भी ऐसा ही।

---

१. **राजरसनामृत-देवी मुंशीप्रसाद कृत–पृष्ठ ५०**

2. **Tessitori–A descriptive catalogue of Baraic & Historical Chronicles Section I, Part II, Bikaner State; Section II, Part I, Bikaner State.**

महाराजा सूरतसिंह वीर, नीतिवेत्ता और न्यायप्रिय राजा थे परन्तु किसी प्रकार की साहित्य-प्रेरणा उनके राज्यकाल मे नही दिखाई देती ।

महाराजा सूरतसिंह की मृत्यु के उपरान्त महाराज रत्नसिंह उनके उत्तराधिकारी हुए । इनका सम्बन्ध भी अग्रेजो के साथ अच्छा रहा । रत्नसिंहजी के ही राज्यकाल मे बीकानेर, भावलपुर और जैसलमेर की सीमाएँ निश्चित हुई जिसके कारण परस्पर सीमा सम्बन्धी सभी झगडे समाप्त हुए ।

महाराजा रत्नसिंह स्वय कवि नही थ परन्तु कवियो के सम्मान का क्रम इनके दरबार मे भी टूटा न था । 'जस रत्नाकर' 'रतनविलास', 'रतनरूपक' अथवा 'रतन-जस-प्रकास' नामक काव्य ग्रथ इनकी प्रशसा मे लिखे गये । सन् १८५१ ई० मे महाराजा का देहावसान हो गया ।

महाराजा सरदारसिंह अपने पिता के पश्चात् गद्दी पर बैठे । इन्होने अपने राज्यकाल मे अनेको सामाजिक सुधार किए । इन्ही के राज्यकाल मे लार्ड डलहौज़ी की नीति के कारण असतोष की घटाएँ भारत मे छा गई । भारतीय स्वतन्त्रता के प्रथम युद्ध मे इन्होने सशस्त्र अग्रेजो का साथ दिया । परिणामस्वरूप ४१ गावो का अधिकार इन्हे प्राप्त हुआ । इन्ही के राज्यकाल मे राज्यप्रबन्ध के लिए कौंसिल की स्थापना हुई परन्तु इससे राज्य के वैभव की वृद्धि और दिन-दिन बढती हुई दरिद्रता मे कुछ विशेष परिवर्तन नही हुआ । साहित्यिक उत्थान मे महाराजा की कोई उल्लेखनीय देन नही है ।

महाराजा सरदारसिंह के उत्तराधिकारी महाराजा डूगरसिह हुए और सन् १८७२ ई० मे गद्दी पर बैठे । महाराज डूगरसिह दृढचित्त, साहसी, विचारशील, ईश्वर भक्त और निराभिमानी शासक थे । कर्त्तव्यपरायणता, सहानुभूति आदि गुणो की मात्रा उनमे विशेष रूप से पाई जाती थी जिसके कारण बीकानेर के इतिहास मे उनका नाम स्मरणीय रहेगा । साहित्यिक प्रवृतियो के विकास की कोई उल्लेखनीय बात महाराजा डूगरसिंह के राज्यकाल मे नही हुई परन्तु प्रजा के हित मे उन्होंने सब कुछ किया । उनके विद्यानुराग का एक उदाहरण अवश्य मिलता है । रोहडिया चारण विभूतिदान को तीन गाव, ताजीम और कविराज का खिताब उन्होंने दिया था । प्रसिद्ध डूगर कालेज इन्ही महाराजा के नाम को चिरस्थायी करता है ।

डूगरसिंहजी की मृत्यु के उपरान्त उनके छोटे भाई महाराजा गगासिंहजी गद्दी पर बैठे (सन् १८८७ ई०) । महाराजा गगासिंह का राज्यकाल बीकानेर के

इतिहास का स्वर्णकाल है। राज्य प्रतिष्ठा और वैभव मे जो वृद्धि इनके व्यक्तित्व से हुई वह किसी अन्य राजा महाराजा द्वारा नही हुई। गंगासिहजी बडे दूरदर्शी, राज-नीतिज्ञ और कुशल शासक थे। गगापुर नगर को राजस्थान का धानक्षेत्र वनाना उन्ही की बुद्धिमता और साहस का कार्य था। इनके शासनकाल मे सभी विभागो मे उन्नति हुई। शिक्षा–विभाग का विस्तार भी बढा। पुरातत्व सम्बन्धी सामगी को सुरक्षित रखने की व्यवस्था इन्ही के समय में हुई। 'गगा ओरियटल सीरीज़' की स्थापना की आज्ञा देकर हस्तलिखित पुस्तको को राज्य–व्यय से प्रकाशित कराने की व्यवस्था भी इन्होने ही की। यह कार्य खोज करने वाले साहित्य सेवियो के लिए विशेष रूप से प्रोत्साहन देने वाला सिद्ध हुआ।

महाराज गगासिंहजी के पश्चात् उनके पुत्र सादु र्लसिह राज्य के उत्तराधिकारी हुए (१६४७ स.)। शादु र्लसिंहजी के नाम पर भी 'श्री सादूल प्राच्य ग्र थ माला' की स्थापना की गई जिसका लक्ष्य राजस्थान के प्राचीन हस्तलिखित ग्र थो को प्रकाशित करना है। 'गीत–मजरी' रचना इसी ग्रन्थमाला का प्रथम समर्पण पुष्प है।

सक्षेप मे बीकानेर का राजघराना हस्तलिखित पुस्तको के सग्रह, प्रशसात्मक काव्यो की रचना एव आश्रित कवियो और साहित्यिको के सम्मान के लिए अपना एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राजस्थान के इतिहास के लिए भाषा मे जो सामग्री बीकानेर के चारणो और अन्य आश्रित कवियो ने प्रस्तुत की है वह अमूल्य तथा चिरस्मरणीय है।

●

: ५ :

किशनगढ़ का राजघराना

जोधपुर के राजघराने के सम्बन्ध मे महाराजा उदयसिंह का नाम आ चुका है। इन उदयसिंह के दो पुत्र थे—सूरतसिंह और किशनसिंह। अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त महाराजा सूरतसिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठे और उस समय किशनसिंह शहज़ादा सलीम के पास रहे। अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहाँगीर ने दिल्लीपति का आसन ग्रहण करते ही किशनसिंह को जोगीतालाब के पास का सेढोलाव जागीर मे दे दिया और उनका मनसब बढा दिया। उन्ही किशनसिंह (कृष्णसिंह) ने सेढोलाव के एवज अपने नाम पर स० १६०९ ई. मे (स० १६६६) कृष्णगढ बसाया। मेवाड के विरुद्ध कृष्णसिंह ने दिल्लीपति का साथ देकर बडी वीरता दिखाई और ऊँचे-ऊँचे पद एव सम्मान प्राप्त किए। सन् १६१५ मे कृष्णसिंहजी का देहावसान हुआ।

महाराज कृष्णसिंह वैष्णव भक्त थे। छप्पनभोग चँद्रिका के लेखक कृष्णगढ के श्री जयकवि ने महाराज की भक्ति का उल्लेख करते हुए लिखा है कि श्री नृत्यगोपाल के दो स्वरूप थे। छोटा श्याम स्वरूप और बडा बलराम स्वरूप। महाराज ने दोनो स्वरूपो को अपने सिर पर पधराया था।[1]

श्री मन्नृत्य गोपाल के, है स्वरूप अभिराम।
छोटे श्याम सुजान हैं, बड़े रुचिर बलराम ॥२॥

यह स्वरूप दोऊ सुखद, कृष्णसिंह महाराज।
पधराये निज सीस पै, कर सेवा सब साज ॥३॥

अतएव श्री नृत्यगोपाल कृष्णगढ के राजघराने के इष्ट देवता हुए और उन्ही की सेवा की परम्परा चलती रही।

---

१. नागर समुच्चय–छप्पन भोग–चन्द्रिका

महाराजा कृष्णसिह के चार पुत्र थे-सहसमल, जगमल, भारमल और हरिसिह । अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त सहसमल राज्य के अधिकारी हुए परतु सन् १६२८ मे उनका शरीरान्त हुआ और उनके पश्चात् उनके छोटे भाई जगमल गद्दी पर बैठे । जगमल वड़े वीर और साहसी थे । जगमल और भारमल मे परस्पर बडा स्नेह था । अन्त मे दोनो भाई एक राजपूत की सहायता मे काम आए । इस पर शाहजहाँ ने चौथे पुत्र हरिसिह को सन् १६२८ मे कृष्णगढ का स्वामी नियुक्त किया । सन् १६४३ ई. मे हरिसिह का भी शरीरान्त हो गया । तब शाहजहाँ ने भारमल के पुत्र रूपसिंह को हरिसिंह के स्थान पर सन् १६४३ ई. मे कृष्णगढ का अधिपति बनाया ।

महाराज रूपसिह (सन् १६४३–५८ ई) का राज्यकाल अपने पूर्वजो की अपेक्षा अधिक महत्वशाली था । हिन्दी के प्रसिद्ध कवि वृन्द ने 'रूपसिह वार्ता' मे महाराज के जीवन की अनेक घटनाओ का कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन अवश्य किया है परन्तु फिर भी अन्य महाराजो की अपेक्षा रूपसिह के जीवन पर उक्त वार्ता से पर्याप्त प्रकाश पडता है । दिल्ली के सिहासन पर बैठने के लिए शाहजहाँ के पुत्रो का परस्पर लडाई मे भाग लेना तथा दिल्लीपति की आज्ञा से बलख और कधार जाना उनके जीवन की दो मुख्य घटनाएँ है । इस युद्ध मे रूपसिहजी दारा शिकोह की ओर थे जो औरगज़ेब से लड़ते लडते मारे गये ।

महाराज रूपसिह बडे वीर और परम वैष्णव–भक्त–कवि थे । महाराज रूपसिह गोपीनाथजी दीक्षित के शिष्य थे । गोपीनाथजी महाप्रभु वल्लभाचार्य के प्रपौत्र थे[1] । गोपीनाथजी ने सन् १६४७ मे महाराजा को उपदेश दिया था ।

प्रसिद्ध है कि एक दिन रूपसिहजी ने स्वप्न देखा जिसमे स्वय श्रीनाथजी ने अपने स्वरूप को घर मे प्रतिष्ठित करने की उनको आज्ञा दी । इस पर रूपसिहजी ने हाथ जोडकर गोपीनाथजी की प्रार्थना की । गोपीनाथजी ने कहा कि गोसाई विठ्ठलनाथजी के सातो पुत्र सभी सुखसार है तुम उन्हे जाकर देखलो । रूपसिह ने श्रीनाथजी का एक स्वरूप देखा तो प्रेमविभोर होगए और जिस रूप के दर्शन उन्हे स्वप्न मे हुए थे वही रूप अपने सिर पर पधराने के लिए उन्होंने कहा । गोपीनाथजी ने वही रूप महाराज के सिर पर पधराया एव सेवा की रीति के लिए दामोदर भट्ट को उनके साथ कर दिया । माडलगढ मे सन् १६५४ ई को माघ महीने मे मन्दिर

---

१. विठ्ठलनाथजी के सबसे छोटे पुत्र

स्थापित कराया गया। उसी मे मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई और दामोदर भट्ट को भटखेडी गाव भेट दिया गया। महाराज के इष्ट के इस स्वरूप का नाम 'श्री कल्याण राय' था। श्री नृत्यगोपाल का स्वरूप तो पहले से ही सेव्य था। अब प्रश्न यह उठा कि दोनो स्वरूपो का समन्वय कैसे हो ? इस समस्या को श्री गोपीनाथजी ने इस प्रकार सुलझा दिया कि श्री नृत्यगोपाल के स्वरूप को श्री कल्याणरायजी की गोद मे पधरा दिया जिससे श्री नृत्यगोपाल 'गोद के ठाकुर' कहलाये और परिणामस्वरूप यह मूर्ति महाराज के साथ जहा वह जाते साथ जाती थी। श्री कल्याणराय का स्वरूप अपने स्थान पर रहता था। जब महाराज विदेश से लौटते तो श्री नृत्यगोपालजी पुन: श्रीजी की गोद मे विराज जाते।

रूपसिंहजी जब बलख गए थे तो अपने साथ 'गोद के ठाकुर' को ले गए थे परन्तु वे बहुत दिनो तक श्रीजी का वियोग सहन न कर सके। इधर दिल्लीपति ने उन्हे बुलाया नही। तब वियोग से अति दुखी हो महाराज ने एक पत्रिका श्री जी के चरणो मे भेजी।

पत्रिका इस प्रकार थी—

प्रभुजी इहा रहे कछु नाहीं।
करिये गवन भवन दिशि अपने, सुनिये अरज गोसाईं।
देखी बलख उरफ छू देखी, अधम असुद अवलोके।
मध्य प्रदेश वेशहू मध्यम, इहां कहा ले रोके ?
भक्त बछल करुणामय सुख निधि, कृपा करो गिरधारी।
रूपसिंह प्रभु बिरद लाजत है, ब्रज लै बसो बिहारी।।

कहा जाता है कि जब पुजारी ने यह पत्रिका श्रीजी के चरणो मे रखी उसके पश्चात् ही अकस्मात् दिल्लीपति ने महाराज को वापिस आने का सदेश भेजा। विदेशो मे जय पताका फहराने के उपरान्त जब रूपसिंहजी दिल्ली आए तो उनका बडा सम्मान हुआ और दिल्लीपति ने उनसे मन चाहा वर मागने को कहा। इस पर महाराज ने दिल्लीपति से महाप्रभु का वह चित्र मागा जो सिकन्दर लोदी ने किसी 'होनहार' चित्रकार से उसे उनके सामने बैठकर बनवाया था[1]। इस चित्र के पाने की अभिलाषा महाराज के मन मे बहुत दिनो से थी जो अन्त मे पूरी हुई। पता नही

---

१. छप्पन भोग चन्द्रिका; महाप्रभु के चित्र की वार्ता।

अब वह चित्र किशनगढ मे कहा रखा है ? रूपसिहजी के पास एक मूर्ति श्री शालिग्राम की और थी। यह स्वरूप श्री नृत्यगोपालजी की गोद मे रहता था। अतएव सेवा के दृष्टिकोण से इनके पाच स्वरूप थे—

१. श्रीजी का स्वरूप।

२ श्री नृत्यगोपाल का एक स्वरूप।

४ श्री नृत्यगोपाल का दूसरा स्वरूप।

४. श्री महाप्रभु का चित्र।

५ श्री शालिग्राम का स्वरूप।

मुख्य स्वरूप श्रीजी का कल्याणराय के रूप मे, नृत्यगोपाल के दोनो स्वरूप श्रीजी की गोद मे, और श्री शालिग्रामजी श्री नृत्यगोपालजी की गोद मे, इस प्रकार इन स्वरूपो का समन्वय अन्यन्त सु दर था। केवल महाप्रभुजी का चित्र स्वतन्त्र अस्तित्व रखता था।

महाराज रूपसिह स्वय कवि थे। उनके फुटकर पदो के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते है।

बन से कृष्ण के आने का रूप और उनके रूप का प्रभाव :—

—१—

बनतैं बानिक बनि ब्रज आवत।
बेनु बजाय रिझाय जुबतिगन गोरी रागनि गावत॥
वारिज वदन लाल गिरधर को निरखि सखी सचु पावत।
रूप कटाछि करत प्यारी पर रूपसिह अलि भावत॥

—२—

अनियारे लोचन मोहन।
माधुरी मूरति देखत ही लालच लागी रह्यो मनमोहन।
हटकत मात तात यो भाखत लाज न आवत तोहन।
हौं अपने गोपाल रँग राती काहि दिवावत सोहन॥
संध्या समय खटिक तें निकसी लिए दूध को दोहन।
रूपसिह प्रभु नगधर नागर बस कीनें है मोहन॥

-३-

कैसे आऊँ दामिनि मोहि डरावत ।
जब जब गवन करौं दिसि प्रीतम चमकनि चक्र चलावत ।।
वे चातुर आतुर अति सजनी रजनी को बिरमावत ।
गाजत गगन पवन चलि चंचल अंचल रहन न पावत ।।
सुनि प्रिय वचन चतुर चलि आये भामिनि सो भामावत ।
रूपसिंह प्रभु नगधर नागर मिलि मलार सुर गावत ।।

अपने इष्ट की लीलाओ और उनके प्रति अनन्य भक्ति के प्रमाणस्वरूप ये पद ही पर्याप्त है।

महाराजा रूपसिंह से पश्चात् उनके पुत्र मानसिंह गद्दी के स्वामी हुए। राज्याभिषेक के समय यह केवल ३ वर्ष के थे। सन् १७०६ ई मे इनका भी शरीरात हो गया। इनके राज्यकाल मे कोई विशेष बात नहीं हुई। कहा जाता है कि यह स्वय पद लिखते थे परन्तु इनका कोई पद उपलब्ध नहीं होता।

महाराज मानसिंह के पश्चात् उनके पुत्र राजसिंह कृष्णगढ के राजा हुए। मुगल राज्य के लिए होने वाले गृह-युद्धो मे इन्हे भी भाग लेना पडा। रूपनगर मे ही सन् १७४८ ई को इनकी मृत्यु हुई। अपने पूर्वजो की तरह राजसिंह भी बडे भगवद्-भक्त थे। गोस्वामी रणछोड जी इनके गुरू थे। उन्होने ही इन्हे गुरु मन्त्र और उपदेश दिया। मुक्ताओ और हीरो के आभूषण वनवाकर इन्होंने श्री कल्याण राय की सेवा की।

महाराज राजसिंह स्वय कवि थे। वृन्द कवि इनके काव्य गुरू थे। राजसिंह जी के बनाए दो ग्र थ प्रसिद्ध है। 'बाहु-विलास' मे रुकमणि के विवाह का चित्र वीर और शृ गार रस मे वर्णित है। कृष्ण द्वारा जरासन्घ को मारने का भी वृतान्त इसमे आया है। दूसरे ग्रन्थ का नाम 'रसपाय नायक' है, अविवेकन और विवेकन नामक दो सखियो के सवाद द्वारा नायको के गुण अवगुण इसमे बतलाये गये है। इन्होने कुछ फुटकर पद भी बनाए थे परन्तु इनकी वाणी अभी तक प्रकाश में नहीं आई। प्राय. एक ही पद सबही ने अपने अपने उदाहरणो मे दिया है।

ए अखिया प्यारे जुलम करें।
यह महोटी लाज लपेटी झुक झुक घूमें झूम परें ।।

नगधर प्यारे होउहुन न्यारे हाहा तोसों कोटि ररें।
राजसिह को स्वामी श्री नगधर बिन देखे दिन कठिन भरें ।।

मेनारियाजी ने 'राज प्रकाश' पुस्तक का रचयिता भी इन्हे ही माना है।

महाराज राजसिह की मृत्यु के उपरान्त उनके तीसरे पुत्र सॉवतसिंह कृष्णगढ की गद्दी के अधिकारी हुए। सॉवतसिह के दो बडे भाइयो का महाराज राजसिहजी के सामने ही देहावसान हो गया था।

महाराज साँवतसिह उपनाम 'नागरीदास'

व्यक्तित्व:

'नागरीदास' कृष्णगढ के महाराजा सावतसिह का उपनाम था। नागरीदास के नाम से कई कवियो का उल्लेख हिन्दी–साहित्य मे प्राप्त होता है। यह नागरीदास भी कृष्णभक्त कवि थे। अतएव कभी कभी यह प्रश्न उपस्थित होजाता है कि साँवतसिंह उपनाम 'नागरीदास' की रचनाएँ अन्य नागरीदास की रचनाओ से किस प्रकार पृथक की जा सकती हैं। इसी प्रसग मे यह प्रश्न आता है कि प्रसिद्ध नागरीदासो मे कृष्णगढ के महाराजा नागरीदास का क्या स्थान है ?

बाबू राधाकृष्णदास ने नागरीदास नाम के चार महात्माओ का उल्लेख किया है[1] और श्री वियोगी हरि ने पाच का[2]। राधाकृष्णजी के अनुसार चार नागरीदास इस प्रकार है :—

१. नागरीदास प्रथम श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु के शिष्य थे जो आगरे मे रहते थे। इनकी कथा चौरासी वैष्णवों की वार्ता मे है और इनके विषय मे गोस्वामी श्री हितहरिवशजी के शिष्य श्री ध्रुवदासजी ने अपने ग्रथ 'भक्तनामावली' मे लिखा है :—

नेह नागरीदास अति जानत नीको रीती।
दिन दुलराइ लाड़िली लाल रगीली प्रीति ।।६२।।
व्यास नंद पद सौं अधिक जाकें दृढ़ विश्वास।
जिहि प्रताप यह रस लह्यो अरु वृन्दावनवास ।।६३।।

---

१. राधाकृष्णदास ग्र थावली, प्रथम खड–सपादक: श्यामसुन्दरदास, पृष्ठ १६६
२. ब्रज माधुरी सार–संस्करण ५, संपादक, वियोगी हरि, पृष्ठ १८५; ८३–८५.

भली भाँति सेयो विपिन तजि वँधुनि सो हेत।
सूर भजन मे एक रस छाड्यो नाहीं खेत ॥६४॥

२ दूसरे नागरीदासजी श्री स्वामी हरिदास जी की शिष्य परम्परा मे हुए हैं। इनका समय स० १५७७ के लगभग ज्ञात होता हे। इनके विषय मे ध्रुवदासजी लिखते हैं .—

नागर अरु हरिदास मिली सेये नित हरिदास।
वृन्दावन पायो दुहनि पूजी मन की आस ॥७०॥

नवल कला की सखिन के मन ही अति अनुराग।
लाल लड़ैतो कुँवरि को गायो राग सुहाग ॥७१॥

भक्तमाल में नाभादासजी ने इन्ही नागरीदास का उल्लेख किया है—

श्री नागरीदास भीज्यो हियो कुँज विहारी सर गभीर।
अनन्य नृपति श्री हरिदास कुल भयो धुरन्धर धर्मवीर ॥

३. तीसरे नागरीदास श्री गोस्वामी हितहरिवश वा श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय मे हुए। इनका काल भी स० १५५०–१६०० के लगभग समझना चाहिए। इनके विषय मे ध्रुवदासजी लिखते हैं .—

कहा कहौं मृदु भाव अति सरस नागरीदास।
बिहारी बिहारी को सुजस गायो हरषि उलास ॥८०॥

४ चौथे नागरीदास महाराज सॉवतसिह कृष्णगढ (राजपूताना) नरेश उपनाम श्री नागरीदासजी हैं। यह महाप्रभु वल्लभाचार्य सप्रदाय के शिष्य थे। स० १८२१ की भादो सुदि तीज को यह वृन्दावन मे परलोक निवासी हुए।

वियोगी हरि ने 'व्रजमाधुरीसार' मे चार के स्थान पर पाँच नागरीदास माने हैं। सभवत इसका कारण यह है कि उन्होंने बाबूजी के तीसरे नागरीदास को हितहरिवश की शिष्य परम्परा मे मान कर एक अन्य चौथे नागरीदास को श्री कृष्ण चैतन्य का शिष्य स्वीकार किया है। उद्धरण का 'वा' केवल इसका द्योतक है कि नागरीदासजी दोनो मे से एक के शिष्य थे अतएव सख्या मे एक की वृद्धि हो गई। वृद्धि का क्रम धीरे-धीरे बढता ही गया। शिवसिह ने अपने 'सरोज' मे केवल एक

नागरीदास का वर्णन किया है।[१] मिश्रबन्धुओ ने अपने 'विनोद' मे तीन नागरीदासो का वर्णन किया है।[२] ग्रियर्सन ने केवल एक नागर कवि का उल्लेख किया है और इस कवि का जन्म १५९१ ई० माना है।[3] भास्कर रामचन्द्र भालेराव ने 'इश्क चमन दोहे' नामक एक छोटे से ग्र थ के लेखक का उल्लेख किया है।[४]

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहासकारो एव अन्वेषको ने नागरीदासो की सख्या मे सदा वृद्धि ही की है। हमारा प्रश्न यह है कि कृष्णगढ के महाराजा सॉवतसिह उपनाम 'नागरीदास' तथा अन्य नागरीदासो मे भेद क्या है? इतिहास से यह स्पष्ट है कि कृष्णगढ नरेश का जन्म स० १७५६ मे हुआ था और ध्रुवदासजी ने अपनी 'भक्त–नामावली' मे स० १७३५ तक के भक्तो का वर्णन किया है।[५] अतएव भक्तनामावली मे उल्लिखित किसी भी नागरीदास को कृष्णगढ नरेश नही माना जा सकता।

मित्र :—

प्राय: सभी ने हिन्दी के प्रसिद्ध कवि घनानद को नागरीदासजी का मित्र माना है। यह कहा जाता है कि घनानन्द की मृत्यु मथुरा के कत्लेआम मे यवनो के द्वारा हुई थी और वह मौहम्मद शाह (सन् १७२०–१७४०) के मीर मुशी थे। डा० फैयाज अली ने अपने अप्रकाशित प्रबन्ध मे घनानन्द को नागरीदासजी का मित्र माना है।[६] प्रसिद्ध इतिहास लेखक फ्रेज़र (Frager) ने अपनी पुस्तक मे नादिरशाह के कत्लेआम का प्रतिदिन का विवरण प्रस्तुत किया है[७]। इस विवरण मे मौहम्मदशाह के अनेक उमरावो के नाम और पदाधिकारियो के नाम आये है जिनसे बलपूर्वक पैसा वसूल किया गया अथवा जिन्हे अनेक प्रकार के शारीरिक कष्ट दिये

---

१. शिवसिंह सरोज, स० १९२६ का सस्करण, पृष्ठ १६८, ४३९

२ मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, सं० १९८३ संस्करण तथा मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, स० १९८४, पृष्ठ ५८५, ७२८, ९१२।

3. The Modern Vernacular literature of Hindustan, P 33

४. साहित्य समालोचक, भाग ३, संख्या १, पृष्ठ ५७

५. ब्रजमाधुरीसार–५ संस्करण, पृष्ठ १६२

६ पृष्ठ १२५

7. A Short History of the Hindustan Emperors of the Mughal raids begining with Tamur PP 98–116

गये। आश्चर्य की बात है कि मौहम्मदशाह के मीर मु शी को ऐसे अवसर पर कैसे भुला दिया गया? इरविन ने भी अपनी पुस्तक Latter mughals Vol. 2 (1719–1739) मे किसी स्थान पर मौहम्मदशाह के मीर मु शी घनानन्द का उल्लेख नही किया है। नागरीदासजी का रचनाकाल सन् १७२३–१७६२ प्रतीत होता है। यदि घनानन्द उनके मित्र थे तो घनानन्द का काल इसी समय मे पडता। किसी प्रकार के उल्लेख के अभाव मे यही परिणाम निकाला जा सकता है कि या तो घनानन्द उनके मित्र नही थे और यदि घनानन्द नाम के उनके कोई मित्र थे तो वे मौहम्मदशाह के मीरमु शी नही थे।

रचनाएँ —

नागरीदासजी की समस्त रचनाओ का सग्रह 'नागर–समुच्चय' है। इसमे निम्नलिखित वर्गो के अतर्गत रचनाओ को सकलित किया गया है। १ वैराग्य सागर २ शृ गार सागर। ३ पद सागर। इसमे 'वैराग्य सागर' के अन्तर्गत आने वाली रचनाएँ १५ हैं। इनमे से १० के रचनाकाल तो दिये गये है शेष पाँच के नही। अतएव पहले रचनाकाल दिये जाने वाली रचनाओ का उल्लेख किया जाता है।

१ **मनोरथ मजरी:**—(रचना काल सन् १७२३ ई)

संवत् सतरा सै असी, चौदसि मंगलवार।
प्रगट मनोरथ मंजरी, वदि आसू अवतार ॥४५।

इस ग्र थ मे ४६ दोहे है जिनमे लेखक ने अपने हृदय की आकाक्षा को लिपिवद्ध किया है। ये दोहे लेखक की भावधारा के ज्ञान मे सहायक है।

२ **रसिक रत्नावली :**—(रचना काल सन् १७२५ ई)

सतरे सै वइयासिये, भादो सुदि भृगुवार।
तिथि परिवा कीनी इहैं, लीज्यो सत सुधार ॥२०॥

इसका विपय सत्सग महिमा है। लेखक के पर्यटन सम्बन्धी कुछ विचार भी इसमे प्रस्तुत है।

६ **कलि वैराग्यवल्ली :**—(रचना काल सन् १७३८ ई)

सतरा सै पच्चाणवें, संवत सावण मास।
कलि बल्ली वैराग की, करी नागरीदास ॥१२३॥

इस रचना मे भक्ति सम्बन्धी विचार और भागवत तथा वल्लभ सम्बन्धी सकेत उपयोगी है। आरभ मे गुरु–चरण–वदना है। वल्लभजी और उनके पुत्रो के प्रति तथा गोविन्ददास, कुम्भनदास के प्रति आत्म–दर्शन है। इसके पश्चात् कलिदशा वर्णन के अन्तर्गत वर्णदशा एव आश्रमदशा वर्णन भी है। भागवत के अनुवाद का सकेत और वृन्दावन का वर्णन भी इसके अन्त मे दिया गया है।

४. भक्तिसार ग्रंथ:—(रचना काल सन् १७४२ ई)

सतरा सै निनांनबे, द्वैज द्यौस गुरुवार।

लेखक भक्ति को ही सबका सार मानता है। हरि विमुख होकर सप्त द्वीपो का राज्य भी निरर्थक है। तप, अष्टसिद्धि योग, निर्गुन उपासना, ज्ञान आदि सभी व्यर्थ है। लेखक का कथन है कि जो हरिभक्त है उन्हे सब कुछ प्राप्त है। भक्ति मे रामकृष्ण सब बराबर हैं। ऐसा लगता है अपने मन को समझाने के लिए इस ग्रन्थ की रचना हुई है।

५. श्री मद्भागवत–पारायन विधि प्रकाश —सन् १७४२ ई मे यह ग्रथ रचा गया जैसा कि इस दोहे से स्पष्ट है।

सतरे सै निनांनवा, सवत सावन मास।
पारायन जु प्रकाश विधि, कियो नागरीदास ॥६॥

इसमे निम्न विषयो पर लेखक ने प्रकाश डाला है :—

१ सुन्दर स्थल बनाकर भगवत भजन के जो पात्र हो, उनको निमत्रित करना।

२ शुभ दिन देखकर आरम्भ समय मुख्य श्रोता द्वारा आरती–कथन।

३ फिर गवैया पद गावे और सब सुनें।

४. कृष्ण–लीला और भागवत सुनने की लालसा श्रोताओ मे हो।

५ लालसा सम्बन्धी कुछ अन्य कवियो के पद भी इसमे है।

६ हरिकथा भागवतानुसार होनी चाहिए।

७. नागरीदास और अन्य कवियो का वर्णन भी है।

८ शुक महिमा वर्णन

९. भागवत महिमा वर्णन और अपने-अपने स्थान को प्रस्थान।

६ **भक्तिमगदीपिका** —(ग्र थ रचना काल सन् १७४५ ई)

संवत अष्टदस सतजु द्वै, ववार तीज गुरुवार ।
रूप नगर विच कृष्ण पक्ष, भयो ग्रंथ विस्तार ।।७७।।

यह रचना तीन प्रकरणो मे विभक्त है। प्रत्येक मे अपने अपने विषय का प्रतिपादन और विस्तार इस प्रकार है —

प्रथम प्रकरण मे गुरु शरण लेना और नवधा भक्ति करना बताया गया है। द्वितीय प्रकरण में सत्सग करना, अष्टसिद्धि–धारक सिद्धि अ ग महापुरुष साधु अग आदि विषयो का उल्लेख है। तृतीय प्रकरण प्रेम-निरुपण का है जिसमे प्रेम के दो प्रकार है (१ आर्ष, २ पौरुषेय) भाव भक्ति लक्षण, प्रेमलक्षण आदि भी बताए गए हैं।

७ **पद प्रबोध माला** :—(रचना काल सन् १७४८ ई)

अष्टादस सत पच है, बरष पोष सुदि मास ।
पद प्रबोध माला कियो, ग्र थ नागरीदास ।।३६।।

उपरोक्त दोहे मे ग्र थ का रचनाकाल दिया गया है। इसमे वर्णित विषय इस प्रकार है —

१ सर्व प्रथम मगलाचरण मे अपने से पूर्व भक्तो की स्तुति की गई है।
२ बाल, तरुण और वृद्धावस्था मे हरि-ध्यान न करने पर मन का क्षोभ बताया गया है।
३ मरणगति देखकर मोह की वस्तुओ के प्रति उसकी निस्सारता-प्रदर्शन है।
४ बाल, तरुण, वृद्ध तीनो अवस्थाओ में सत्सग के बिना मुक्ति की आशा व्यर्थ है।
५ सत्सग की महिमा और कलियुग मे मानव का उद्धार इसी मे है, यह बताया गया है।
६ कुसग का परिणाम, यमुना जी का महात्मय।
७ कृष्णलीला के गुण बखान करने से सुख की प्राप्ति।
८ बाल-लीला वर्णन।

इस प्रकार इस ग्र थ मे भक्तो की नामावली से लेखक की, उनके प्रति आस्था प्रतीत होती है और सभी भक्त कवियो की भाति मन को प्रबोध देने वाले पदो मे वैराग्य की भावना पाई जाती है। इसके अतिरिक्त कृष्ण-लीला मे बाल भावना प्रमुख है जिससे वल्लभीय होने का प्रमाण मिलता है और ग्र थ निर्माण से कवि का पर्यटन–प्रेम का भी पता चलता है।

८ **श्री राम–चरित्र–माला** —(रचनाकाल सन् १७४६ ई)

संवत अष्टदस सतजु षट, हिडनि सलिला तीर।
नागर पद चुनि चुनि कियो, ग्रंथ चरित रघुवीर॥

इस ग्र थ का विषय रामचरित्र-कथा और उनकी भक्ति–प्रशसा है। रामचरित्रमाला मे नागरीदास रचित केवल ६ पद है, शेष अन्य कवियो के है जिनमे सूर और तुलसी के अधिक है–ग्र थ के प्रारम्भ मे कवि ने कहा है—

'रामचरित्र माला रचूँ, चुनि चुनि पद प्राचीन।'

९. **जुगल भक्ति विनोद :**—(रचनाकाल सन् १७५१ ई)

अष्टदस सत अष्ट पुनि, संवत माघ सुमास।
जुगल भक्त गुन ग्रंथ यह, कियो नागरीदास॥७॥

यह एक छोटी सी रचना है जिसमे दो दोहे एक चौपाई और फिर तीन दोहे है। इस ग्र थ से उनका पर्यटन–प्रेम प्रकट होता है। ग्र थ का विषय भक्तो की कथा का वर्णन है जिसमे लेखक भी भक्ति मे लीन प्रतीत होता है।

१०. **तीरथानंद** —(रचनाकाल सन् १७५३ ई)

माघ अष्टदस सत जु दसविच वृन्द्रावन वास।
ग्र थ तीरथानद यह, कियो नागरीदास॥५८॥

इस ग्र थ मे नागरीदासजी की यात्राओ और राधा-कृष्ण से सम्बन्धित विभिन्न स्थानो की महत्ता एव वहा होने वाले उत्सवो का वर्णन बडे भक्तिभाव से किया गया है तथा निम्नाकित विषयो पर भी प्रकाश डाला गया है।

१ मूर्ख हरिविमुख लोगो को देखकर दुख और व्रजवासियो को देखकर लेखक को सुख प्राप्त होता है।

२ व्रज वर्णन, गोवर्धन वर्णन, वृन्दावन–कपिलाश्रम – आगमन आदि वर्णन है।

३ वृन्दावन से सोरो तीर्थ गये और वहा गगा की स्तुति की।

४ सोरो से कपिलाश्रम मे आए।

५ वहा से फिर वृन्द्रावन आये, बीच मे यमुना पडी, नाव न मिली तो यमुना तैर कर पार की।

६ वहा से वे इन्द्रप्रस्थ गये, दिल्ली गये और दिल्ली से बरसाने गये। बरसाने मे जाकर राजस प्रवृत्ति समाप्त हो गई।

७ बरसाने मे आसाढ–सावन मे उत्सव देखे – सावन ५ सुदि को बलदेव जन्मोत्सव और फिर सलूनो के उत्सव देखे। भादो मे कृष्णजन्मोत्सव, दधि काँदो (भादो नवमी)–ये उत्सव नदगाव मे देखे।

८ राधा–जन्म–उत्सव (भादो की अष्टमी)

९ वृन्द्रावन मे रास देखा।

१० कार्तिकमास मे राधाकुण्ड–स्नान यात्रा की।

११ गोवर्धन मे आकर दीवाली की, फिर अन्नकूट किया।

१२ गोपाष्टमी समाप्त कर सब अपने अपने धाम को गये।

१३ होली खेलने नदगाम गये, यशोदा कुँड पर बरसाने वालो से भेंट हुई।

ये १० रचनाएँ वे है जिनका रचनाकाल दिया हुआ है। शेष ५ रचनाये बिना रचनाकाल की है जो इस प्रकार हैं —

११. देहदसा —विषय मानव की आत्म–कहानी जैसा है, जिसमे जीवन का उद्गम विकास और गर्भावस्था मे उसकी मनोदशा का चित्र है तथा हरिभक्ति की ओर प्रेरित करने का उद्बोधन है।

१२. वैराग्यवटी —इसमे, निर्वेद–भावना प्रधान विचारो की अभिव्यजना विषय पर प्रकाश डाला गया है।

१३. अरिल्ल पच्चीसी —यह रचना अरिल्ल छद मे है। कलिकाल मे भक्तिद्वारा सुख की प्राप्ति हो सकती है। यही इसमे बताया गया है।

इसमे कृष्ण की विभिन्न लीलाओ का स्मरण करते रहने की प्रेरणा भी दी गई है ।

१४. **छूटक पद** :—कृष्ण–भक्ति सम्बन्धी विभिन्न पद इस रचना मे दिये गये है ।

१५. **छूटक दोहा** —इसका विषय भक्ति है एव छूटक दोहो मे नीति-विषयक उद्‌गार है । इसमे कलियुग की बुराई की गयी है । ब्रज, बरसाना और वृन्दावन का भक्तिपूर्ण वर्णन है तथा ब्रजवासियो के भाग्य पर ईर्षा और कृष्ण की भक्ति का वर्णन है । इसके अतिरिक्त भगवत जप न करने वालो को भर्त्यस्ना और भक्तो पर सतोष प्रगट किया गया है ।

वृन्दावन की ओर कवि का विशेप आकर्षण है । इस ग्रथ मे 'ठाकुर नागरीदास' की छाप भी पाई जाती है ।

नागर समुच्चय का दूसरा ग्रथ 'श्रृ गार सागर' है जिसमे अनेक छोटी–मोटी रचनाएँ लाल और लाडिली के लीलाभावो को लिए हुए रची गई है । इनमे से पाच अष्टक है–'भोजानन्द' 'दोहनानद' 'लग्नाष्टक' 'अरिलाष्टक' और 'फाग गोकुलाष्टक' । इनका विषय क्रमश श्यामा–श्याम का साथ साथ भोजन करना और इस भोजन लीला मे परस्पर सात्विक भाव का उद्वेग, सायकाल के समय खरिक मे राधा–कृष्ण का मिलन, गाय दुहने की क्रिया छोडकर परस्पर आकर्षण का दृश्य, ठगोरी लगने पर मनमोहन का राधा के पीछे-पीछे फिरना, परस्पर की लगन का वर्णन, अरिल्लछन्द मे कृष्ण की अनुपस्थिति के कारण, राधा का वियोग वर्णन, फाग और गोकुल मे उसके खेलने के प्रभाव का वर्णन आदि विषय है । इनके अतिरिक्त 'प्रात रसमजरी' और 'भोरलीला' मे कु ज मे राधाश्याम की बिहारलीला, प्रात कालीन प्रेमलीला और सखियो द्वारा श्रृ गार, आदि का वर्णन है । 'जुगल रस माधुरी' मे सखियो सहित श्याम-श्यामा का विहार वर्णन नृत्य आदि के साथ दिखाया गया है । 'रास' अनुक्रम के दोहो तथा कवित्तो मे रास रचने के पहले प्रयत्न, और 'रास नृत्यो के कवित्तो मे', नृत्य की मुद्राओ का सुन्दर चित्र वर्णन है । सम्भवत. 'रास रसलता' की यह भूमिका है । शरद की रातो मे रास का आरम्भ, उनका आनन्द, मन्मथ के मन तक को भी मथन करने की उसकी शक्ति आदि विषय 'रास रसलता' के भावपूर्ण अग है । 'गोवर्धन धारण की लीला का वर्णन' गोवर्धन धारण के कवित्तो मे नागरीदास ने वर्णित किया है । इस प्रसग मे श्याम की शोभा और गोवर्धन धारण के महत्व पर प्रकाश डाला गया है । कई रचनाओ मे प्रकृति के

सौंदर्य और उसकी आकर्षण शक्ति पर भी नागरीदासजी की दृष्टि गई है।' 'फूल-विलास' मे फूलो के सौन्दर्य का वर्णन और उस पर श्याम और गोरी का मग्न होना एव रस रग विहार स्वाभाविक ही है। 'चादनी के कवित्तो' मे लेखक ने चादनी के सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन और 'दिवारी के कवित्तो' मे दिवाली के अवसर पर दीपक जलाते समय किशोरी का वर्णन किया है। इसी प्रकार 'रैन रूपारम' मे प्रकृति की पृष्ठभूमि मे श्यामश्यामा के आलस भरे नैनो का वर्णन है और उनका परस्पर आकर्षण लेखक के भक्तिभाव को चित्रित करने वाला है। एक प्रसग 'गोवनआगम' मे सायकाल के समय वन से गोकुल लौटने का भी है जिसमे गोप-गोपियो की प्रेम विह्वलता प्रदर्शित की गई है।

ऋतु सबधी रचनाएँ भी इस वर्ग मे आ जाती है। 'वसत वर्णन के कवित्त' 'ग्रीष्म विहार' मे श्याम–श्यामा की जल क्रीडा, 'पावस पच्चीसी' मे वर्षा ऋतु के समय श्याम–श्यामा की मिलन लीला तथा सकेत–स्थानो मे जाकर सुख लीला का अनुभव करना वडी स्वाभाविकता से वर्णित किया गया है। 'हिंडोर के कवित्त', वर्षा के कवित्त', ऋतु वर्णन की पृष्ठभूमि के रूप मे ही स्वीकार किये जाने चाहिए। इसी प्रकार 'फाग विहार' ग्र थ मे फाग का आगमन और तत्सम्वन्धी लीलाओ का वर्णन है। 'फाग विलास' अथवा 'फाग विहार', 'फाग खेलन समय अनुक्रम के दोहे' और 'होरी के कवित्त' इसी प्रसग के अन्तर्गत हैं। 'सीतसार' मे शीतकाल के समय श्यामा-श्याम की स्थिति का वर्णन है। 'गोपी बेन विलास' मुरली विषयक गोपिकाओ की उक्तियो से भरा हुआ है। आरम्भ मे प्रकृति का सुन्दर वर्णन है। इन रचनाओ के अतिरिक्त 'छूटक कवित्त' और 'रीति के कवित्त' भी शृ गार–सागर मे सम्मिलित हैं। इनके विषय विभिन्न हैं। एक अन्य रचना 'इश्क–चमन' के नाम से इस सग्रह मे सम्मिलित है। ये फुटकर दोहे हे जो प्रेम के सम्बन्ध मे लिखे गये है। सभव है इसकी प्रेरणा लेखक को रसखान की 'प्रेम–वाटिका' से मिली हो जैसा कि डा० फैय्याज़ अली ने सकेत किया है परन्तु दोनो का वर्ण्य विषय एक होते हुए भी इश्क–चमन प्रेमवाटिका का रूपान्तर नही माना जा सकता। दोनो के वर्णन मे विभिन्नता ही है समानता नही।

सक्षेप मे 'शृ गार सागर' कृष्ण और राधा सम्बन्धी विभिन्न लीलाओ का एक सग्रह ग्रथ है। इसके छदो मे अधिकाश दोहे हैं, कुछ कवित्त हैं और थोडे से सवैये हैं। नागरीदासजी के प्रकृतिप्रेम, इष्टलीला वर्णन और उनकी भक्ति-भावना पर यह सग्रह–ग्र थ विशेष प्रकाश डालता हे।

नागर–समुच्चय का तीसरा ग्र थ 'पद सागर' है। इसके अन्तर्गत उन फुटकर पदो का सग्रह है जो समय समय पर लिखे गए थे। इन पदो मे नागरीदासजी कृत पदो

के अतिरिक्त अन्य कवियो के पदो का भी समावेश है जिनमे 'रसिक बिहारी' प्रमुख है। 'रसिक विहारी' श्री बनीठनी जी का उपनाम है जो नागरीदास जी की पासवान (उप-पत्नि) थी। सभव है ये पद भी नागरीदास जी ने ही बनाए हो परन्तु नाम अपनी उप-पत्नि का दे दिया हो। इस ग्रथ के आरम्भ मे 'वनजन प्रसम' नाम की रचना है। नागरीदासजी किशनगढ छोडकर वृन्दावन मे ही निवास करने लगे थे अतएव वृन्दावन से उनका प्रेम स्वाभाविक था। 'वन' से अभिप्राय 'वृन्दावन' से ही है। 'जन' से सकेत निवासी का है। अतएव समस्त रचना वृन्दावन निवासियो की प्रशसा मे लिखी गयी है। वृन्दावन मे रहने की प्रेरणा उन्हे अपने गुरुजी से मिली थी इसलिए उनका यह कहना स्वाभाविक ही है :—

धन धन श्री गुरुदेव गुसाईं।
वृन्दावन रस मग दरसायो ऊबट बाट छुटाईं॥
भूले है बहुत जन मन के फिरत अंध की नाईं।
नागरीदास बसाये कुंजनि सबै छुड़ाय दाहिनी बाईं॥

इस रचना मे वृन्दावन की महिमा तो है ही परन्तु जैसा नाम से प्रगट है इसमे उसके निवासियो की विशेष प्रशसा है। सभी वृन्दावनवासी धन्य है परन्तु उसके गोसाईं, सन्त, विरक्त, कुजनिवासी, महामहत, पंडित, वक्ता, कविजन, गवइये, द्विजवर, लिखिया, तिलकिया, भाट, महा डुकरिया, वाइ, वजाज, मोदी, चढनिया (हलवाई), कसेरे, पसारी, वैद्य, खोनचेवाले, तम्बोली जिनकी 'वीरी–भोग लगत तहाँ गउर स्याम की जोरी'; मालने, राज (कुँज आदि वनाने वाले), सुनार, तेली, गँधी जिनके तेल से 'सेवा स्यामा-स्याम सेज सुख सदा सुगन्ध सुवासै', दरजी, फल–विक्रेता, पट्ठुए, रगरेज़, ग्वाले, कोली, नाई, वढई, कुम्हार आदि विशेष रूप से धन्य है क्योकि इनके द्वारा प्रदत्त वस्तुएँ भगवान की सेवा के कार्य मे आती है। मनुष्य ही नही वृन्दावन के पशु और पक्षी भी धन्य है। वहाँ की गाएँ, वदर, स्वान, विल्लियाँ, गधे, काग, कोयल, कीर, कपोत सभी के धन्य भाग हैं जिनको भगवान की लीलाभूमि मे उनकी सेवा का सुअवसर मिल जाता है और जो उनको लगाए हुए भोग के अधिकारी वन जाते है। नागरीदासजी ऐसे वृदावन को छोडकर अपनी राजधानी मे रहने पर पश्चाताप करते हैं और फिर वृन्दावन मे आकर निवास करने को अपना परम सौभाग्य मानते हैं।

किते दिन विन वृन्दावन खोये।
योही वृथा गए तै अबलो राजस रंग समोये॥

छाड़ि पुलिनि फूलन की सज्जा सूल सरनि पर सोये।
भीजे रसिक अनन्य न दरसे विमुखनि के मुख जोये ॥
हरि बिहार की ठोर रहे नहिं अति अभाग्य बल बोये।
कलह सराय बसाय मिठारी माया राँड बिगोये ॥
इक रस ह्याँ के सुख तजि के ह्वाँ क्यूँ हँसे क्यूँ रोये।
कियौ न अपनो काज पराए भार सीस पर ढोये ॥
पायो नहिं आनंद लेस पें सबें देस टकटोये।
नागरीदास बसे कुंजनि मे जब सब विधि सुख भोये ॥५७॥

जिस वृन्दावन मे आकर उन्हे आत्मिक आनन्द की प्राप्ति हो, जिसमे रहकर उनके हृदय की भावना घनीभूत हो उठे उसके विषय मे उनके ये पद कितने सार्थक हैं —

हमारी सब ही बात सुधारी।
कृपा करी श्री कुंज विहारनि अरु श्री कुंजबिहारी ॥
राख्यो अपने वृंदावन मे जिहिं ठां रूप उजारी।
नित्त केलि आनंद अखडित रसिक संग सुखकारी ॥
कलह कलेसन व्यापे इहिं ठां ठौर विश्व तें न्यारी।
नागरीदास इहिं जनम जितायो बलिहारी बलिहारी ॥

वृन्दाविपन रसिक रजधानी।
राजा रसिक बिहारी सु दर, सुन्दर रसिक विहारनि रानी ॥
ललितादिक ढिग रसिक सहचरी जुगल रूप मद मानी।
रसिक टहली वृंदादेवी रचना रुचिर निकुंज रवानी ॥
जमुना रसिक रसिक द्रुमबेली रसिक भूमि सुखदानी।
इहाँ रसिक चर घिर नागरिया रसिक ही रसिक सबै गुनगानी ॥६८॥

ऊपर के पद मे नागरीदासजी ने अपने इष्ट रसिकेश के राजसी ठाट वाट और रसिक मडली का एक स्वाभाविक चित्र खीचा है।

राजवराने मे उत्पन्न होने के कारण उनकी यह कल्पना भक्ति के रस मे सरावोर होकर साकार हो उठी है।

'वनजन प्रसस' के पश्चात् उनकी 'पद मुक्तावली' रचना का स्थान आता है। प्रत्येक पद एक-एक राग या रागिनी से सम्बन्धित है। नागरीदासजी सगीत के वडे प्रेमी थे। अपने पदो मे उन्होंने भक्तिभावना को भी सुरक्षित रखा है और साथ ही साथ सगीत की पवित्रता को भी।

ये पद अनेक लीलाओ के सम्वन्ध मे लिखे गये है। शृगारसागर मे जिन लीलाओ का पृथक-पृथक प्रसगो के अन्तर्गत वर्णन हुआ है उन्ही की पुनरावृत्ति इस पद-रचना मे भी आई हे। इष्ट का स्वरूप, उनके मोहित रूप के वशीभूत होकर मन की चचलता, आँखो की चपलता, उनकी वाल क्रीडाएँ, गो-चारण-लीला, गोपियो का परस्पर उपालम्भ अथवा राधा के प्रति व्यग्यवर्पा, दानलीला, रसिक विहारी और रसिक विहारिनीजी की निकुज लीला, वासुरी विषयक पद, आदि प्रसग वडी भावुकता से व्यजित हुए है।

पदसागर का ही एक अश 'उत्सवमाता' है। श्री कृष्णजन्मोत्सव, श्री राधा-जन्मोत्सव, साभी-उत्सव, शरद-उत्सव, रास-उत्सव, निकुजरास-उत्सव, गोवर्धन-उत्सव, दीपमालिका-उत्सव, श्री गोसाई-उत्सव, वसत-उत्सव, होली-उत्सव, रामजन्मोत्सव, महाप्रभु का उत्सव, हिंडोरा-उत्सव आदि उत्सव प्रसगो पर इन पदो मे कवि ने अपनी भावना को प्रदर्शित किया है। पुष्टि-मार्ग सेवा-मार्ग है अतएव इन उत्सवो के मनाने का उसमे विशेप महत्व है और इसी कारण नागरीदास का हृदय इन सभी अवसरो पर अपनी भावना को लेकर पदो के रूप मे व्यजित हुआ है। इस विषय मे निम्न उद्धरण ध्यान मे रखने योग्य है—

नित्य सेवा विधि के अतिरिक्त आचार्यजी ने सेवा मार्ग मे वर्षोत्सव विधि का भी समावेश किया है। श्री कृष्ण के नित्य और अवतार लीलाओ के वर्ष भर के उत्सव तथा पट ऋतुओ के उत्सवो का इसमे प्राधान्य है। इन्ही उत्सवो के साथ यह समग्र-जगत ईश्वर कृत होने से सत्य है। इसी सिद्धान्त के आधार पर लोक त्यौहारो को भी स्थान दिया गया है।'[1]

सक्षेप मे 'पदसागर' शृगार रस की तरह इष्ट की अनेक लीलाओं का रागात्मक एव गीतात्मक दर्शन है।

---

१. सूर-निर्णय; प्रभुदयाल मित्तल, पृ. २२७

नागरीदास की भक्ति–भावना —

नागरीदास की भक्ति का आलम्बन रसेश श्री कृष्ण हैं। वल्लभ सम्प्रदाय मे दीक्षित होने का विवरण इनके पूर्वजो के सम्बन्ध मे ऊपर किया जा चुका है। वैसे तो स्वरूप की दृष्टि से श्रीजी ही नागरीदास के इष्ट है। धीरे धीरे किस प्रकार श्रीजी के स्वरूप मे ही श्री कल्याणरायजी, श्री नृत्यगोपालजी एव श्री शालिग्रामजी के स्वरूपों का पार्थिक्य एव समन्वय रहा इसका उल्लेख भी ऊपर हो चुका है। नागरीदासजी ने अपनी भक्ति–भावना को अनेक स्थानो पर प्रगट किया है जिससे उनके आलम्बन के स्वरूप का स्पष्ट भान हो जाता है।

'हरिराधा वृंदा विपुन, नित विहार रस एक।
बिछुरत नाहीं पलकहू बीतत कलप अनेक ॥११॥

नित्त केलि आनन्द रस, विच वृंदाबन बाग।
नागरिया हिय मे बसो, स्यामा–स्याम सुहाग[1] ॥१२॥

हमारी अब सब बनी भली है।
कुंज महल की टहल दई मोहि जहां निति रंगरली हैं॥
साहिब स्यामा-स्याम उसीली–ललिता ललित अली हैं।
नागरिया पें कृपाकरी अति श्री वृषभान लली है[2] ॥६७॥

मेरे चित नित मे बसो, दंपति दान विहार।
मुख पर फूटी झगरई, नैननि करत जुहार ॥२॥

गोरस मांगत करत दोऊ, नैन सैन सन्मान।
नागरिया के हिय बसो, दान रग बतरान[3] ॥५॥

ऊपर के उदाहरणो से स्पष्ट है कि वल्लभीय होते हुए नागरीदासजी को बालकृष्ण का रूप इतना प्रिय नही था जितना कि प्रिय दम्पतिरूप था। हरि–राधा, स्याम-स्यामा, लाल–लली, कुंज विहारी–कुंज विहारिनि और दम्पति–दान मे उनका मन

---

१. जुगल रस माधुरी

२ बन जन प्रसंस।

३ पद मुक्तावली, पृ० ३६८

जितना उलझा था उतना अन्य स्वरूपो मे नही। इसका यह अभिप्राय नही है कि नागरीदासजी ने अन्य लीलाओ का वर्णन नही किया। कृष्ण के बाल-भाव और बाल-लीला की अभिव्यजना 'शृंगार सागर' के आरम्भ मे ही भागवत के आधार पर हुई है। यह अवश्य है कि उनके बाल-लीला-वर्णन मे वह आकर्षण नही है जो सूर आदि अष्टछाप के कवियो मे है।

प्राय एक प्रश्न उठता है कि शुद्ध द्वैतवाद मे भगवान का 'बाल-रूप' ही अधिक मान्य है फिर उनके किशोर रूप मे दाम्पत्य भाव का यह वर्णन इतना अधिक क्यो ? इसका उत्तर यही है कि वल्लभ सम्प्रदाय मे दोनो रूपो की सेवा ग्राह्य है। इसका विवेचन महाप्रभु ने किया है।[1]

सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि स्वय महाप्रभु ने भक्ति के तीन सोपान माने है–प्रवाही पुष्टि भक्ति, मर्यादा पुष्टि भक्ति और पुष्टि-पुष्ट भक्ति। कृष्ण अवतार मे व्रज की स्त्रिया भी तीन प्रकार की थी–अन्य पूर्वा, अनन्य-पूर्वा और सामान्या। अन्य पूर्वा वे गोपियाँ थी जिनके विवाह सम्पन्न हो गए थे परन्तु वे कृष्ण मे आसक्त थी। इन्होने ससार मे पति सम्बन्ध छोडकर 'जार' भाव से कृष्ण को भेजा था। परकीयाभाव का यह रूप जो समाज की दृष्टि से हेय है, भक्ति मे सर्वोत्कृष्ट माना गया है। अनन्य पूर्वा वे गोपिया थी जिन्होने कृष्ण को पति बनाने के लिए साधना की थी। अनेको व्रत, पूजन आदि करने पर भी ये या तो अविवाहिता थी अथवा ये वे गोपिया थी जिनका कृष्ण से विवाह होगया था। वैसे दोनो ने ही कृष्ण का वरण किया था अतएव उन्हे स्वकीया ही कहा जाय तो उचित होगा। सामान्या वे गोपिया थी जिन्होने कृष्ण को यशोदा की तरह बाल रूप मे देखा था और जिनके हृदय मे कृष्ण के प्रति मातृ-स्नेह उत्पन्न हुआ था। अतएव प्रवाही पुष्टि-भक्ति मे भक्ति का उच्च रूप है और वह भक्ति के लिए प्रथम सोपान है। इसलिए मदिरो मे बाल-भाव की सेवा विशेष रूप से होती है। मर्यादा पुष्टि-भक्ति, भक्ति मे उच्चतर रूप है अतएव यह रूप अनन्यपूर्वा अथवा स्वकीया मे माना जाता है। पुष्टि-पुष्ट-भक्ति, भक्ति का उच्चतम रूप है और यह परकीया अथवा अन्य पूर्वा मे माना जाता है। भक्ति प्रेम स्वरूपा है अतएव प्रेम का यह रूप स्त्री भाव मे जितना व्यजित हो सकता हैं दूसरे रूप मे नही।

वल्लभ सप्रदाय मे यह भी माना जाता है कि मधुर भाव की भक्ति करने वाले भक्त सखी-रूप होते है और साख्यभाव से भक्ति करने वाले भक्त सखा रूप

---

१. सुबोधनी टीका श्री मद्भागवत दषम् स्कन्ध पूर्वार्घ, अध्याय १२

होते है। सर्वानन्द की सिद्ध शक्ति स्वरूपा राधा अथवा चन्द्रावली सम्पूर्ण अन्य शक्ति-स्वरूपा गोपियो की स्वामिनी है। अष्टछाप के सभी कवि सखा भाव मे कृष्ण लीला के सखा, और सखी भाव मे सखिया मानी गई है।

इस प्रकार हम देखते है कि किशोर लीला और दाम्पत्य भावना का समावेश वल्लभ सम्प्रदाय मे है। नागरीदासजी ने जो दाम्पत्य भाव मे अपने इष्ट का स्वरूप वर्णित किया है वह साम्प्रदायिक दृष्टि से सत्य है। उन्होने अनुभव किया था कि रसेश कृष्ण और रसरूपा राधा का दाम्पत्य रूप ही उन्हे शाति प्रदान कर सकेगा अतएव वह अन्त तक इसी स्वरूप को अपनी भक्ति का आलम्बन मानते रहे और अपने हृदय की भावनाओ को उनकी लीला के वर्णन द्वारा व्यजित करते रहे।

परन्तु एक बात ध्यान देने की है। भक्ति का जन्म और विकास साधारण रूप से नही हो जाता। उसकी परिस्थिति के लिए एक विशेष विकासोन्मुखी मन स्थिति और वातावरण की आवश्यकता होती है। नागरीदास को भी अपने जीवन मे अनेक ऐसे कटु अनुभव हुए थे जिन्होंने सासारिक राजसी ठाट–बाट को निस्सार और लौकिक मोह को तथ्यहीन प्रमाणित कर दिया था। 'वैराग्य सागर'[1] मे कवि ने ऐसे अनेक तथ्यो और तत्वो का वर्णन किया है जो भक्ति–भावना के लिए आवश्वक होते है। शरीर की क्षणभगुरता, ससार की असारता, बधु-बाधवो के मोह की अनुपयोगिता, अनायास सघर्षो के कारण मन की उदासीनता, अपने बाहुबल की अशक्तता आदि के अनुभव मनुष्य को यह सोचने के लिए बाध्य करते ही है कि उससे भी बडी और अधिक बलशालिनी कोई ऐसी शक्ति है जो विश्व का परिचालन करती है। इसी सत्ता के सामने वह आत्मसमर्पण करता है। यह आत्मसमर्पण ही भक्ति को जन्म देता है। 'भक्ति-सार' मे तप, अष्टसिद्धि योग, निर्गुन उपासना एव ज्ञान की व्यर्थता, 'प्रबोध माला' मे बाल, तरुण, एव वृद्धावस्था मे हरिध्यान न करने का क्षोभ, मरणागनि देखकर मोह की निस्सारता, सत्सग की महिमा और कुसग का परिणाम आदि वर्णन, 'देह–दसा' मे शरीर की अपार्थिवता का वर्णन, एव 'वैराग्य–वटी' मे निर्वेद की भावना-सभी तत्व भक्ति की भूमिका के अग्रदूत है। अतएव सुगमता से कहा जा सकता है कि नागरीदास मे भक्ति का उदय अकस्मात नही हुआ था। वह उनके जीवन के अनुभवो, एव बुद्धि तथा तर्कपूर्ण विचारो का रूप था जिसका विकास शनै शनै होता आरहा था। उनकी आरम्भिक और अन्तिम रचनाओ मे जो साधारण विचार अथवा भाव भिन्नता दिखाई देती है उसका यही

---

१. देखो नागर समुच्चय वैराग्य-सागर

कारण है। और यह तो कौन नही मानेगा कि नागरीदासजी की भक्ति-भावना की पुष्टि मे अनुभव के अतिरिक्त अन्य मित्रो का समागम और सतो एव त्यागियो के प्रवचनो का प्रभाव सम्मिलित था।

नागरीदासजी की कविता की प्रत्येक पक्ति उनकी अनन्य भक्ति की व्यजक है। कही से भी पढ लीजिए प्रतीत होता है किसी भक्त की घनीभूत भक्तिभावना से ओतप्रोत हृदय अपनी मस्ती मे झूम रहा है। उनकी भावना शुद्ध हिंदू धर्मावलम्बी भावना है और उसकी अभिव्यक्ति मे साहित्यिक भक्तिरस के उपकरण प्रस्तुत है।

नागरीदास पर अन्य धार्मिक प्रभाव :—

डा० फैय्याज़ अली ने अपने (अप्रकाशित) प्रबन्ध' मे वैष्णव धर्म और सूफी मत की समानता के कुछ उपकरण प्रस्तुत किये है और इस समानता के कारण उन्होने नागरीदास पर सूफी मत का प्रभाव प्रदर्शित किया है। समानता के उपकरण इस प्रकार है।

१. वैष्णवधर्म शृ गार प्रधान है और सूफी मत भी रतिप्रधान है।

३ वैष्णवधर्म मे प्रियतम की भावना है और सूफीमत मे महबूब की।

२. वैष्णवधर्म नवधा भक्ति प्रतिष्ठापक है और सूफीमत शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारफत प्रधान है।

४ वैष्णवधर्म मे बासुरी की प्रतिष्ठा है और सूफीमत मे 'नगमये नै' की।

५ वैष्णवधर्म मे आत्म-समर्पण है और सूफीमत मे भी है।

इस प्रसग मे यह ध्यान देने योग्य बात है कि समानता का जो उल्लेख डा० फैय्याज़ ने किया है वह ठीक तो है परन्तु दोनो मतो मे प्रत्येक तत्व का समावेश कब हुआ इस पर उन्होने विचार नही किया है। किस पर किसका प्रभाव पडता है अथवा पडा है यह जानने के लिए प्रत्येक के आदिम रूप का इतिहास जानना आवश्यक है। यह बताने की यहा आवश्यकता नही कि वैष्णव धर्म का जन्म 'एकान्तिक धर्म' के रूप मे हुआ था और विकास पाचरात्र या भागवत धर्म के रूप मे डॉ० भडारकर ने बताया है कि सात्वत जाति मे यह धर्म मेगस्थनीज़ के समय प्रचलित था। अतएव

स्वाभाविक है कि इसका उद्‌भव ईसा की चौथी शताब्दी से पूर्व होना चाहिए[1]। अपने वर्तमान रूप मे भी इसका प्रचार महाराष्ट्र प्रदेश मे ईसा के पूर्व की पहली शताब्दी मे और दक्षिण मे उसके बाद हो गया था। दक्षिण के भक्तो को 'आल्वार' कहा जाता है। इन भक्तो की सख्या १२ है और कोई-कोई इनका समय ईसा से पूर्व ४२०३ से लेकर २७०६ तक मानते है[२]। परन्तु डॉ० भडारकर ने इनका समय लगभग ईसा की ५ वी या ६ ठी शताब्दी माना है[3]। अतएव यह स्पष्ट है कि वैष्णव धर्म ५ वी शताब्दी मे अपना स्वरूप निश्चित कर चुका था।

रही सूफीमत के जन्म और विकास की बात। वैसे तो इस्लाम धर्म मे सूफीमत अरब मे आरम्भ हुआ परन्तु उसका सर्वोत्तम विकास ईरान मे हुआ। सूफीमत के विकास का समय ईसा की मृत्यु के पश्चात् की कई शताब्दियाँ है। वैसे फारस के बादशाह नौशेरवा (सन् ५३१-७८ ई०) के दरबार मे ही भारतीय अद्वैतवाद की विचारधारा पहुँच चुकी थी[4]। अतएव स्पष्ट है कि सूफीमत का विकास वैष्णव धर्म से पुराना नही है, बाद का है। परिणामत भारतीय अद्वैतवाद का प्रभाव ही उस पर माना जा सकता है। समानता होते हुए भी वैष्णव धर्म पर सूफीमत का प्रभाव बताना युक्तियुक्त नही है। नागरीदासजी मे जो कुछ भी सूफीमत के सिद्धान्तो अथवा प्रणालियो का योग मिलता है वह उसके सीधे प्रभाव का परिणाम नही है। इस दृष्टि से हमे 'इश्क-चमन' की परीक्षा भी कर लेना उचित हे। हो सकता है कि रसखान की 'प्रेम वाटिका' को ध्यान मे रखते हुए नागरीदास ने 'इश्कचमन' की रचना की हो परन्तु दोनो मे विषय समर्थन और उसकी अभिव्यक्ति का मौलिक भेद है।

इस्लामी कवियो ने 'इश्क' या 'प्रेम' को दो प्रकार का माना है-इश्क मिजाजी' और 'इश्क'-हकीकी' अर्थात् मानवी प्रेम और ईश्वरीय प्रेम। प्रेमियो का कहना है कि अधिकतर मानवी प्रेम से ही ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति होती है। प्रेम भौतिक वस्तुओ के प्रति अपने आकर्षण को छोडकर सर्वप्रिय परमात्मा की ओर अग्रसर होता है। फारसी की सूफी कविता मे अनेको प्रतीको द्वारा इश्क मिजाजी से इश्क हकीकी की

1. **Vaishnavism, Shaivism and other minor religious sects, K. G. Bhandarkar, P. 100.**

२ **वही, पृष्ठ ४६**

३. **वही, पृष्ठ ५०**

4 **The Nector of Grace by Swami Govind Tirth, P XXIX (Rubayyat Umar khayyam,) (introduction)**

पदवी तक पहुँचने का वर्णन किया गया है। रहस्यवादी कविता के यही लक्षण हे। ईश्वरीय प्रेम मे प्रेमी की अनुरक्ति और तन्मयता के वर्णन मे शराव के नशे की उपमा, ईश्वरीय भक्ति के लिए 'मैखाना' और 'खरावात' का प्रयोग, सभी प्रतीक मात्र है।

नागरीदास मे सूफीमत के इन प्रतीको को कही भी प्रश्रय नही मिला। उनके इश्क-चमन का अध्ययन सुचारु रूप से न करने के कारण ही समवत. डॉ फैय्याज़ अली पथभ्रष्ट होगए है। इस प्रसग को थोडा सूक्ष्मता से समझना आवश्यक है। परन्तु यह तभी हो सकता है जब प्रेम के विभिन्न रूपो और रूपान्तरो को भली भाति समझ लिया जाय।[1]

प्रेम और रति को पर्यायवाची माना जाता है। इसकी उद्भावना मे आकर्षण का तत्व निहित है। परस्पर आकर्षण सभी प्राकृतिक तत्वो के अणु और परमाणुओ का स्वाभाविक लक्षण है। प्राणियो मे यह आकर्षण, स्त्री और पुरुष अथवा पुरुष और पुरुष मे देखा जाता है। जब स्त्री और पुरुष माता-पिता के रूप मे वाल सन्तान की ओर आकर्षित होते हैं उसे वात्सल्य कहा जाता है, समव्यस्क का परस्पर आकर्षण 'सखा' भाव कहलाता है और इसी प्रकार स्त्री और पुरुष के परस्पर आकर्षण को 'दाम्पत्य' भाव की सज्ञा दी जाती है।

वडो के प्रति छोटो का आकर्षण 'भक्ति' भाव से सम्वोधित किया जाता हे। रति के इन सभी रूप-रूपान्तरो मे 'काम' की भावना प्रस्तुत रहती है। कोई भी आकर्षण केवल मानसिक होता है—या हो सकता है-व्यर्थ का तर्क है। मनुष्य मे 'काम' का प्रकोप प्राकृतिक रूप से विद्यमान है। यही सूफियो का 'इश्क मजाज़ी' है, परन्तु मनुष्य मे इतनी शक्ति है कि वह अभ्यास और सयम के द्वारा अपनी वृत्तियो को सासारिक काम से हटाकर दैविक काम की ओर अग्रसर कर सकता है और वह ऐसा करता भी है। यही उसका वास्तविक विकास है और इस विकास की चरम सीमा तभी आती है जब प्रेमी और प्रेमपात्र मे अद्वैतता की अनुभूति होती है। यही अवस्था 'इश्क-हकीकी' की है। डॉ० फैय्याज़ ने रति के इस वैज्ञानिक विकास की ओर समवत ध्यान न देकर केवल कुछ शब्दो के प्रयोग के कारण 'इश्क-चमन' को सूफीमत के प्रभाव के अन्तर्गत मान लिया है जो उचित नही है।

---

१. **नागरीदास ने इस विषय मे अपने विचार 'भक्ति-मग-प्रदीपिका' के प्रेम निरूपण नामक तीसरे प्रकरण मे व्यक्त किए हैं।**

नागरीदास की विशेषता यह है कि हिन्दू धर्म के अनुसार भक्ति का स्रोत बहाते हुए उन्होने प्रेम के इस आध्यात्मिक एव बुद्धिजन्य स्वरूप पर भी विचार किया है[1]। 'इश्क-चमन' उनकी इस प्रवृत्ति का परिणाम है। वह किसी प्रभाव का परिणाम नही है और प्रेम की यह व्याख्या समान रूप मे सभी धर्मो मे पाई जाती है। अतएव उनकी रचना मे सूफीमत का समान प्रकरण आगया है। एक बात और भी है। 'इश्क-चमन' की भाषा रेखता है अतएव उर्दू प्रधान होने के कारण भी डॉ० फैय्याज़ को समानता का भ्रम होना सभव है। रेखता शैली मे प्रेम विषयक कविता लिखने का प्रचलन नागरीदास से भी पहिले प्रचलित था। अतएव यदि नागरीदास ने भी इस शैली को अपनाया तो मेरे मत मे इसे उन पर सूफीमत का प्रभाव न मानकर युग की साहित्यिक विशेषता ही मानना पडेगा।

नागरीदास पर रीतिकालीन कवियो की शृगार-प्रियता और रतिभावना की अभिव्यजना का प्रभाव अवश्य दिखाई पडता है[2]। जिस मस्ती से उन्होने अपने इष्ट की लीलाओ के चित्र अकित किए है उसमे शृगार की मात्रा बहुत अधिक है। परन्तु एक बात है, ये सभी चित्र उस सेवा मार्ग के नितान्त अनुकूल है जिसमे अन्यपूर्वा, अनन्य पूर्वा और सामान्या की भक्ति के आदेश स्पष्ट हैं।

नागरीदास पर सबसे अधिक प्रभाव सगीत का प्रतीत होता है। उनका समस्त पद सागर राग और रागनियो पर ही अवलम्बित है। अनेको पदो की रचनाएँ, रागो मे जोडने के उपक्रम के लिए ही की गई हैं जैसा कि पदसागर सग्रह मे स्थान-स्थान पर मिलता है। उनकी सगीत प्रियना सराहनीय है।

नागरीदास की कविता —

नागरीदासजी अन्य भक्त कवियोके समान मुक्तक काव्य के रचयिता थे, प्रबन्ध के नही। अतएव इस दृष्टिकोण से उनके काव्य की समीक्षा करना अधिक उचित होगा।

नागरीदास के काव्य मे दो रूप प्राय. पाये जाते हैं पहला इतिवृत से परिपूर्ण जिसमे बाह्य चित्र प्रदर्शन का वर्णन प्रधान होता है और दूसरा भावना प्रधान जिसमेभावो की प्रचुरता और हृदय की मनोरम अभिव्यजना होती है। दोनो प्रकार के वर्णनो मे उत्कृष्ट कोटि की ध्वनि अपेक्षित है।

---

१ देखो नागर–समुच्चय : प्रेमग दीपिका–तृतीय प्रकरण

२. देखो विशेष रूप से नागर–समुच्चय, मजलस मंडन–पृ० २६०

नागरीदास के कुछ वर्णन-चित्र इस प्रकार है —

१. रास मे रग रह्यो हैं। सो नहिं जात कह्यो हैं।
अमित अंग सरसाये । तब चलि जमुना आये ॥

आये जु जमुना तट पुलिन तहाँ कँवल सोरभ आवही।
धसे जलरस मत्त क्रीड़त छिरकि तन छिरकावहीं।
अँजुलनि जल छुटत छवि कवि कहत जुगत विचारिकै।
गृह तरनिजा उछाह मुकता मनु उछारत वारिकै।
चँद्रिका मे चमकि बूँदें गिरत यो छवि पावई।
जानि वहो उडपति अवनि उड़ि उडि गगन तें आवई ॥

पारजात के जोतमय जनु फूल खेलत फैलहीं।
दास नागरि जल कलोलत छवि सो छिरकत छैलहीं ॥[1]

जल विहार के इस चित्र मे अलकारो का आश्रय लेकर सुन्दर चित्र खीचा गया है।

२. रति रस वातनि करत मुस्क्यात जात
त्यो त्यो होत आनँद की अँग अँग भीर है।
परसत हाथ नाथ लेटि लपटात गात
कोइल सी कुहकि हरत उर-पीर हैं।
घुरत ढुरत हसि जुरत तिरिछी दीठ
सरकि सरकि ढिग ढरत सधीर हैं।
उघरे उरोजन भरत अँक नागर सु
कसि गसि जात मानो एक ही सरीर हैं[2] ॥७८॥

विचार चन्द्रिका नामक रचना मे नागरीदास ने स्याम स्यामा को केलि-क्रीडा का एक दृश्य दिखाया है। सामान्यतया इसमे सासारिक काम का चित्र दिखाई

१. नागर-समुच्चय. रासोत्तर जलविहार खंड, पृ. १६४
२. वही, पृ. २६५।

देता है परन्तु भगवदीय दृष्टि से इस दाम्पत्य भाव मे किसी प्रकार की अश्लीलता नही है।

३. गोर स्याम अभिराम अग मिलि दर्पण देखें।
भूलत सबें सिगार दृगन नहि लगत निमेखें॥
सबै सखी संभरावत जावत भंवर उडावत।
रचि-रचि रुचिर संवार सुघर सिगार बनावत॥१०॥
गोर पीठ अभिराम स्याम गहि गूंथत बैनी।
तिय फिर अंजन देत कमल नैननि मृगनैनी।
बनी करन कवनीय बनी उत लट घुंघरारी।
करनफूल पर फूल धरत इत फूलविहारी॥११॥[1]

भोर-लीला के समय इन दोनो वर्णनों मे भाषा का सौष्ठव, विचारो की स्पष्टता और छन्द का गठन देखने ही योग्य है।

४ निस बीती सब रंग मे उठे भोर सुकुमार।
आय संवारत सहचरी, भूखन वसन सिगार॥८॥
लगे लगे दृग आवहि, बैठे पगे किसोर।
नील पीत पट पलटगे, जगे रगमगे भोर॥९॥
अलसोहैं निस के जगे, सरवर सोहैं नैन।
इकटक सोहैं अधखुले, सहज हंसोहे नैन॥१०॥
आनन सो आनन छिपे, पानन रचे कपोल।
लखि रीझे छबि आरसी, विहसें लोचन लोल॥११॥
आरस सो उरझी पलक, अलक जु बेसरि मांहि।
अरुझयो बैना देखिकें, पियमन सुरझ्यो नाहिं॥१२॥[2]

प्रातरस मजरी के ये दोहे नागरीदास की सूक्ष्म दृष्टि और वाह्य मुद्राओ के यथातथ्य सौंदर्य वर्णन मे उनकी चतुरता के द्योतक हैं। भगवान की लीलाओ के

---

१. सिगार सागर, पृ २६७
२. वही, पृ. २६९

वर्णन से इष्ट के अनेक चित्र, आश्रय के लिए, जो उद्दीपन कार्य करते हैं, उनमे ये चित्र अपना निजी स्थान रखते हैं ।

५. कारी सारी गोर मुख झूलत तिय रसकंद ।
आवत जात विमान ज्यों घटा लपेटे चंद ।।१५।।

झूलति ठाढी प्रियहिं लखि, रहे लाल सुधि भूल ।
फहरत अंचल चन्द्रिका, बेनी बरसत फूल ।।१८।।

स्याम घटा ब्रज स्याम घन, गौर घटा सुकुंवारी ।
नागरिया हिय भूमिविच, नित बरसो रसवारि ।।२५।।[1]

पावस-पच्चीसी के इन दोहो मे ऋतु वर्णन के साथ साथ पावस-लीला के अन्तर्गत स्याम-स्यामा की वाह्य छटा का अत्यन्त सजीव चित्रण किया गया है। प्रथम दोहे मे प्रयुक्त अलकार द्वारा राधाजी के गौर मुख पर काली साडी द्वारा सौदर्य कितना निखर उठा है-चन्द्रमा का घटा लपेटे आना कितनी स्वाभाविक उपमा है।

५. सरसाइ वृंदाविपुन, अचल जुन्हाई रैन ।
लगत सुहाई दृगनिकों, कुंजन छवि सुख दैन ।।१।।

स्वेत फूल फूले लतनि, विलुलित हीराहार ।
ज्योन्ह ओढि पट रुपहरी, कुंजनि करे सिंगार ।।२।।

छईछिपा छबि देत छित, पत्र विपुन इंहि भाय ।
ससि कारीगर रुपहरी, अफ़साँ कियो बनाय ।।३।।

चितें बदन ब्रजचन्द् को, रीझि चँद भयौ चूर ।
छिपा किधौं वहि जोति मे, कुंजनि बिखरयो बूर ।।४।।[2]

प्रकृति-वर्णन की इस पृष्ठभूमि मे कितना उद्दीपन है । निकुँजो मे खिले हुए सफेद फूलो की अवलियाँ हीरो के हार जैसी शोभा दे रही हैं जैसे स्वय चन्द्रिका ने

---

१. सिगार सागर, पृ. २७६
२. वही, पृ. २८५

श्वेत उत्तरीय ओडकर कुँजों का शृ गार किया है अथवा चन्द्रमा रूपी कारीगर ने वृक्ष के पत्तो मे से छन छन कर आने वाली चाँदनी का निर्माण कर अपनी कला को अफशाँ (अभिव्यक्त) किया हो और यह सब सौन्दर्य नागरीदास के इष्ट कृष्ण बृजचन्द के कारण ही भासमान है। तभी तो उनको देखकर आकाश चन्द्रमा भी उन पर स्वय ही रीझ गया है। स्वय कही छिपकर (कृष्ण की ज्योति मे) अपना चूर्ण कुँज मे बिखेर रहा है।

गति का एक और चित्र इसी प्रसग मे प्रस्तुत किया गया है—

झुरें झुरें फिर हसि मुरें, घुरें ढुरें रहि जाँहि।
लोचन लहिरें निरखि पिय, धीरज ठहरें नाँहि ॥१३॥
अरसाने घूमत झुकत, सरसाने छवि ऐंन।
विहसि ढुराने पीय पर, नींद घुराने नैन ॥१५॥[१]

नेत्रो की चपलता, उनकी गति, उनका पहले घुल जाना फिर ढलक जाना इन सब भँगिमाओ को देखकर किसका धैर्य स्थगित रह सकता है ? नीद घुली हो जिन आँखो मे उन्हे देखकर उनकी मुस्कराहट पर न्योछावर होने के लिए किसका हृदय अभिलाषित न होगा ? भक्त की बात छोडिये साधारण जीवन मे भी नैनो की गति हृदय को आकर्षित करने मे अत्यन्त समर्थ होती है।

रास के प्रसग मे, साँझी के प्रसग मे, फूल चुनने के लिए जाने के अवसर पर नागरीदास जी ने प्रकृति की रम्य छटा का वडा मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है। यह वर्णन लीलाओ के द्योतक तो है ही, काव्य विषयक आवश्यक विभाव के भी ज्वलन्त उदाहरण है। भक्ति के मूल स्थायी भाव-रति के लिए इनकी उपयोगिता निर्विवाद है।

नागरीदास का भाव–पक्ष भी उनके हृदय की घनीभूतता से आच्छादित है। भक्ति भावना अनेको प्रसगो और रूपो मे साकार होकर उनकी कविता मे गुँफित हुई है। नागरीदासजी ने अधिकाश सयोग सम्वन्धी कविता ही लिखी है, वियोग का वर्णन उनकी रचनाओ मे नही के बराबर है।

नागरीदासजी भक्त कवि थे अतएव आश्रय के रूप मे उन्होने अपने मन की उस अवस्था का अनेको बार वर्णन किया है जो इष्ट की प्राप्ति मे सदैव सहायक

---

२. सिंगार सागर, पृ. २८५–२८६

होती है और जिसकी व्यग्रता आश्रय को आलम्बन के अनुग्रह पर आत्मसमर्पण करने मे सफल होती है। ससार की नश्वरता, शरीर का निरर्थक मोह, माया का जीव को सदैव फाँसे रखने का प्रयत्न, सासारिक वैभव मे आसक्ति एव मानव प्रेम को छोडकर परस्पर के कलह आदि के अनेक प्रसगो का वर्णन कर नागरीदास ने अपनी उस लगन का परिचय दिया है जो अपनी परिपक्व अवस्था को प्राप्त होकर इष्ट की प्राप्ति का साधन बनी।

मनोविज्ञान कहता है कि प्रत्येक कार्य के पहले उनका विचार मन मे दृढ होता है और प्रत्येक कार्य इसी सकल्प विकल्प का परिणाम है। नागरीदास की मनोव्यथा के अनेक उदाहरण उनके 'वैराग्य सागर' मे मिलते है। उनके मन की जिज्ञासा और ससार की असारता को देखकर उससे निस्तार पाने की अभिलाषा निम्न छदो मे व्यक्त की गई है–

सांसारिक एषणा —

१ जगसमुद्र कहो कैसे तरिये। कौन कर्म करिकें जु उबरिये।
त्रिविधि ताप मे प्रजुरित देह। निसि दिन अति दुख परम अछेह॥
जग्य दान तप करें जु कोय। लक्ष्मी आयु बिना नहिं होय।
पुन्य फल तुच्छ स्वर्ग अरु राज। दुख ही मे कियो दुख को साज॥
स्वर्ग तें पुन्य छीन ह्वै परें। राजा त्रिविध ताप मे जरें।
सब विधि पूरन श्री भगवान। सो तजि के चित चाहे आन[1] ॥६८॥

माया का आधिपत्य :—

२ परनें मंगलचार बधाई मरें सीस मिलि कूटें।
पांच पिसन तनके नहिं जीते बाहिर अरि सो जूटें।
जेत अजेत हाथ हरि यह बिच हारि कहावें कायर।
ऐसो दुखी न त्यागि सकें घर यो माया जोरावर॥
छप्पन भोग दास मिलि पावें इन्हे दालि को पानी।
रोग ग्रसत वैभव किहि कारज मन दुखिया हैरानी॥

---

१ वैराग्य सागर, पृ. २

नित्य नवरें न्याव सबन के पर दुख मे मन रहनो ।
ऐसो दुखी न त्यागि सकें घर यो माया को लहनो ॥[1]

३ निकसत ही विसरयो गोविंदा । परयो पवन लगि माया फदा ।
बालापन खेलन मे बीत्यो । तरुनापन मे जुवतिन जीत्यो ॥
अति मद अध और नहि बूझै । एक विषय उनहू को सूझै ।
भरन पोष उनहू को करै । काल व्याल तें नाहीं डरै ॥

अज्ञानतावश मनुष्य–देह पाकर उसका दुरुपयोग अत मे परिणाम स्वरूप दुख ही देता है ।

साधन की मन बात न मानी । अति दुर्मति केवल अभिमानी ।
बहुरि वृद्ध तन को बल गयो । चिंता मोह महा मन छयो ।
खाँसत थूकत चल्यो न जाई । तहाँ लष्टका भई सहाई ।
नाती पुत्र चहूँ दिस डोलें । तिनसो होय तोतलो बोलें ॥
मोह विवस गई बुद्धि बिलाई । गो विवेक वैराग नसाई ।
तीन अवस्था योही खोई । धुर सो वेलि नरक की बोई ।
वहुरि जु काल आइकें अर्‌यो । ह्वै कें दुखी खाट मे पर्‌यो ।
अतीसार भो कपरा बिगरे । महाविपति तें दुरे जु सगरे ॥[2]

. . . .

भगवान की भक्ति ही एक मात्र दुख मोचन का साधन है ।

कृष्ण नाम रसना नहि धरै । सुत नाती को टेरत मरै ।

. .. .

. ...

हरि की भक्ति करो चितलाय, तीनो ताप बेगि मिट जाय ।
कर दयो दीपग लोचन दूवें । अब जानि बूझी मति परोजु कूवे ।
नवधा भक्ति भागवत कही । ताको फल दसधा है सही ॥[3]

---

१ वैराग्य सागर, पृ ३५
२ वही पृ ३३–३४
३ वही पृष्ठ ३४

अपने सम्बन्ध में नागरीदासजी का कहना है :—

देख्यो मो औगुन यहे हूँ औगुनिजिहाज।
औगुन बरनत और के, मोहि न आवत लाज॥
मोहि न आवत लाज भर्यो अति अगनित दोसनि।
पगनि अगनि नहिं सूझत सूझत लागी कोसनि।
तजि निज छिद्रनि कहत और के यह कहा लेख्यो।
समझि सोचि चुप रहत न जड नागर जग देख्यो॥[1]

इतने अनुभव के पश्चात् उन्होने 'भक्तिसार' की रचना की, और इस परिणाम पर पहुचे कि भक्ति के अतिरिक्त मानव के लिए सुख की प्राप्ति का दूसरा साधन नहीं है —

'नागरिदास न कहूँ विमुख काहू सुख पायो।'

अतएव—नागरीदास विचारि कहे जिते धर्म के अंग।
सर्वोपरि कलि कीरतन, अरु साधन को संग॥[2]

अपने मन की दृढता के पश्चात् आश्रय ने जिस आलम्बन को अपनाया उसका विवरण 'भक्तिभावना' प्रसग मे आ चुका है। भावावेश की उस अवस्था मे विभोर होकर कवि-हृदय ने कहा है —

लोचन सजल लाल घूमत विसाल छके
चलिनि मराल की सी ठाढे रोम तन मे।
उज्जल रस भीनें ताकें दीनें गरबाँहि
रहे, स्यामा—स्याम दोऊँ हिये सुन्दर सदन मे।
पुलकित गात गिरा गदगद रोमाँचित
नित धारें छाप कंठी और तिलक निज पन मे
कहा भयो नागर किये तें तप—जप
दान जो पै सत-माधुरी बसी न ऐसी मन मे।[3]

---

१ वैराग्य सागर पृ ४६
२ वही, पृ १४४
३. वही, पृ ३७

अपने इष्ट की लीला भूमि के साथ भी भक्त का परम स्नेह होना स्वाभाविक है। वृंदावन मे निकुँज–लीला–समय का रूप नागरीदासजी को कभी नही भूलता क्योकि वही रूप उन्हे सर्वप्रिय है। इस कवित्त मे वृँदावन की महिमा के साथ साथ इष्ट का वर्णन नागरीदासजी ने किया है —

कुँजनि कलपतरु रतन जटित भूमि।
छवि जगमगत जकी सी लगें काम कौ॥
सीतल सुगन्ध मद मारुत वहत नित।
उडत पराग रैन चैन सब जाम कौं॥
देव वधू द्रुमनि मे कोकिला सरूप गावें।
दम्पति विहार बीच वृँदावन नाम कौं॥
नागरिया नागर सु दीने गरबाही तहाँ।
मन रूप रवनी ह्वै–देखि ऐसे धाम कौं॥[1]

उद्दीपन विभाग के अन्तर्गत काव्य मे ये मुख्य माने गए है, सखा, सखी, दूती, वन, उपवन, षडऋतु, चन्द्र, पवन, चन्द्रिका, चन्दन, कुसुम, और पराग। रति-वर्णन मे प्राय प्रसगानुसार किसी न किसी मात्रा मे इन सभी का काम पडता है। नागरीदास ने रति के उस रूप को अपनाया है जिसे भक्ति कहते है। वह पुष्टिमार्गीय थे अतएव जैसा पहले लिखा जा चुका है उन्होने सेवामार्ग वात्सल्य की अपेक्षा दाम्पत्य को अधिक अपनाया है। वात्सल्य सम्बन्धी इष्ट की लीलाओ मे उन्होने सखा पक्ष पर ज़ोर दिया है परन्तु ये वर्णन इतने उत्कृष्ट नही है कि जितने अन्य भाव के हैं। वास्तव मे सूर ने इतना सुन्दर मनोवैज्ञानिक बाल – वर्णन किया है कि उनके सामने किसी अन्य का बाल वर्णन रुचिकर भी प्रतीत नही होता। नागरीदासजी को सखियो की आवश्यकता भी अधिकतर निकुँज–लीला–वर्णन मे ही पडी है। एक दो उदाहरण इसके पहले दिए जा चुके हे। दूती की आवश्यकता उन्हे प्रतीत नही हुई क्योकि राधारानी स्वय कृष्ण के साथ रहती है। यदि कवि को मान-भग के चित्र दिखाने होते तो इन प्रसगो पर भी उनकी लेखनी कुछ लिखती।

वन, उपवन, चन्द्र–चन्द्रिका, पवन, और षड–ऋतु के अनेक रम्य वर्णन उनके काव्य मे स्थान–स्थान पर भरे पडे है। रास–लीला के समय रात्रि का वर्णन कितना स्वाभाविक है—

---

१ वैराग्य सागर, पृ ५१

निस सरदोत्फुल मल्लिका ककुभ कांति राकेस ।
गही वेणु हरि निरखि बन, रास रमण आवेस ।।
पूरन ससि निस सरद की, चलि बन मलय समीर ।
होत बैन रव रासहित, तरुन तनइया तीर ।।[1]

चाँदनी का उत्प्रेक्षा युक्त वर्णन देखिए , निर्गुण की ज्योति ही मानो सगुण वृंदावन–चद श्री कृष्ण को देखने आई है—

पूरन सरद ससि उदित प्रकासमान
कैसी छवि छाई देखो विमल जुन्हाई है ।
अवनि अकास गिरि कानन औ जल-
थल व्यापक भई सो जिय लागत सुहाई है ।
मुकता कपूर चूर पारद रजत आदि
उपमा ये उज्जल की नागर न भाई है ।
वृंदावन चन्द चारु सगुन विलोकिबें कूं
निरगुन की ज्योति जनूँ कुँजन मे आई है ।।[2]

वन, उपवन और कुसुम आदि उद्दीपनो का वर्णन साँझी प्रसग मे अनेक बार आया है ।

साँझी का एक कवित्त इस प्रकार है—

रंग सरसाने बरसाने बन बाग स्यामा
खेले साँझी साँझ बहो साथिनि सिंगार के ।
नूपर निनाद पूर रह्यो है दुमनि माँझ
जहाँ तहाँ लेत कली कुसुम उतारि कें ।
साँवरी नवेली वाल नीलमनि वेली सी
अकेली फिरेंवाहाँ जोरी संग सुकुमारि कें ।

---

१. सिंगार सागर, पृ २८३
२ वही, पृ ३१२

डारहि नवावें मिली बीनें फूल पावें
फल नागरिया बारें मन कौतिक निहारि कें।[1]

षड-ऋतु वर्णन तो नागरीदास ने पर्याप्त मात्रा मे किया है। वैसे भी उत्सवो का महत्व पुष्टिमार्ग मे माना गया हे। उत्सव माला मे कवि ने अपनी तत्सम्बन्धी भावनाओ का दिग्दर्शन कराया है परन्तु बसन्त, ग्रीष्म, शरद और पावस के कवित्तो से नागर समुच्चय सराबोर है। ये सब वर्णन इष्ट की लीलाओ के वर्णन और उनमे उद्दीपित होने वाले भावो के प्रतीक है। उदाहरण के लिए यहाँ एक दो पद उद्धृत किये जाते है —

बसन्त वर्णन : फूले द्रुमवल्ली बन फूले अलि गध बोलें,
मदन सदन मानो मगल बँधोवनो।
जहाँ तहाँ आवत धुनि गान हिंडोल तैसो,
कोकिलानि कोयल को सोर मन भावनो।
उमही सकल वाल आई वृषभानु जू कै,
किसले कलस संग सोहे महरावनो।
हिये हुलसंत विकसंत कंज तिय मुख,
नागर बसत बरसाने मे सुहावनो।

कानन केसू खिले सु भले द्रुम मजरी मोरनि दीहै दिखाई
भोरनि भोरनि भोरनि को रव आतुर कोयल कूक मचाई।
क्यो न मिलें प्यारे नागर सो उठि काम उदेग भरी रितु आई।
रूप को गर्व रहेगो नही री बसन्त की आनि परी है अवाइ।[2]

फाग वर्णन :–
देवनि केरु रमापति के दोऊधाम की वेदिनि कीनी बडाई।
सख औ चक्र गदा अरु पद्म सरूप चतुर्भुज की अधिकाई।
अमृत पान विमाननि बैठी वो नागर केती कही पै न भाई।
स्वर्ग बैकुण्ठ मे होरी जो नाहिं तो कोरी कहालें करें ठकुराई॥[3]

---

१. सिंगार सागर, पृ. ३०८
२ वही, पृ ३१९
३. वही, पृ. ३२२

पावस वर्णन:—

जड़ अवनि रितुवंत है, रस मे नीरस ठौर।
भीजी पावस रितु रची, रूखी रितु सब ओर ॥
आवें वदरा कामदल, मोरन की आवाज।
फिरें दुहाई सब सदन, होत मदन को राज ॥
वरिखा घन घहराई तब, धीर नहीं ठहराय।
उठे जु हिय हहराय मुनि, तप तारी छुटि जाय ॥
घन धारा झरहरि करत, अवनी फारि प्रवेस।
चले वहो सर समर मनों, करन मूरछित सेस ॥[1]

अन्तिम दोहे की उत्प्रेक्षा ध्यान देने योग्य है। पृथ्वी को फाडकर वर्षा के जल रूपी तीरो का उसमे प्रवेश करने का कारण पृथ्वी को धारण करने वाले शेष नाग को मूर्छित करना है। जिस पावस के प्रभाव से शेष जैसे भी विचलित हो जावे उसका प्रभाव मानवो पर कैसे नही पडेगा ?

ग्रीष्म वर्णन —

जेठ मास की दुपहरी आधी राति समान।
दुरि–मिलि सुख बहु विधि करें स्यामा-स्याम सुजान।
ग्रीषम मे गति सिसिरवन, निविड़ द्योस अँधियार।
मुख उजियारें करत तहाँ, दंपति वितन विहार ॥
सैनी कदली दलन की, रची कमल दल नैन।
कुँज छाँह दम्पति करत, ग्रीषम रितु सुख सैन ॥
रितु गरमी गरमी जु हित, तन गरमी नहिं लाल।
ढाँपी ढोरि[2] गुलाब पै चित सरमी क्यो वाल।
श्रमित फुहारे को झुकीं, नीर फुहारे लेत।
गाढी जोबन मद छकी, ठाढी रावत खेत ॥[3]

---

१. सिगार सागर, पृ. २७८
२. लुढकाकर, धकेल कर
३. सिगार–सागर, पृ० २७६–७७

इस प्रसग मे नागरीदास अपने समय को भी भुला नही सके है। फव्वारो का यह वर्णन मुगल कालीन विलास सुखो की ओर ध्यान आकर्षित कर ही देता है। उन्होने तो हौज़ को भी काम मे ले लिया है, राधा श्याम की आखो को शीतल करने के लिए हौज़ के पानी से कपडा भिगो कर ले जाती है—

आई तिय जल हौज़ विच, चिहुटे भीजि निचोल।
पिय दृग सीतल करि करें, ग्रीषम कुंज कलोल ॥[1]

नागरीदास को प्राय इन ऋतुओ के वर्णन का ही अवसर मिला हे क्योकि उनके इष्ट की लीला का वर्णन इन्ही ऋतुओ मे आया है और इसलिए उनके उद्दीपन मे यह वर्णन ही उपयुक्त रहे है। यद्यपि उद्दीपन विभाव के वर्णनो मे इतिवृत्तात्मकता अधिक है परन्तु फिर भी उनका यथास्थान वर्णन उद्देश्य की पूर्ति का सहायक है। उसे स्वतन्त्र प्राकृतिक वर्णन के अन्तर्गत नही लेना चाहिए।

अनुभावः—नागरीदासजी भक्त कवि थे अतएव उनके आनन्द की अभिव्यक्ति किसी कायिक अग विकारो के वर्णन-रूप मे नही मिलती। भगवान की लीलाओ को स्मरण कर जिस सात्विक मानसिक आनद की अनुभूति उन्हे हुई है उसका वर्णन उन्होने स्थान स्थान पर किया है।

विहार-चन्द्रिका मे नागरीदासजी ने स्याम-स्यामा की विहार लीला का वर्णन किया है। लीला वर्णन के उपरान्त उनकी भावना इस प्रकार व्यजित हुई है।

नीद भरे तन लटपटे, छके दृगनि की हेर।
नागरिया के हिये वसो, कुंज मुरारी वेर ॥[2]

इसी प्रकार भोर-लीला के प्रसग मे उन्होने कहा हे—

दपति लीला भोर की पढे सुने जो भोर।
जाके हिय निसिदिन रहे, झलकत जुगल किसोर ॥[3]

भोर के पश्चात् प्रात· समय अलसाए नैनो मे कवि का हृदय स्वय फँस जाता है। रात भर की क्रीडा के पश्चात्—

---

१. सिंगार सागर, पृ० २७७
२. वही, पृ. २६५
३. वही, पृ. २६८

छवि झलकें अलकें सिथिल, सब तन सिथिल सिंगार।
सूचत तिय तन सिथिलता, निस दृग लगनि बिहार ॥

फिर भला भक्त क्यो न कहे —

रस उरझी निस स्याम सों. आरस उरझे बैन।
तेरी उरझी अलक मे, मेरे उरझे नैन ॥

भोजन समय की छवि का प्रभाव भी ऐसा ही है। भोजन के उपरान्त बीडी देने के समय कवि उस दृश्य को देखकर अपने नेत्रो को सार्थक समझता है—

अचवनि मे रचवनि भई, हँसि हँसि बीरी दैन।
नीरी नागरिया सखी, लखि सिय रावत नैन ॥[1]

नागरीदास के आनन्द की अभिव्यक्ति इससे अच्छी और क्या होगी ?–

नित्त केलि आनन्द रस, बिच वृन्दावन बाग।
नागरिया हिय मे बसो, स्यामास्याम सुहाग ॥[2]

संचारी भाव—भक्ति काव्य होने के कारण रति के इसी भाव के पोषक सचारी भाव नागरीदास की कविता मे पाये जाते हैं। वैराग्य सागर मे निर्वेद, ग्लानि, व्रीडा, चपलता एव विपाद सूचक आदि अनेक भावो का समावेश है। वास्तव मे ये भाव ही ससार के मोह को छुडाकर आश्रय को भगवद्भक्ति मे लगाते है।

भक्तिमग–दीपिका का आरम्भ ही ससार की असारता और नरदेह की दुर्लभता से हुआ है—

यह औसर चूको मति कोय। यह नरदेह बहुरि नहिं होय ॥
लख चौरासी भोग्य भोग सब। भयो जु नर सुभ जोग अब ॥
ताहि वृथा मति खोय कुढंग। जग-निधि तरन नाव नर अंग ॥
कछु सुभ कर्म अवसि करि लीजे। आतम-घात कहो क्यो कीजे ॥

---

१ सिंगार सागर, पृ. २७०

२. वही पृ २७१

स्वान पूँछ गहे को मतिमंद । छाड़िकृष्ण अति प्रबल गयद ॥
मिटे न दुख किए आन उपाय । वृथा न मन इत उतहिं भ्रमाय ॥
सर्व धर्म कलि मे दुरि भाजे । कर्म धर्म सर्वोपरि गाजे ॥
अनन्य शरन हरि पायन परिये । श्री मुख कृष्ण कह्यो सो करिये ॥[1]

माया से लिप्त गृहस्थी का एक स्वाभाविक चित्र देखिये —

आठ पहर दुख ही मे बीते काय कूय पर जाकी ।
विषे भोग आँछे हूँ नाहि चिंता मे मति छाकी ।
जित तित अपजस दुर दुर घर घर तन मन की अति ख्वारी ।
ऐसो दुखी न त्याग सकें घर माया की गति भारी ॥[2]

माया के इस प्रभाव से बचने के लिए नागरीदासजी ने सतसग की महिमा, भगवद् रसिको का ससर्ग एव सच्चे वैष्णवो का सम्पर्क आवश्यक माना है और तभी मनुष्य का मन कुचालो से बचकर सन्मार्ग पर आ सकता है । स्वय नागरीदासजी को वृ दावन मे यह उद्‌वोध हुआ था । इसलिए उन्होंने कहा है —

किते दिन विन वृंदावन खोये ।
योंही वृथा गए तें अब लों राजस रग समोये ॥
छाडि पुलिनि फूलनि की सज्जा सूल सरनि पर सोये ।
भीजे रसिक अनन्य न दरसे विमुखनि के मुख जोये ॥
हरि बिहार की ठौर रहे नहि अति अभाग्य बल वोये ।
कलह-सराय बसाय भिठारी माया राँड बिगोये ॥
इक रस ह्याँ के सुख तजि के ह्वाँ को कभू हँसे कभू रोये ।
कियो न अपनो काज पराये भार सीस पर ढोये ॥
पायो नहि आनंद लेस मे सबै देश टकटोये ।
नागरीदास बसे कुंजनि मे जब सब विधि सुख भोये ॥५७॥[3]

---

१ वैराग्य सागर, पृ. २-३
२. वही पृ ३५
३. पदसागर, पृ ३८६

अन्त मे मन का प्रबोध और दृढ सकल्प ही उनकी विकलता को शान्त करने मे समर्थ हुआ। ससार से जो वैराग्य उत्पन्न हुआ, देह की नश्वरता और भौतिक असारता का जो ज्ञान उत्पन्न हुआ, उसी ने सारा राजसी ठाट–बाट छुडाकर नागरीदासजी को भक्ति के सिहासन पर आरूढ कर दिया–

कृष्ण कृपा गुन जा तन गायो।
मनहुँ न परस करि सकें सो सुख इनहीं दृगनि दिखायो॥
गृह व्योहार भुरट को भारो सिर पर सो उतरायो।
नागरिया को श्री वृ दावन भक्ति तख्त बैठायो॥५८॥[1]

भक्ति सम्बन्धी चर्चा पहले हो चुकी है। अन्य कवियो की तरह नागरीदासजी ने बाल–लीला एव भ्रमरगीत विपयक काव्य कम लिखा है। जो कुछ लिखा भी है उसका सम्बन्ध सगीत से अधिक है। पदसागर के प्राय· सभी पद किसी न किसी प्रसग मे दोहो की अलाप चारी के लिए लिखे गये है। इसमे संदेह नही कि इन पदो मे से अनेक पद अत्यन्त सुन्दर है जो स्थानाभाव से यहा नही दिये जा रहे है।

बासुरी का एक पद इस प्रकार है:—

अरी बाँसुरी परी है कौन टेव तिहारी।
पैठत आनि आनि काननि मग प्राननि गहत कहारी॥
लोक लाज ग्रह-काज छेटावत सुधि बुधि हरत हमारी।
काहे को बैर करत तू ह्वै के नागर प्रिय की प्यारी॥[2]

सक्षेप मे नागरीदासजी की कविता मे रस के सभी अगो का समावेश हुआ है। अलकारो की छटा उनके अनेक दोहो और सवैयो मे देखने को मिलती है। अनुप्रास और उत्प्रेक्षा उनके प्रिय अलकार है। छन्दो मे उन्होने अधिकतर दोहो को अपनाया है। वैसे छप्पय, चौपाई, कवित्त, सवैया, सोरठा सभी छद उनकी रचनाओ मे मिलते है।

---

१. पद सागर, पृ० ३८६
२. वही, पृ. ४७४

नागरीदास की भाषा–शैली :–

नागरीनासजी की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है जिसके उदाहरण उनके काव्य मे गद्य और पद्य दोनो रूप मे मिलते है। पद्य की भाषा का अनुमान उपरोक्त उद्धृत छन्दो से लग लकता है।

उनका गद्य इस प्रकार है–

'मारवाड मे गाव एक पालरी तामे वैष्णव, एक रामानुजी चतुरदास जू नाम रहे, तिनको खोजी नाम प्रसिद्ध भयो, सो ज्या भाँति खोजी जू नाम भयो सो ताको प्रसग भक्तमाल की टीका मे है, विस्तार ह्वो वे को यामे धर्यो नाही, ये साखी मे तो खोजी नाव धरते, अरु विष्णुपद मे चतुरदास नॉव धरते, सो यह चतुरदास जू एक समे श्रीमदभागवत पाठ करत है, औरहूँ श्रोता बहुत बैठे है, तहा एक कॉजर घूँस ताको कोल कहत है, ताको फँदा लये आय निकस्यो, सरीर की मलीन दसा है, मूँड के ऊपर झवार आखीनि परि आय रहे है, सिर पर छाबडि तामे रोटीन के टूक तथा नाज हैं, अरु मुख ते यह पुकारत है कोई कुडमँडा डैहो, कोई कुड ·· ··· या भाति कॉजर को देखि सव श्रोता हसे, अरु चतुरदास जू आसन छाँडि के दौरे सो वाके पायन मे मूँड जाय दियो, तव सबिनि मिलि कही स्वामी जू बावरे ह्वै गये, वा काजर कै चहूँ ओर सब श्रोता ठाढे हैं, अरु स्वामी दडवत करत है, इतेही वा कॉजर के सरूप भगवान है सो अतरध्यान ह्वै गये, तब चतुरदास जू को प्रभाव सबनि जान्यो, अरु विस्मय रहे, अरु सवे ठौर यह वात बहुत प्रसिद्ध भई।'

यह गद्य वार्ताओ के गद्य की शैली का हे परन्तु अपने रूप मे धारावाहिक और व्यजनापूर्ण है जिससे स्पष्ट पता चलता है कि नागरीदास का गद्य पर भी वैसा ही अधिकार था जैसा पद्य पर।

उनकी शैली मे एक और चीज मिलती है पजावी भाषा मे लिखे गये छन्दो का मिश्रण। उदाहरण के लिए यह पद देखिए .—

नैना लागे बेपरवाही दे नाल।
एक पलक भी कल नहिं पावाँ रहदा हरदम हाल॥
दिन दिन जीदा ज्वॉन असाढा उस नागर दे ख्याल।
नागरिया बँसीवाले दा इस्क नहीं, जजाल॥[1]

---

१ पद सागर, पृ० ४५३

अरणी में जोगन होय कित्थाँ जावाँ मन लेगया बशीवाला।
इन गेलरियां आय के मुज पर फूल चलाय।
इस्क लपेटी बात सो कछु कहि गया मुरि मुस्काय।
जबतें कल पावां नही पल न लगे दिन रैन।
कहर कलेजे मे लगी उन नैनो दी सैन॥
मनमोहन दे कारनें फिरा उवाहि न पाय।
ढूंढां गभरू सांवला गया मन्मथ अलख जगाय॥
रूप उजागर भार बिन रहिंदा नही सयान।
आव गले लगि भावते ये नागर दिलज्यांन॥[१]

ऐसा प्रतीत होता है कि पॅजाबी मिश्रित हिन्दी छन्दो का प्रयोग, नागरीदासजी के युग मे, साहित्य की एक शैली बन गई थी क्योकि नागर-समुच्चय मे रसिक बिहारी की छाप के इस प्रकार के कई छन्द सग्रहीत है। इश्क-चमन मे भी जिस रेखता भाषा को काम मे लाया गया है वह भी तत्कालीन एक शैली ही थी।[२]

सक्षेप मे नागरीदासजी ने अपने समय की प्रचलित भक्तिकालीन और रीतिकालीन सभी शैलियो मे अपने इष्ट की लीलाओ और उनके प्रेम का भरपूर वर्णन किया है। उनकी तल्लीनता देखने योग्य है। राजस्थान का एक कवि इतनी शुद्ध, परिमार्जित ब्रजभाषा लिखे यह लेखक और प्रान्त दोनो के लिए श्लाघनीय है। परन्तु इन सबका श्रेय नागरीदास ने तो अपने इष्ट को ही दिया है।

कीरतदा रानी बृषभान आदि गोप-गोपी,
कैसे धन्य धन्य ह्वै के जग जस पावते।
कौन पत्त करतो या ब्रजवास करिवे को,
कौन बैकुंठहू कै सुख बिसरावते।

---

१. पदसागर पृ० ४२२

२. रेखता विषयक विवेचन ब्रजनिधि के प्रसग मे आगे देखें।

नागरिया राधे जू प्रगट जो न होती तोव,
स्याम परकाम ही के विपती कहावते ।
छाय जाती जड़ता विलाय जाते कवि सब,
जरि जातो रस औ रसिक कहा गावते ।[1]

महाराज सरदारसिंह —

सन् १७६३ ई मे महाराज सावन्तसिंह उपनाम नागरीदास का वृन्दावन मे देहावसान हुआ । अपने जीवन काल मे ही उन्होने कृष्णगढ का राज्य खो दिया था । प्रयत्न करने पर भी वह राज्य की वागडोर अपने छोटे भाई वहादुरसिंह से अपने हाथ मे नही ले सके । अन्त मे हरिदास नामक एक वैष्णव के कहने से वे स्वय वृ दावन मे निवास करने लगे और राज्य लेने का भार अपने पुत्र युवराज सरदारसिंह पर छोड दिया । चचा भतीजो मे अनवन रही परन्तु मरहठो की चढाई के समय आधा राज्य सरदारसिंह को देकर बहादुरसिंह ने परस्पर फैसला कर लिया । दो वर्ष पश्चात् सरदारसिंह भी निस्सतान स्वर्ग सिधारे और परिणाम स्वरूप दोनो भाग पुन एक ही राज्य मे सगठित हो गए । महाराज सरदारसिंह साहित्य के लिए कुछ न कर पाये ।

महाराज बहादुरसिंह :—

सरदारसिंह के पश्चात् वहादुरसिंह समस्त राज्य के अधिपति हुए । वहादुरसिहजी ने अपनी बुद्धिमानी और चतुरता से राज्य की सुन्दर व्यवस्था की । अमीर और गरीव प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी मर्यादा के अनुसार कार्य करता था । इनके समय मे प्रजा वडी सतुष्ट थी ।

महाराज सगीत के अत्यन्त प्रेमी थे । अपने भाई नागरीदास की तरह इन्होंने भी सगीतात्मक कविता की है । वे दो-दो और तीन-तीन तुको के ख्याल और टप्पे अच्छे वनाते थे ।[2] इनकी कविता के कुछ उद्धरण इस प्रकार है—

–: दोहा --

हा हा बदन दिखाय दृग, सफल करें सब कोय ।
रोज[3] सरोजन के परें, हँसी ससी की होय ।।

---

१ सिंगार सागर पृ ३०६–७
२. राजरसनामृत–मुंशी देवीप्रसाद कृत, पृ० ६४
३. रुदन ; रोना

दुलहिन बदन दुरात हौ, क्यो सकुचति सुकुमार ।
सब देखन आतुर भई, चातुर पट निरवार ।।

घूंघट पट खोल्यो सखी, भोरी दृग लटकाय ।
मनो मदन ससि-मीन कूं, डोरी-जाल सुलाय ।।

नव दुलहा नव दुलहनी, नूतन नेह सुहाग ।
नयो महल नव सेजपर, नव नव उलछयो भाग ।।

नायिका के मुख के सौन्दर्य को देखकर कमलनी के घर रुदन होना और चन्द्रमा की हँसी होना मौलिक कल्पना है। इसी प्रकार डोरी का जाल डाल कर मदन द्वारा चन्द्रमा और मछली के सुलाए जाने का भाव भी बडा सुन्दर है।

बहादुरसिहजी काव्य की कुछ अधिक सेवा नही कर पाये। उन्होने डिगल मे कुछ कविताएँ अवश्य लिखी है। साहित्य के स्थान पर राजनैतिक जीवन मे उन्हे अधिक सफलता प्राप्त हुई थी।

महाराज विरदसिह :–

यह अपने पिता के सामने ही गद्दी के स्वतन्त्र मालिक थे परन्तु राज्याधिकार पिता की मृत्यु के उपरान्त ही प्राप्त कर पाये[1]। इनकी राजनैतिक जीवनी का समाचार बहुत कम ज्ञात है। वैसे यह पुष्टीमार्ग के अनन्य भक्तो मे से थे। इनकी हिन्दी कविता का कुछ पता नही चलता। मुशी देवीप्रसादजी ने इन्हे सस्कृत का पडित, कवि तथा फारसी–अरबी का विद्वान बताया है। इन्होने गीत गोविन्द की दो टीकाये (एक बडी और एक छोटी) भी लिखी थी। बडी टीका इतनी गहन है कि अच्छे पडित भी उसमे धोखा खा जाते है। सन् १७८८ ई मे इनका शरीरान्त हुआ।

महाराज प्रतापसिह :—

महाराजा विरदसिह के पश्चात् महाराज प्रतापसिह राज्य के स्वामी बने परन्तु इनका जीवन शाति नही पा सका। राज्य की उलझनो मे वह ऐसे फँसे रहे कि कोई साहित्यिक प्रगति इनके राज्य–काल मे न हो सकी और अन्त मे सन् १७६८ ई मे इनका देहावसान हो गया।

---

१. सन् १७८१ ई०

महाराज कल्याणसिंह :—

इनके राज्य–काल मे बडा उतार–चढाव रहा। परस्पर के कलह के कारण यह जागीरदारो से लोहा न ले सके। परिणामत दिल्ली जाकर रहने लगे। सन् १८१७ ई मे इनके और अग्रेजो के बीच एक सधिपत्र तैयार हुआ जिसके अनुसार आगे चलकर कृष्णगढ मे 'एजेन्सी' स्थापित हुई और जब तक इनका पुत्र पूरी अवस्था तक न पहुँच पाया राज्य का कार्य इसी 'एजेन्सी' के हाथ मे रहा।

महाराज कल्याणसिंह कविता किया करते थे। इनकी एक बधाई प्रसिद्ध है-

आनन्द बधाई नन्द जू के द्वार।
ब्रह्मा विष्णु रुद्र धुन कीनी तिन लीनो अवतार॥

जनमत ही घर घर प्रति लक्ष्मी बांधत बदनवार।
भूप कल्याण कृष्ण जन्महि पे तन मन कीनो वार॥

महाराज मुहकमसिंह :—

यह महाराज सन् १८३२ मे बालिग होने पर गद्दी पर बैठे। सन् १८४० ई मे ही इनका शरीरान्त हो गया। इनके राज्यकाल मे साहित्यिक प्रगति के कोई चिह्न दृष्टिगत नही होते।

महाराज पृथ्वीसिंह –

सन् १८४१ ई मे गद्दी पर बैठे। अपने ३८ वर्ष के दीर्घकाल मे महाराज के साथ अनेक घटनाएँ घटी जिनका ऐतिहासिक मूल्य अधिक है साहित्यिक कम। सन् १८५७ के स्वतत्रता सग्राम मे इन्होने अग्रेजो का साथ दिया और व्यक्तिगत सम्मान प्राप्त किया। यह परम वैष्णव थे। अपने गुरु की वशावली इन्होने इस प्रकार लिखी है—

श्री महाप्रभू वल्लभ प्रगटे जिन सुत बिट्ठलनाथ।
जिनके श्री गिरधरजी प्रगटे उनके गोपीनाथ॥

श्री प्रभूजी जिनके भये फिर रनछोड़ सुजान।
उनके जीवन जी भये, विठ्ठलनाथ प्रमान॥

उन सुत वल्लभ जी भये, फिर श्री विठ्ठलनाथ।
करि करुणा मा कलि मही मोकूं कियो सनाथ॥

जिनके सुत रणछोड़ जी, है कुंवरन सिरमोर।
इनको वंश वधो बहुत, यह असीस कर जोर ॥

महाराज पृथ्वीसिंह का शरीरान्त सन् १८८० ई मे हुआ। उनके उपरान्त महाराज शार्दूलसिंह, महाराज मदनसिंह, महाराज यज्ञनारायणसिंह और महाराज सुमेरसिंह कृष्णगढ के क्रमश अधिकारी राजा हुए परन्तु इनके राज्यकाल मे कोई विशेष साहित्यिक प्रगति नही हुई।

: ६ :

जयपुर का राजघराना

जयपुर से पहले इस राज की राजधानी ग्रामेर थी। ग्रामेर के नाम पर ही जयपुर राज्य के अधिकारी, ग्रामेर के राजाग्रो के वशज कहलाते हैं। ग्रन्य वशो की तरह ग्रामेर के कछवाहे राजा भी ग्रपने पूर्वजो को वहुत प्राचीन वताते हैं। ग्रामेर के पुराणयुगीन इतिहास से हमारा कोई सम्वन्ध नही है ग्रतएव उसकी चर्चा यहा निरर्थक है।

ग्रामेर की स्थापना करने वाले श्री ईशदेवजी माने जाते हैं जो देवनीक के पुत्र ग्रौर ग्रामेर वश के ग्रादि पुरुप थे। ईशदेवजी के देहावसान की निश्चित् तिथि ग्रभी तक भी प्रामाणिक रूप से प्राप्त नही है परन्तु सर्वाधिक मान्य मत यह है कि पिता की मृत्यु के उपरात सन् ६६६ ई के लगभग सोढदेवजी ग्रामेर के सिहासन पर वैठे। उनके पश्चात् लगभग २३ पीढियाँ ग्रामेर के सिहासन पर ग्रासीन हुई जिनमे भगवतदास का नाम उल्लेखनीय है।

भगवतदासजी भारमल्ल के उत्तराधिकारी थे। ग्रकवर वादशाह ने भारमल्ल की सेवाग्रो से प्रसन्न होकर उन्हे ग्रपने सिहासन का रक्षक वनाया ग्रौर ग्रनेक उपाधियो से विभूपित किया। ग्रतएव भगवतदासजी स्वामिभक्ति की इन्ही परम्पराग्रो को लेकर ग्रपने जीवन मे ग्रग्रसर हुए।

महाराज भगवतदास सम्राट ग्रकवर के सच्चे हितु ग्रौर पक्षपाती थे। ग्रपने पुत्र मार्नासिह को उन्होने ग्रकवर के पास ही छोड रखा था। महाराज मार्नासिह के जीवन की ग्रनेक घटनाग्रो से सभी परिचित हैं। इन्ही के साथ महाराणा प्रताप की ग्रनवन हो जाने से हल्दी–घाटी का युद्ध हुग्रा था।

महाराजा मार्नासिह (राज्यकाल सन् १५८९–१६१४ ई) पहले राजा थे जिन्होने ग्रकवर का साथ दिया था ग्रौर उसके विश्वास पात्र वनकर ग्रपनी एव मुगल राज्य की उन्नति की। महाराज जैसे वीर ग्रौर प्रतापी थे वैसे ही उदार भी थे। उनके प्रताप के विपय मे विहारी कवि का यह छद प्रसिद्ध हे—

महाराज मानसिंह पूरब पठान मारे
शोणित की सरीता अजो न सिमटत हैं।
सुकवि बिहारी अजो उठंत कबन्ध कूदि
अजो लग रणतें रणोई ना मिटत हैं।
अजों लो चहेलें पेशाचनतें चौंक चौंक
सची–मघवा की छतियाँ तें लिपटत है।
अजो लो ओढें है कपाली आली आली खालें
अजो लग काली मुख लाली ना छुटत हैं।[1]

वीरता की तरह मानसिहजी की उदारता की अनेक घटनाएँ प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि कवीश्वर को एक आदमी के एक हजार रुपये देने थे। जब कवीश्वरजी उससे तग आ गये तो महाराज मानसिह के ऊपर एक हुण्डी कवित्त मे लिखकर उसे दें दी और कह दिया कि राज–कोष से ले लेना। हुण्डी इस प्रकार थी–

सिद्ध श्री मानसिह कीरत विशुद्धभई,
जो लो करौ राज जों लौं भूमि तिरबेनी हैं।
रावरी कुशल हम सिसुन समेत चाहे,
घरी घरी पलपल यहां हूँ सुचेनी है।
हुण्डी एक तुम पर कीनी हैं हजार की सो,
कविन की राखो मान साह जोग देनी है।
पहुँचे परिमान मानवंश के सपूत,
मान रोक गिन देनी जस लिख लेनी है।

हुण्डी के पहुँचते ही मानसिह ने हुण्डी सकार दी और उत्तर मे एक दोहा उन कवीश्वर महाराज को लिख भेजा—

इतै हम महाराज हैं, उतै आप कविराज।
हुण्डी लिखि हजार की, नेक न आई लाज॥

---

१. राज रसनामृत, मुंशी देवीप्रसाद कृत, पृ. २८

इसी प्रकार की घटना उनके जीवन मे और भी बताई जाती है। महाराज की वडी रानी गौडजी ने एक दिन अपने महल मे वडा उत्सव किया और महाराज के पूछने पर कहा कि मेरे पिता ने एक चारण को करोड पसाव दान दिया था। महाराज कहने लगे 'इसमे क्या आश्चर्य है, राजा लोग देते ही रहते है।' रानी कहने लगी 'महाराज कहने और करने मे वडा अन्तर है।' यह सुनकर महाराज चुप हो गये। दूसरे दिन छ चारणो को उन्होंने छ करोड पसाव दान दिया। इन भाग्यशाली चारणो के नाम इस प्रकार हैं—हरपाल, दुरसा, नरू, ईसर, किशनदास और डू गरसिह।

महाराज की दान प्रियता का इससे अच्छा प्रमाण और क्या हो सकता है ? एक[1] कवि ने उनके विपय मे कहा है-

वलि वोई कीरति-लता, करण करी द्वै पात।
सींची मान महीप ने, जव देखी कुमलात॥

महाराज स्वय कवि नही थे परन्तु उनके दरवार मे कवियो का वडा सम्मान था। एक वार उनके मन मे लका विजय की भावना उत्पन्न हुई। लोगो ने वहुत समझाया परन्तु उनकी समझ मे एक वात न वैठी। राजमाता को चिंता होगई। उन्होंने वारहटजी को वुलाकर कहा कि इस सकट से अव वह ही वचा सकते है। वारहटजी महाराज का हठ जानते थे। कहने लगे उद्योग करूँगा। दशहरे के दिन जव चकू का डका वजा तो महाराज के सामने आकर वारहटजी ने एक सोरठा पढा—

रघुवर दीन्ही दान, विप्र विभीषण जानके।
मान महीपति जान दियो दान किमी लीजिये॥

महाराज के मन मे तत्काल यह वात समा गई कि जिस लका को हमारे पूर्वज राम ने विभिपण को दान मे दिया उस दान की वस्तु को पुन लेना उचित नही। यह सुनकर कूच की आज्ञा रद्द करदी गयी और राजमाता की मन चाही हो गई। कवि का प्रभाव अभिव्यक्त होगया। इस कथा मे चाहे जितना भी सत्य हो परन्तु महाराज की दानप्रियता, वश गौरव की रक्षा और दूरदर्शिता का आभास तो मिल ही जाता है।

---

१ हरनाथ कवि

उनका व्यक्तित्व साहित्यिक प्रगति के लिए बडा सहायक था और इसलिए कोई आश्चर्य नही जो कवियो ने उनकी वीरता आदि को अपने शब्दो मे यह कहकर चिरस्थायी कर दिया कि—

जननी जनै तो ऐसो जनै, जैसो मान मरद्द।
समदर खाण्डो पखालियो, काबुल बॉधी हद्द ॥[1]

सन् १६१४ ई मे मानसिंह का शरीरान्त हुआ। मानसिंह की मृत्यु के उपरात उनके छोटे पुत्र भावसिह आमेर के राजा हुये क्योकि मानसिंह के बडे पुत्र जगतसिंह का पहले ही देहावसान हो चुका था और जगतसिंह के पुत्र महासिंह को दक्षिण मे राजा बना दिया गया था।

भावसिह का राज्य काल अधिक दिनो तक नही रहा। सन् १६२१ मे वह देवलोक सिधारे। किसी प्रकार की सास्कृतिक अथवा साहित्यिक प्रगति उनके राज्य काल मे नही हुई।

भावसिंहजी के पश्चात् उनके बडे भाई जगतसिंह के बडे बेटे महासिह के पुत्र जयसिह (प्रथम) को राजगद्दी पर बिठाया गया। इन महाराज का व्यक्तित्व बडा महत्वपूर्ण था। इन्होने ही शिवाजी को अपने वाग्जाल मे फँसाकर उन्हे दिल्ली बुलाया था जहाँ से वह निकल भागे थे। अपनी कुशलता, कुशाग्र बुद्धि और राजनीतिक पटुता के कारण मुगल-दरबार मे जयसिह का विशेष सम्मान था। अनेको मुगल उनसे घबराते थे। यही जयसिह 'मिर्जा जयसिह के नाम से सुविख्यात है।

अपने पूर्वजो की साहित्य प्रेरणा की परम्परा को महाराज जयसिह ने ही स्थायित्य प्रदान किया। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि बिहारीलाल महाराज जयसिह के आश्रित कवि थे। सतसैया के दोहे महाराज की काव्य-प्रियता के उज्जवल प्रमाण है। यद्यपि एक प्रभाव यह भी प्रचलित है कि सतसई की वास्तविक रचना बिहारी ने नही वरन् उनकी पत्नि ने की[2] थी। परन्तु इसमे कोई तथ्य मालूम नही होता।

---

१. दूसरी पंक्ति का अभिप्राय खभात के युद्ध से है जहां पहली बार समुद्र के किनारे खड्ग से युद्ध हुआ था।

२. 'बिहारी' लेखक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

जयसिंह का व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य की एक महानतम कृति की रचना के लिए उत्तरदायी है और उनकी यह सेवा स्वर्णाक्षरो मे लिखने योग्य है।

सन् १६६७ ई मे जब महाराज स्वर्गवासी हुए तो महाराज रामसिंह उनके उत्तराधिकारी हुए। अपने पिता के समान यह भी निडर और वीर राजा थे। महाराज शिवाजी इन्ही के समय औरगजेब की जेल से निकल भागे थे। इनके समय मे किसी विशेप साहित्यिक प्रगति का पता नही चलता। यह अवश्य है कि इनके दरबार मे कवियो को आश्रय सदैव मिलता रहा। कुलपति मिश्र, जिन्होने 'सग्रामसार' लिखा है, इन्ही के दरबार मे रहते थे। 'सग्रामसार' मे महाभारत के द्रोण पर्व का सार कविता मे लिखा है। महाराज की मृत्यु (सन् १६८६) के पश्चात् महाराज विष्णुसिंह राज्य के स्वामी हुए। कुलपति मिश्र की दूसरी पुस्तक 'दुर्गाभक्ति चन्द्रिका' इन्ही की आज्ञा से लिखी गई थी। सन् १६९९ मे काबुल मे इनका वैकुण्ठवास हुआ। इनके पश्चात् महाराज जयसिंह (द्वितीय) गद्दी पर बैठे। कहा जाता है कि राज्याधिकारी होने के उपरान्त जब वह औरगजेब के सामने गये तो उसने दोनो हाथ पकड कर इनसे पूछा 'अब तुम क्या कर सकते हो ?' महाराज ने तुरन्त उत्तर दिया कि 'जब एक हाथ पकडाई हुई औरत सब कुछ कर सकती है तो फिर दोनो हाथ पकडाया हुआ मर्द क्या नही कर सकता ?' इस उत्तर को सुनकर जयसिंह महाराज को 'सवाई' की उपाधि मिली[1]। महाराज जयसिंह का व्यक्तित्व बडा प्रभावशाली था। वर्तमान जयपुर नगर के बसाने वाले यही जयसिंहजी थे।[2] यह महाराजा हिन्दी, सस्कृत और ज्योतिष के प्रकाण्ड पडित थे। ज्योतिष के विद्वानो का इनके दरबार मे अच्छा जमाव रहता था। सन् १७४३ ई मे इनका शरीरान्त हो गया और इनके उत्तराधिकारी महाराज ईश्वरसिंहजी हुए। यह शतरज के अद्वितीय खिलाडी थे।

महाराज ईश्वरसिंह सन् १७५० मे निस्सन्तान स्वर्ग सिधारे। इनके पश्चात् इनके भाई माधवसिंहजी गद्दी पर विराजमान हुए। यह महाराजा बडे हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर व्यक्ति थे। इनकी वेष - भूषा का ठाट - बाट निराला था। प्रसिद्ध 'हवा महल' इन्होने ही बनवाया था। सन् १७६७ ई मे इनकी मृत्यु हो गयी और इनके बडे पुत्र पृथ्वीसिंह, जो उस समय केवल ५ वर्ष के थे, राज्य के अधिकारी हुए।

---

१ जयपुर का इतिहास–ले० हनुमान प्रसाद शर्मा, पृ० १६७

२ सन् १७२७ ई०

इन्होने ११ वर्ष तक राज्य किया और उसके पश्चात् इनके छोटे भाई महाराज प्रतापसिंह गद्दी पर विराजमान हुए।

महाराज प्रतापसिंहजी (सन् १७६४ ई०–१८०३ ई०) का व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य के लिये बडा उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। वह केवल आश्रयदाता ही नही वरन् स्वय उच्चकोटि के कवि थे और कविता मे 'व्रजनिधि' उपनाम से कविता करते थे।

प्रतापसिंह जी का आरम्भिक जीवन सघर्षो से टक्कर लेने मे ही व्यतीत हुआ। इनकी वीरता का प्रमाण इनके द्वारा दी गई मराठो की पराजय थी। जोधपुर के महाराज विजयसिंहजी की सहायता से इन्होने मराठो को वह हार दी (सन् १७८६ ई०) कि चार वर्षों तक सिंधिया ने जयपुर की तरफ मुँह तक नही किया। नाथूराम कवि ने इस युद्ध का वर्णन करते हुए लिखा है—

> **इतें हिंदनाथ श्री प्रताप कर बान भाले,**
> **उते माथ साथ झिले आसमान भीर से।**
> **महा घोर वीर जुद्ध ऊँची करने न लागे,**
> **कूँचि करने न लागे कायर अधीर सें।**
> **कटिगे कटीले जेते रावत हठीले रुके,**
> **सटिगे सदल के पटेल मुख पीर से।**
> **मारे खड्गवारे इन सुभटन के ठट्ट परे,**
> **मूँड मरहट्टन के खेत मे मतीर[1] से।**

परन्तु महाराज का मन युद्धो मे न लग कर भगवद्भजन मे अधिक लगता था। श्री गोविन्ददेवजी इनके इष्ट थे।

महाराज प्रतापसिंह उपनाम व्रजनिधि' की रचनाये :—

'प्रीतिलता'—छोटी सी रचना है जिसमे ८२ छन्द है। छन्दो मे दोहा और सोरठा व्यवहार मे लिया गया है।

---

१. तरबूज।

विषय 'राधा–कृष्ण' केलि कौतुक है। बीच बीच मे गद्य का भी प्रयोग किया गया है। अपनी सखियों को लेकर राधा यमुना स्नान के लिये जा रही थी। मार्ग मे कृष्ण मिल गये और रास्ता रोककर खडे हो गये। स्वय इस व्यवहार पर राधा ने कुछ न कहकर सखी से कहलवाया–'यह ठठोल अच्छी नही, जगह जगह मार्ग रोकना अनुचित है।' कृष्ण ने मार्ग छोड दिया। दोनो ओर प्रीति का अँकुर प्रकट हो गया। सखी ने राधा को इस प्रकार समझाया—

झुकि झाकति झिझकी करती, उझकि झरोखनि बाल।
छिन लखि दृग उन मय भए, छके छबीले लाल[1] ।।६।।

कृष्ण के प्रति राधा की यह उत्सुकता और उन्हे देखने के बाद कृष्ण–मय हो जाना स्वाभाविक ही था और फिर राधा को अपने प्रेम का प्रतिपादन भी तो मिल गया। कृष्ण की अवस्था का वर्णन कर सखी ने विश्वास दिलाया—

छाँह लखत चकृत भये, रहे जो रूप निहारि।
छैला–नंद छके हियें, रहत छांह की लारि[2] ।।१०।।

राधा मान गयी। उनके मन मे भी प्रेम अँकुरित हो चुका था। अब केवल एक ही बाधा थी–कुल–मर्यादा की रक्षा।

गुरुजन की तरजन[3] बहुरि, कलुख लगें कुल कानि।
प्रीति रीति मोहू हियें, पै किमि मिलौ सु आनि[4] ।।२०।।

राधा के प्रेम भाव की अभिव्यजना होते ही कृष्ण की दूतिका ने अवसर को उचित समझकर कृष्ण की विरह दशा का निवेदन करना आरम्भ कर दिया—

हाय हाय मुख तें कढै, आहि आहि हिय माहि।
जाहि जाहि यह जिय रटै, रहे दरस बिन नाहिं[5] ।।२२।।

टेढि छबि टेरत रहैं, टाक टाँक दिल टूक।
रहे टकटकी टरत नहिं, टिके न हिय मे हूक[6] ।।३५।।

तत्पश्चात् दौडी दौडी कृष्ण के पास गयी और एक अन्योक्ति द्वारा नायक के प्रति नायिका के प्रेम की अभिव्यंजना कर दी—

---

१ प्रीतिलता, पृष्ठ २
२ वही, पृष्ठ २
३. फटकार
४. प्रीतिलता, पृ० ३
५ वही, पृ० ४
६. वही, पृ० ५

सोनजुही तुव गुन बँध्यौ, रह्यो भौंर मँडराय ।
छुटें रसिक पुनि होयगो, उत गुलाब बिकसाय[1] ॥३८॥

अपने विषय मे कृष्ण के प्रेम की सूचना ने राधा पर पूर्ण प्रभाव डाला। गर्व की भावना मन मे जाग उठी। मान का उदय हुआ। सखी मनाने लगी—

'राधें भानु–किसोरि, तुम बिन लालन दृग भरत ।
अब चितवो उन ओरि, विरह ताप मे ही जरत ॥३६॥
ढोलन आये आज, अब ढिग क्यो तुम चलत नहि ।
ढील करत बेकाज, ढीठपनो तो छाँडि कहि ॥४०॥
मधुप-पुंज को गुंजरित, मुकुलित सुम[2] मधुमास ।
मान मति करै माननी, पिय सँग करहु विलास[3] ॥४६॥
छिमा करैं अब छबिभरी, छोह करौ निरवार ।
छके रूप छाये खरे, छैल छबीले ग्वार[4] ॥४८॥

राधा कब तक न मानती। उसे झुकना ही पडा। मन मे स्वय भी तो प्रिय के दर्शन की उत्कठा थी। प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और ललिता को यह कार्य सौपा गया कि नद लला को लाकर दोनो का मिलन करादे। कृष्ण बुलाए गये, आते ही उन्होने राधा का चरण स्पर्श किया और हाथ मे राधा का हाथ लेकर अपने अपराध की क्षमा याचना करने लगे। वहा क्या देर थी ?

'पीर–प्रेम पहचानि के, छिमाकरी मुसकाय' ॥६१॥

सारा वातावरण आनन्द से खिल उठा। उपयुक्त अवसर पर सखियो ने दोनो को 'रहम-आनद' के लिये निकुंज मे छोड दिया और भोर होते ही राधा से कहने लगी—

'फूली फूली फिरति री, फूले फूल निपुंज ।
फली फली तो मन रली, फैली पायनि कुंज[5] ॥५३॥

इस मिलन के उपरान्त—

रस बसि छकि दम्पति दुहू कीन्हे विवध विलास ।

और भक्तों के हृदय में—

सो सुमिरन करि करि बढ़ै, हिय मे अधिक हुलास ।

---

१ प्रीतिलता, पृ० ५ २. कुसुम ३ वही पृ० ६
४. प्रीतिलता, पृ० ७ ५ प्रीतिलता, पृ० ८

इसी लीला की पुनरावृत्ति हुई और इस प्रेम की तल्लीनता को देखकर सखिया परस्पर चर्चा करने लगी। किसी ने राधा के अनन्य प्रेम की सराहना की और किसी ने कृष्ण की विभोरता का प्रमाण देते हुए कहा—

नीलावर को ध्यान धरि, भये स्याम अभिराम।
पीत बसन धारे रहैं, प्रिया वरन लखि स्याम ॥६१॥[1]

कृष्ण के 'श्याम' वर्ण और 'पीताम्वर' धारण करने का कारण भी मिल गया। दोनो मे राधा रानी का आधिपत्य स्पष्ट प्रगट हो रहा है। गौर वर्ण पर नीलाम्वर की शोभा कृष्ण के मन मे ऐसी आई कि उन्होने अपने शरीर को ही उसी रग मे सरावोर कर दिया और राधिका के पीले वर्ण की सुरक्षा पीताम्वर धारण कर सदा के लिये कर डाली। अलौकिक प्रेम का यह प्रदर्शन और कहाँ मिल सकता है?

भक्तो की भावना ने एक और स्थान पर कृष्ण के श्याम वर्ण होने का कारण एक गोपिका से कहलवाया है—

कजरारी अँखियान मे वस्यो रहत दिन रात।
प्रीतम प्यारे हैं सखी! यातें सांवल गात॥

'प्रीतिलता' मे राधा-कृष्ण की इस अनन्य प्रीति का ही वर्णन है। लेखक उसे वडा भाग्यशाली मानता है जिसे इस सरस सुख एव तत्सम्वन्धी सखियो के सवाद को सुनने का अधिकार प्राप्त हो जाए। क्योकि साम्प्रदायिक दृष्टि से भक्ति का वही अधिकारी है जो कृष्ण की भक्ति मे आत्म-निवेदन कर उनके अनुग्रह पर ही सव कुछ छोड देता है।

सनेह-सग्राम -यह भी एक छोटी सी रचना है। इसमे कुण्डलियो की सख्या कुल मिलाकर २६ है। रूपक अलकार की प्रधानता हे।

विपय राधाकृष्ण-प्रेम-वर्णन ही है। परन्तु इस रचना मे लेखक ने परस्पर की प्रीति को सग्राम का रूप दिया है। पक्ष-प्रतिपक्ष के आघात और प्रत्युत्तर का रूपक, सग्राम की सभी सामग्री को एकत्रित कर, उपस्थित किया गया है। राधारानी अपनी अट्टालिका पर मोर्चा लगाकर वैठी है। उनका विचार कृष्ण पर प्रहार करने का है। समय आते ही उन्होने अपनी अट्टालिका (मदनगढ) का द्वार खोला, लक्ष्य सधान किया और एक दम दो गोलिया (आँखो की) दाग दी। गोलियाँ ठीक निशाने

---

१ प्रीतिलता, पृ ६

पर लगी । कृष्ण का तन-मन और प्राण सब एक साथ ही छिद गये, सुध-बुध भाग गई और वह विरह्-ज्वाला से दग्ध हो गए । वह तो अच्छा हुआ जो अपनी मुस्कान-सुधा से राधा उनके घावो को सीचती रही अन्यथा प्राण-पखेरू कब का उड गया होता। राधा कभी लक्ष्य सधान करती, कभी अपने घायल को देखकर उसे ढाढस भी बँधा देती । उनके नेत्र, कभी गोला बनकर वार करते, कभी धनुषधारी बनकर तीर चलाते, कभी 'गुप्ती' और तलवार का वार करते, कभी तत्र-मत्र से सुसज्जित होकर काम-कटार फेकते, कभी उनकी दृग बरुनियो से करद चलती और वे फिर मुस्कान-मरहम से घावो को शाँति देती । राधा के नेत्र 'बर्छी' के समान कृष्ण के मर्म पर जाकर लगते और उन्हे बेसुध कर डालते, उनकी भोहे 'गुलेल' की तरह नद-नदन पर पाषाण प्रहार करती, कभी वे नेत्र विष-बुझे बाण बनकर दुख देते[1] । कभी खजर होकर अपनी नोक चुभाते । अपनी सखियो के साथ जब राधिका नृत्य करती हुई सामने आती तो ऐसा प्रतीत होता मानो प्रतिपक्षी को फँसाने के लिये नये 'व्यूह' की रचना हो रही है और हाव-भाव के घोडे दौडाये जा रहे है ।

नृत्य की पुन्य वर्षा कृष्ण के लिए छर्रों का काम करती और फिर राधा अपने घूँघट मे से देखती जाती कि प्रभाव क्या और कैसा पड रहा है[2] ? यही क्रिया निरन्तर चलती रही । रात के समय उन्होने शुभ्र, धवल वस्त्र धारण किया । उनकी मुख-चन्द्रिका ब्रह्मास्त्र की तरह कृष्ण को अपने जाल मे फाँसने लगी-

संक्षेप मे उदाहरण

राधे आज उमंग सौं सजे सलौने अग ।
मानो मैन-महारथी चढ़यो करन रस-रंग ।।२०।।[3]

परन्तु कृष्ण भी कम नही थे

नेही ब्रजनिधि - राधिका दोऊ समर-सधीर ।
हेत-खेत छाँडत नहीं छाके बाँके वीर ।।[4]

---

१. तुलना कीजिये - नावक ने तेरे सैद न छोड़ा जमाने में ।
तड़पे हैं मुर्ग क़िबला-नुमा आशियाने मे ।।

२. मानो कोई लहर उठ उठकर देख रही है-
सर उठाकर देखती हैं किसको मौजें बेक़रार ।
मरने वाला तो कोई आया लबे साहिल नहीं ।।

३. सनेह-संग्राम, पृ १८

४. वही, पृ २०

छाके बाँके वीर हथ्थ बथ्थन भरि जुट्टे ।
दोऊ करि करि दाउ घाउ छिनहू नहिं छुट्टे ।।
यह सनेह-सग्राम सुनत चित होत विदेही ।
'पता'[1] पते की बात जानिहैं सुघर सनेही[2] ।।२५।।

प्रतापसिहजी ठीक ही कहते हे-जो सुघर सनेही है वही राधा-कृष्ण के इस स्नेह-सग्राम को समझ सकते है ।

'फाग रग' :—छोटी रचना है । कुल मिलाकर इसमे ५३ छद हैं । ये छद कई प्रकार के हे । विशेपकर इसमे दोहे, सोरठे सवैये ग्रौर कवित्ता का प्रयोग किया गया हे ।

विषय 'प्रिय-प्यारी' का फाग वर्णन है । फाग का महीना ग्रा गया है । भौंरो के झुँड ग्रौर कोयले निरँतर कोलाहल कर रहे हैं । नव पल्लव पल्लवित हो रहे हैं, पुष्प खिल रहे हैं । ऋतुराज का ग्रागमन ग्रौर कृष्ण की ग्रनुपस्थिति राधा को व्याकुल बना रहे है । साधारण नायिका की भाति वह भी कल्पना कर रही है कि जिस देश मे प्रियतम चले गये है सभवत वहा वसंत होता ही नही, फिर उसकी सुध उन्हे ग्रावे तो कैसे ? इस प्रसग का वर्णन होते ही व्रजराज ग्रा धमके । फिर क्या था दोनो ग्रोर फाग विहार होने लगा । प्रेम- मग्न राधा ग्रपनी सखी से कहने लगी-

लाज पाज[3] सब तोरि कै, ग्रब खेलौंगी फाग ।
छैल छवीले सो दुसौ, प्रगट करौं ग्रनुराग[4] ।।६।।

कितने दिनो की ग्राशा पूर्ण करने का समय ग्राया है । लाज रूपी पिंजरे मे राधा कैसे रह सकती है ? एक ग्रोर प्रकृति का ग्राह्वान, दूसरी ग्रोर हृदय का झुकाव । सम ग्राते ही सगीत ग्रारम्भ हो गया । चदन, चोवा, ग्ररगजा, लाल गुलाल ग्रादि सभी का उपक्रम किया गया । थाल के थाल गुलाल से भर दिये गये । मटकियो मे केसरिया रग उँडेल दिया गया । एक ग्रोर से मुरली बजी तो दूसरी ग्रोर से चग ग्रौर नूपुर झँकरित होने लगे । समा जमने लगा । इसी बीच राधिका की सखी किसी काम से नदगाँव गई । फाग मे मस्त ग्वालो ने उसे रग मे रग दिया, गुलाल

---

१. प्रतापसिह
२ सनेह सग्राम, पृ. २०
३ पिंजरा
४ फागरग, पृ २३

लगा कर उसे पद्मरागा बना डाला । समाचार बरसाने मे पहुँचा तो राधिका की टोली विचलित हो चली । सभी ने सोचा इस अशिष्टता का प्रतिशोध लेना चाहिए । सब नदगॉव की ओर चल पडी । दोनो टोलिया सामने आ डटी । घमाचौकडी मच गई ।

रसभरी होरी बरसाने की गलिनु मची,
उत नँदलाल इत भानु की दुलारी है ।
केसरी-कमोरी गोरी ढोरें लाल अग पर,
उतै ग्वाल-मडल तें छूटें पिचकारी है ।
अबिर गुलाल की घुमंड ब्रजनिधि-छए,
हो हो होरी कहत हँसत देत तारी है ।
गावें गीत गारी चँदमुखी जुरि आईं सारी,
रवि न निहारी तिन लाज पाज डारी हे[1] ॥३७॥

परस्पर मिलन और 'अकवानि' का लेखक ने अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है । होरी समाप्त हुई तो कृष्ण ने उन्हे 'फगुवा' दिया । नदगॉव और बरसाने का यह सम्बन्ध स्वीकृत सम्बन्ध का प्रतीक हुआ । ऐसे फाग का क्या कहना ?

विधि-'वेद-भेदन' बतावत अखिल बिस्व,
पुरुष पुरान आप धार्‌यो कैसो स्वॉग बर ।
कइलासवासी उमा करति खवासी दासी,
मुक्ति तजि कासी नाच्यौ राच्यौ कैयो राग पर ।
निज लोक छॉड्‌यो ब्रजनिधि जान्यो ब्रजनिधि,
रंग रस बोरी सी किसोरी अनुराग पर ।
ब्रह्म लोक वारौं पुनि शिवलोक वारौं और,
विष्णुलोक वारि डारौं होरी ब्रजफाग पर[2] ॥४७॥

'प्रेमप्रकाश' —इस रचना मे ५६ छद है । अधिक दोहे कुछ सोरठे हे । एक कुण्डलिया भी है । स्नेहियो की लीला परम्परा होती है । जैसा मन मे भाव पैदा हो जाय, उसी की वे अभिव्यजना कर डालते है । राधा भी कृष्ण की ऐसी ही एक प्रेमिका थी । एक दिन उनकी सखी ने राधा से कहा—

---

१ फागरग, पृ २६-३०
२ वही, पृ ३२

उझकि झरोखनि झाँकिये, झर्झरिन हूँ नव बाल ।
लाल लटू ह्वै जाइगे, तुव लखि रूप रसाल ।।४।।[1]

राधा तो पहिले से ही कृष्ण के लिए आतुर थी । अवसर मिलते ही सखी के सामने अपना व्यथित हृदय खोल बैठी । पहले अपने दुख का हाल सुनाया और फिर कहने लगी—

चित्त चटपटी करि गये, ब्रजनिधि रूप दिखाय ।
जहँ तहँ उनहीं कौ लखौं, और न कछु सुहाय ।।८।।[2]

शुद्ध हृदया सरल बालिका और किन शब्दो मे अपने सात्विक प्रेम को प्रगट करती ? आगे चलकर तो उन्होने यहाँ तक कह डाला कि —

चित्त धरै नहिं धीर, अँसुवन अखियां झर लग्यौ ।
ब्रजनिधि हे बेपीर, मन तो उनके रंग पग्यौं ।।१७।।
लगनि लगी री आनि, नँद-नदन सो रुचि वढी ।
भावै खान न पान, अँखियनि[3]-रह सुरति चढ़ी[4] ।।१८।।

आँखो की राह से हृदय मे घुसने वाले कितना कष्ट देते है ? उनका हर हाव-भाव दिल के टुकडे-टुकडे कर डालता है जैसे कृष्ण का नृत्य-चातुर्य और राधा की कला-रसिकता । चकोर की तरह व्रज-चन्द की ओर उसका आकृष्ट होना कितना स्वाभाविक है । इस आकर्षण मे मोह का रोग नही था और न ही था रूप का उन्माद । यह विशुद्ध प्रेम का सदेश था जिसमे अपने प्रिय के लिए एक दृढ सकल्प मिला हुआ था । इसी के वशीभूत हो राधा कह रही थी—

प्रीतम तुमरे हेत, खेत न तजिहैं प्रीति कौ ।
प्रान काढि किन लेत, तजिहैं पै भजिहैं नहीं ।।४४।।

लेखक ने प्रेम का यही प्रदर्शन 'प्रेम-प्रकाश' मे किया है ।

'मुरली-बिहार' —इस रचना मे केवल ३३ छद है । दोहा और सोरठा छदो का प्रयोग किया गया है । विपय मुरली का प्रभाव और उसके प्रति गोपिकाओ का भाव-प्रदर्शन है । आरम्भ मुरली के प्रति उपालम्भ से होता है । एक तो वन मे उत्पन्न 'बास की टुकरिया' और फिर मोहन की अधर धरी बाँसुरी को गर्व क्यो न हो ?

---

१. प्रेम-प्रकाश, पृ ३४
२. वही, पृ ३४
३ आँखोकी राह से
४. प्रेम-प्रकाश, पृ ३५-३६

मोहन कर लै अधर धर, कान हूँक दह तोहि।
तातें गरजै गरब कर, मनमानी तू होहि ॥३॥

यह वासुरी क्या क्या गजब ढाती है ?:—

बाजत बल ज्यो बंसुरिया, राग-बाज फहराय।
तान-चूँच सो पकरि कै, चित-चिरिया ले जाय ॥८॥

बासुरी से निकला हुआ राग एक बाज़ पक्षी है, उसकी तान ही इस पक्षी की चोच है और यह बाज चित्त रूपी चिडिया को पकड़ कर ले जाता है। बडे स्वाभाविक रूपक द्वारा कवि ने गोपियो के हृदय की व्यथा का वर्णन किया है। यही मुरलिका मोहन के अधर-रस को पीकर ऐसी लवलीन हो गई है कि उसके प्रभाव से थिर चर हो गये और चर, थिर हो गए। रास के प्रभाव का वर्णन सभी भक्त कवियो ने इसी प्रकार किया है। प्रकृति की यह विपमता भगवान की अद्भुत लीला का प्रमाण माना जाता है।

'मुरली-विहार' मे मुरली के प्रति गोपियो का तर्जन-गर्जन, और अनुनय-विनय, सभी भाव बडे सरस रूप मे प्रगट हुए है। इसी कारण स्वय लेखक ने मुरली के रस को 'प्रेम-परिनाम का पथ' माना है और रसिको के लिए उसे अधिक सुहावना बताया है।

'रमक-जमक बत्तीसी' —इस रचना मे ३२ छद है तथा दोहो की प्रधानता है। कुछ सोरठे भी है।

यमक अलकार का प्रयोग वहुतायत से हुआ है जिसके कारण अर्थ चमत्कार भी वढ गया है। लाल-लाडिली के रमक (प्रेम) का जमक (नशा) इस रचना मे दिखाया गया है। आरम्भ मे कृष्ण और राधा का रूप-वर्णन है। उनके द्वारा प्रयुक्त वस्तुओ के सौन्दर्य प्रदर्शन मे अलकारो का प्रयोग किया गया है।

झलकी दुति झलकी वहै, रही झलक इक लागि।
छुटी अलक लखि कै अलख, अलख भयो जिय जागि ॥६॥

'झलक', 'झलकी', और 'अलख' का यमक द्वारा प्रयोग वडा उपयुक्त और सारगर्भित है। समस्त रचना प्रेम के नशे मे जैसे सराबोर है।

'सुहाग रैनि' :—यह रचना २४ छन्दो की है। इसमे दोहा प्रधान और सोरठा गौण है। कुज लीला के अन्तर्गत रात्रि-रसकेली-वर्णन इसका विषय है। दाम्पत्य भाव

के प्रदर्शन के कारण इसका यह नामकरण हुआ है। प्रथम रात्रि–केलि वर्णन होने से इसे 'सुहाग–रैनि' कहा गया है।

नवल बिहारी नवल तिय, नवल कुंज रस केल।
सब निसि सुरत-सुहाग मिलि, दंपति आनंद रेल ॥३॥

पाई रैन-सुहाग सफल भये मनकाज सब।
मेरो है धनि भाग, सिरी किसोरी पाय अब ॥४॥

रसकेलि लीला के अन्तर्गत रात्रि–जागरण, नेत्रो की लालिमा, पलको का अर्धोन्मेषण, सुरत का प्रभाव तथा सखियो द्वारा प्रिय–प्यारी की छवि एव आनन्द का वर्णन वडी सरसता से किया गया है।

रैन–सुहागहि लाग हिय, जागि दोऊ अनुरागि।
रँग बरखत हरखत हुलसि, सुरत सरस रस पागि ॥२०॥

सैन कियौ दम्पति लपटि, निपट सुखनि सरसाय।
निरखि सखी ललिता सु जव, छवि छकि जकि रहि जाय ॥२१॥

'रग चौपड़' —यह २५ छन्दो की रचना है। इसमे एक सोरठा और शेष सब दोहे है।

रग महल मे राधा और कृष्ण चौपड खेलने के लिए बैठे है। दोनो ओर ही सखियो के समूह उपस्थित है। एक के भाग्य मे माणक और पन्ने की गोटिया है, दूसरे के पास नीलम और पुखराज की रगीली गोटें। पहले पहल हीरे के पासो को लाल ने उठाया और फिर राधिका को दिया। परस्पर शर्त निश्चित होने के पश्चात् खेल आरम्भ हुआ। प्रथम प्रयास ही मे राधा का दाव पौ–बाहर पडा। उनकी जीत का डका वजने लगा और कृष्ण यह सब देखते रह गए। दूसरा उपाय भी क्या था ? खेल चलता रहा। कभी लाल जीतते तो कभी लाडिली। इस हार–जीत मे परस्पर का अनुराग समय–समय पर प्रदर्शित हो जाता और सभी उस आनन्द मे विभोर हो उठते। दाँव लेने मे बेइमानी भी चल जाती और एक दूसरे की भर्त्सना का प्रसग भी आजाता। परन्तु सब मिलाकर आनन्द ही आनन्द का वर्णन है। अत मे जीत राधिका की ही रही।

लेखक के विचार से रग–चौपड को पढ कर रसिक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी को पाने का अधिकारी बन जाता है।

'प्रीति पचीसी' —यह कुल मिलाकर २६ छन्दो की रचना है। इसमे कवित्तो की प्रधानता है। दोहे और सोरठे भी कही-कही आगये हैं।

साधारणतया जो प्रसग भ्रमर गीत का है वही इस रचना का भी है। उद्धव, कृष्ण का सदेश लेकर मथुरा से गोकुल आए हैं। उद्धव का सदेश सब गोपिया सुन चुकी है। केवल उनका उत्तर ही इस रचना मे दिया गया है। प्रसगानुसार गोपियो का तर्क और व्यग ही इस रचना के प्राण हैं। तर्क पुराना है परन्तु कहने का ढग अपना है—

जोग की जुगति सींगी भसम अधारी मुद्रा,
ग्यान उपदेस सुनि सुनि मन मे डरैं।
इहाँ हम सब ही सवादी रास-रंगन की,
स्याम-अग-संगन की पागी पन क्यो टरैं॥
तुम तौ हो नेमी हम प्रेमी व्रजनिधि के हैं,
कागद समेट लेहु देखि अखियाँ जरैं।
आगिहु तताती अती छाती हहराती यह,
प्रानघाती काती असी पाती लै कहा करैं॥२२॥

'प्रेम-पन्थ' :—यह २७ छन्दो की रचना है। इसमे भी अन्य रचनाओ की तरह दोहो की प्रधानता है और यथास्थान सोरठो का भी समावेश है। प्रेम-पथ की विशेपता का वर्णन है। प्रेम के कठिन मार्ग और उस पर आरूढ होने वालो के आनन्द की अभिव्यजना है।

मँथन करि चाखे नहीं, पढ़ि पढि राखे ग्रंथ॥
थंथ[1] करत पग परत नहिं, कठिन प्रेम को पंथ॥१६॥

वास्तव मे वह व्यक्ति क्या थंथ (नृत्य) कर सकता है जिसके पैर ही नही पड़ते। प्रेम मार्ग पर भी वही चल सकता है जिसने केवल प्रेम ग्रन्थो को पढा ही नही वरन् उनका मथन कर उनमे से सार ग्रहण किया है और उसे अपने जीवन मे अपनाया है। उपास्य की उदासीनता की ओर ध्यान न देते हुए भी जो अपनी लगन को कम नही होने देता वही सच्चा प्रेमी है।

---

१. नृत्य

निपट अटपटी राह, मन मोहन के मोह की।
वे तो बेपरवाह, सीखे बानि बिछोह की ।।२०।।

ऐसे वेपरवाह के साथ निर्वाह होने की सभावना तभी हो सकती है जब–

अपनो सर्वस खोय, प्रीतम कू अपनाय ले।
जो वह रूखो लेय, तो तू चित चिकनाय ले ।।२१।

अथवा

प्रीतम की रुख राखि, ज्यो राखे त्यो ही रहो।
अपनी अरज न भाखि, भली बुरी सबही सहो ।।२२।।

प्रेम मे जव यह अवस्था हो जाती है अर्थात् जब प्रेमी आत्म–समर्पण कर प्रेम स्वरूप के अनुग्रह पर ही अपने को छोड देता हे तभी उसकी भक्ति की सम्पन्नता होती है –

प्रेम पदारथ पाय, नेम निगोड़ो गरि गयो।
आँसुन को झर लाय, हीय–सरोवर भरि गयो ।।२५।।

कवि का मन्तव्य है कि जो भक्त हृदय है वही प्रेम की वात पहचानते हे अन्य नही।

'वृज शृ गार' —यह ६५ छन्दो की रचना है। इसमे दोहा और कवित्त छन्दो का प्रयोग है।

भगवान अपने वचन का पालन करने वाले है। भक्तो को प्रसन्न रखना उनका भी कर्तव्य है। अतएव अपने 'प्रीतिपन' को पालने के लिए ही उन्होने ब्रज मे जन्म लिया। वैकुण्ठ को छोडकर निसि–दिन कुंजो मे क्रीडाएँ की, 'त्रिभुवन नाथ' पद को छोडकर 'ग्वाल' कहलाए और गोपो को 'भय्या–भय्या' कह–कह पुकारा। सभी के पीछे एक ही भाव था–'प्रीतिपन पारिवै कौ।'

ब्रज की अवनि, भगवान की लीलाभूमि होने के कारण, सभी तीर्थों से पवित्र, सब मानवो, सुर, नर, किन्नर, उरग के लिए पावन, सभी देवताओ के लिए ईर्ष्या भूमि और सभी जड–जगम के लिए स्तुति-क्षेत्र बन गई। भक्तो की दृष्टि मे ब्रज के समस्त पदार्थ–कुज, यमुना, वेल, वृक्ष, घाट-वाट, पशु-पक्षी, गोवर्धन और वसी–वट मोहन मय हो गये। स्नेह की यह रीति वास्तव मे वडी विचित्र है। इसी

के वशीभूत होकर कृष्ण गोपालो के साथ खेलते, कभी हारते कभी जीतते, नद के घर मक्खन चुरा कर खाते और दूसरो के घर मे जाकर अपने सखाओ मे भी उसे बाटते। गोपिया जैसे नचाती, लाल वैसे ही नाचने लगते। यदि कृष्ण स्वाति-बूँद थे तो ब्रजवासी सभी चातक थे। यदि योगी कृष्ण का ध्यान करते तो राधा-कृष्ण को अपने मन मे बिठाते, दूसरे उनके मुख की ओर देखते तो कृष्ण-राधा के दर्शन के लिए व्याकुल रहते। प्रात होते ही मोर-पक्ष धारण कर वृषभानुजा के घर की ओर देखते रहते और भक्त इसी मूर्ति स्वरूप के दर्शन से अपने भाग्य की सराहना करते।

लेखक ने ब्रजभूमि मे होनेवाली भगवान की सभी लीलाओ को ब्रज का शृ गार माना है और उनका उद्वेगपूर्ण वर्णन कर इस रचना को 'ब्रजशृ गार' कहा है।

'श्री ब्रजनिधि–मुक्तावली' —इसमे कुल मिलाकर ११७ छद है। अधिकाँश तो पद है और कही कही सवैये और कवित्त भी है। यह सग्रह 'सगीत' के आधार पर किया गया है। यह तो स्पष्ट ही है कि इसके पद समय समय पर बने होगे। परन्तु सगीत की प्रधानता का आभास प्रथम पद (सवैये) से ही हो जाता है। राधा और ब्रजनिधि दोनो अपने बगले मे बैठे ग्रीष्म का आनन्द ले रहे है, कधो पर तबूरा रखा हुआ है और फिर उनकी ताने समस्त वृ दावन के चर–अचर पदार्थों को मोहित कर आनन्द की झडी लगा देती है।–

> **बैठे दोउ उसीर–बगला मे ग्रीषम सुख विलसत दंपतिवर।**
> **अंसन धरे तंबूरे रूरे गान करत मन हरत परस्पर।**
> **तान लेत चित की चोपन सो मोहे वृंदावन के थिर–चर।**
> **ब्रजनिधि राधारूप अगाधा बरसायो अति आनद को झर ॥१॥**

'बगले' मे बैठने की कल्पना अवश्य लेखक की समय–प्रभाव की सूचिका है, शेष तो ठीक ही है, दाम्पत्य–भाव की मर्यादा के अनुकूल वातावरण उपस्थित किया गया है।

इस मुक्तावली मे कृष्ण–जन्म[1], बाल-रूप वर्णन[2], जुगल-रूप वर्णन[3],

---

१. ब्रजनिधि मुक्तावली, पद ११२, ११३
२. ,, ,, ,, ९९,१००, ११४
३. ,, ,, ,, १९, २२, ४३, ५२, ८२, ८४

भ्रमर गीत[1], राम वर्णन पद[2], रासलीला[3], दान-लीला[4], फाग-लीला[5], वाल-लीला, हिंडोला[6] आदि अनेक प्रसगो का वर्णन है यद्यपि ये प्रसग विस्तार से वर्णित नही किये गये हैं।

लेखक का ध्यान अपने प्रसगो के साथ-साथ सगीत के रागो पर विशेष प्रकार से गया है। 'राग सारग' और राग 'सोरठ' इन दोनो रागो के शास्त्रीय पद्धति से गाने का समय मध्याह्न और अर्द्ध-रात्रि है। अतएव स्पष्ट है कि इन दोनो समयो मे ही होने वाली निकुज-केलि लीला तथा रात्रि कालीन लीलाओ का वर्णन इन पदो मे होना चाहिए। लेखक ने ऐसा ही किया भी हे।

२'**व्रजनिधि-पद-सग्रह**' —कुल मिलाकर इसमे २४५ पद है। इनमे से ४० पद अन्य लेखको के है[7]। शेष २०५ मे १५२ पूरे और ५३ अधूरे हैं जो व्रजनिधि जी के हे। अन्य कवियो के पदो के सग्रह का यह रिवाज नागरीदासजी के 'नागर समुच्चय' मे भी है जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है।सभवत. इसका कारण यही है कि विशिष्ट लीलाओ और सगीत विपयक अन्य कवियो के पदो को अपने सग्रह मे स्थान देना अच्छा समझा जाता था तथा ऐसा करना भक्त की विशाल हृदयता का द्योतक था।

इस पद-सग्रह मे भी सगीत के राग रागनि पर ही कवि का ध्यान अधिक केन्द्रित प्रतीत होता है।

---

१. व्रजनिधि मुक्तावली पद ५६, ६६, ६४

२. ,, ,, ,, १३, ४६, १०८

३. ,, ,, ,, ७५

४. देखो पद २६, ३०, ६३. ६६

५. व्रजनिधि मुक्तावली पद २४, २५

६ ,, ,, ,, ७२

७ ,, ,, ,, १३६, १३७, १३८, १३६, १४०, १४२-१४६, १५१, १५२, १५४, १५५, १५८ आदि।

पूर्वी[१], काफी[२], सोरठ[३], (या परज), सारग[४], विलावल[५], हमीर[६], खमाज[७], विहाग[८] कान्हरा[९], मालकोस[१०], भैरव[११], देवगधार[१२], धनाश्री[१३],

---

१. देखो व्रजनिधि मुक्तावली पद नं. १, ५, ६, ३०, १४२-४४, १६४, १६५ आदि, गान समय दिन का चौथा प्रहर।

२. ,, ,, ,, ,, ,, ३, १६–१८, १२१, गान समय रात्रि का दूसरा प्रहर।

३. ,, ,, ,, ,, ,, ४, १२, ४२, ४६, ४३, ५७, ६१, ६३, ६५, ७०, ७७ आदि, गान समय अर्ध–रात्रि है।

४. ,, ,, ,, ,, ,, ७, २६, ५४, ८६, ६४ आदि–गान समय मध्याह्न।

५. ,, ,, ,, ,, ,, ८, २२, २३, ३८, ४०, ६८, १०१–२, गान समय दिन का प्रथम प्रहर।

६. ,, ,, ,, , ,, ६, १०, ४६, ५६, ७६, ११५, ११६ गान समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।

७. ,, ,, ,, ,, ,, ११, १०४–५, १७७ गान समय रात्रि का दूसरा प्रहर है।

८. ,, ,, ,, ,, ,, १३, १४, २०, ३३, ३६, ४१, ४४, ५५, ५८, ६०, १००, ११३, ११४, ११६, १२०, १३३, १४८, १४६-५१, १५४, १६६, १७०, १७१–२, २३३ गाने का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।

९. ,, ,, ,, ,, ,, १५, १३५, १३४–५० गान समय रात्रि का तृतीय प्रहर है।

१०. ,, ,, ,, ,, ,, १६ गाने का समय रात्रि का तृतीय प्रहर है।

११. ,, ,, ,, ,, ,, २१, ३७, ६६ गान समय प्रात.काल संधि प्रकाश।

१२ ,, ,, ,, ,, ,, २४ गान समय दिन का दूसरा प्रहर है।

१३ ,, ,, ,, ,, ,, २५, १६१, २२७ गान समय दिन का तृतीय प्रहर है।

मल्हार[1], गौरी[2], रामकली[3], ईमन[4], केदारा[5], कन्हड़ी[6], विभास[7], अड़ाना[8], पट[9], पचम[10], देसतोडी[11], झिझोटी[12], ललित[13], टोडी[14], भोपाली[15],

---

१. देखो ब्रजनिधि मुक्तावली पद नं २६, २७, ६४, ७८, ७९, १७६, १७९, १८०, १९३, २०७, २०९, गान समय रात्रि का तीसरा प्रहर है।

२ ,, ,, ,, ,, ,, २८, ९२, १६५ सधि प्रकाश रात्रि।

३ ,, ,, ,, ,, ,, ३१, ८०, ८८, १०७, १०९-१०, १३१, १५६-५७, १६३ गान समय दिन का प्रथम प्रहर है।

४. ,, ,, ,, ,, ,, ३४, ३६, ५६, ६२, ६७, ८६, १०३, ११७-१८, १३६, १६६, १६८, १९०, २१०, २१८-१९, २२१-२२; २२६ रात्रि प्रथम प्रहर।

५. ,, ,, ,, ,, ,, ३५, ५०-५१, ६०, २२५, २२९, गान समय रात्रि द्वितीय प्रहर।

६. ,, ,, ,, ,, ,, ४७, ४८, ५२-५३, ६९, ७१, ७३-४, ९५-६, ९७, १८७-९, १९४, २१४ गान समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है।

७ ,, ,, ,, ,, ,, ६८, ७२, ८१, १२२ गान समय दिन का प्रथम प्रहर है।

८ ,, ,, ,, ,, ,, ८८, १११, ११२, १५९ गान समय रात्रि का तृतीय प्रहर है।

९ ,, ,, ,, ,, ,, ८४, ८५, १२७, गान समय दिन का दूसरा प्रहर है।

१० ,, ,, ,, ,, ,, १२४ गान समय रात्रि का चौथा प्रहर है।

११ ,, ,, ,, ,, ,, १२५ गान समय दिन का दूसरा प्रहर है।

१२ ,, ,, ,, ,, ,, १२६, १६२ गान समय रात्रि का दूसरा प्रहर है।

१३ ,, ,, ,, ,, ,, १२८, १२९, १३० गान समय रात्रि का चौथा प्रहर है।

१४ ,, ,, ,, ,, ,, १३२ गान समय दिन का दूसरा प्रहर है।

१५ ,, ,, ,, ,, ,, १३७, १३८ गान समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।

नट[१], जैजैवन्ती[२], हिंडोल[३], कालिगडा[४], आसावरी[५], होरी[६], वेत[७], कामोद[८] आदि राग रागनियो से समस्त पद-सग्रह ओतप्रोत है।

इन पदो मे कुछ पद लीला के अनुसार समयानुकूल राग मे हैं और कुछ लीला के अनुरूप नही भी है। उदाहरण के लिये 'ललित' के अन्तर्गत १२८ और १२९ पद देखिये। १२८ वे पद मे निकुज लीला का वर्णन समयानुकूल है परन्तु १२९ वाँ पद केवल सगीत की दृष्टि से ही द्रष्टव्य है।

विषय की दृष्टि से इसमे राधा और कृष्ण का सौन्दर्य-वर्णन, इष्टरूप से 'जुगल-स्वरूप'[९] वर्णन, विरह-निवेदन, एव कतिपय लीलाओ का वर्णन है। राजस्थानी के पद और पजाबी के पद (रेखते) भी जहा तहाँ आ गये है। दो एक पद 'जमुना'[१०] वर्णन के भी हे यद्यपि इनमे वृन्दावन का भी उल्लेख आ गया हे। एक पद खडिता नायिका का है।[११]

'हरि पद संग्रह' इस सग्रह मे पद एव छद दोनो मिलाकर सख्या मे २०३ है। छन्दो मे कवित्तप्रधान है एव सवैये तथा कुण्डलिया सम्मिलित है। वैसे इस सख्या मे ब्रजनिधि के बनाये ११३ पद है, अन्य कवियो के ५३ पद है और शेष २७ ऐसे है जिनमे किसी की छाप नही है। ऐसे पदो और छदो को हम अज्ञात कवियो का मानले तो कोई आपत्ति नही होनी चाहिये। इनमे से कुछ राजस्थानी मे है और कुछ पजाबी मे जैसा उनके अन्य सग्रहो मे भी देखा जाता है।

---

१ ब्रजनिधि मुक्तावली पद नं० १५८ गान समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।
२. ,, ,, ,, ,, ,, १६१ गान समय रात्रि का दूसरा प्रहर है।
३, ,, ,, ,, ,, ,, १६७ गान समय रात्रि का चौथा प्रहर है।
४. ,, ,, ,, ,, ,, १७८ गान समय रात्रि का चौथा प्रहर है।
५ ,, ,, ,, ,, ,, १८६, १९५, २१२, २२३ गान समय दिन का दूसरा प्रहर है।
६, ,, ,, ,, ,, ,, १९२
७ ,, ,, ,, ,, ,, १९६
८ ,, ,, ,, ,, ,, २११ गान समय रात्रि का दूसरा प्रहर है।
९. पद २६, २७, २८, ३३, ३४
१० पद २२, २३
११. पद ३७

इस सग्रह के अधिकाश पदो का सम्बन्ध इष्ट स्वरूप वर्णन से ही है। इसमे विनय के पद[1], लीलाओ के पद[2], त्यौहारो विपयक पद[3], मुरली माधुरी[4] एव भ्रमरगीत[5] आदि प्रसगो के पद शामिल है।

'रेखता संग्रह' –इस सग्रह मे १६८ छद हैं। इसमे सभी ब्रजनिधि की रचनाएँ है। प्रत्येक रेखते मे पक्तियो की सख्या भिन्न भिन्न है, यदि प्रत्येक पक्ति को एक पाद मान लिया जाए तो किसी रेखते मे १० पाद हैं किसी मे केवल चार और किसी मे ३२ पाद तक भी है।

और सग्रहो की भाति इस सग्रह मे भी प्राय सभी प्रसगो का समावेश हो गया हे जैसे कृष्ण सौंदर्य–वर्णन, राधा–सौदर्य–वर्णन, युगल मूर्ति सौदर्य–वर्णन, प्रेम–मिलन–वर्णन, ऋतु–वर्णन, नखशिख–वर्णन, खडिता-नायिका–वर्णन, माधुर्य भाव–वर्णन आदि आदि।

इस रचना की विशेपता इसकी भापा–शैली है जिसमे फारसी भापा का बाहुल्य होने से उर्दू का सा आनन्द आता है। इसके अधिकाश अश गाने के लिये लिखे गए प्रतीत होते है क्योकि वे राग रागनियो मे ही रखे गए हैं। कही कही फारसी भाषा के साथ पजावी शब्दो का भी प्रयोग हुआ हे। ऐसे रेखतो को पजावी रेखते कहा जा सकता है।

'रास का रेखता'–यह २४ छदो की रचना है। प्रथम १८ रेखतो मे प्रत्येक रेखता चार पद का है परन्तु शेप मे से प्रत्येक मे केवल दो पद ही हैं। इसका विषय रास वर्णन है। भापा और छन्द मे नृत्य की सी गति का प्रवाह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। गोपियो और कृष्ण के वाह्य सौदर्य और नृत्य के हाव भावो का वडा फडकता हुआ वर्णन है। उर्दू शब्दो के प्रयोग ने रेखतो मे 'शोख' गुण पैदा कर दिया है।

'विरह सलिता'–यह भी रेखतो मे लिखी हुई रचना है। कुल मिलाकर इसमे ५२ छद हैं। गोपियाँ आरभ मे कृष्ण सौदर्य और उनके मनमोहन रूप का स्मरण कर अपने विरह

---

१. हरि पद सग्रह–पद १२, १३, १६
२. ,, ,, ,, ,, ३८, ४६
३ ,, ,, ,, ,, ६७
४. ,, ,, ,, ,, ७५, १४८
५ ,, ,, ,, ,, १२५, १२६

का निवेदन करती है। फिर उद्धव को सम्बोधित कर विरह सागर मे डूब जाती है और अपनी विप्रलभ-शृ गार की भावना से सारा प्रसग सरावोर कर डालती है।

यह उनकी आरभिक रचना प्रतीत होती है क्योकि इसमे परिपक्वता की कमी है।

'स्नेह बहार'–यह रचना भी रेखता छद मे लिखी गई है। कुल मिलाकर इसमे ४४ छद है। इसका विषय 'इश्क' या 'प्रेम' है। प्रेम-मार्ग की कठिनता और प्रेमियो के दुखो का वर्णन इसमे किया गया है। इश्क की कठिनाईयो का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

इस्क आहि आफित करे गाहत दाहत प्रान।
जाफत में मासूक की सीस सुपारी–पान ।।२१।।

(इश्क ऐसी आफत करता है कि उसमे प्राण फँसते हैं और उसे दग्ध होना पडता है। फिर माशूक (प्रेमिका) की दावत मे सुपारी–पान के स्थान पर प्रेमी को अपने सिर की बलि देनी पडती है।)

'दुखहरण वेलि' –यह ३३ छन्दो की रचना है। छन्द वही रेखता है। विषय विरह निवेदन है। यह भी आरभिक रचना ही प्रतीत होती है।

सक्षेप मे ब्रजनिधि के ग्रथो को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है। छन्द–रचनाएँ और पद्य–रचनाएँ। सभी के विषय कुछ भिन्न भिन्न होते हुए भी एक ही है। भाषा अधिकतर ब्रजभाषा है। रेखता का प्रयोग भी सराहनीय है। पँजावी और राजस्थानी के छन्द एव गीत भी कही कही उपलब्ध है जिससे प्रतीत होता है कि महाराज प्रतापसिंह की भाषा–ज्ञान–प्रतिभा विभिन्न मुखी थी।

ब्रजनिधि की भक्ति भावना :—

ब्रजनिधि ने अनेको स्थानो पर अपने इष्ट का उल्लेख किया है–उदाहरणार्थ–

(१)

हमारे इष्ट है गोविन्द।
राधिका सुख साधिका संग रमत बन स्वच्छंद,
जुगल जोरी रंग बोरी परम सुन्दर रूप।
चंचला मिली स्याम नव घन मनहु अवनि अनूप,

सुभग जमुना-तट-निकट करि रहे रस के ख्याल ।
हिये नित-प्रति बसौ 'ब्रजनिधि' भावती नँदलाल ॥[1]

(२)

जिनके श्री गोविन्द सहाई, तिनके चिंता करे बलाई ।
मन वाँछित सब होहिं मनोरथ, सुख सम्पति सरसाई ॥
व्यापत नाहिं ताप तिहिं तीनो कीरति बढत सवाई ।
नष्ट होहिं सत्रू सब तिनके उर आनन्द–बधाई ॥
भूमि-भडार-विभव-कचन–मनि-रिद्धि-सिद्धि–समुदाई ।
जोइ-जोइ चहै लहै सौई सौई, त्रिभुवन विदित बडाई ॥
विमल भक्ति अनुराग निरतर अधिक अधिक अधिकाई ।
करुना-सिंधु कृपाल करहिं नित सब ब्रजनिधि मनभाई[2] ॥

(३)

गोविन्द हौं चरनन को चेरो ।
तुम विन और कौन रच्छिक है या जग मे अब मेरौ ॥
द्रुपदसुता-गजरात-अरज सुनि आए तुरत करि न अवेरौ ।
सब विधि काज सँवारे 'ब्रजनिधि' करुना-सिंधु विरद है तेरौ[3] ॥

(४)

साँवरे सलोने मै तेरा हूं गुलाम ।
तू ही है मेरा साहिब नहिं और से कुछ काम ।
तेरे फजल किये से जब दिल को हो आराम ।
'ब्रजनिधि' दरस को तकते नित सुवह की हो शाम[4] ॥

---

१. हरिपद संग्रह, पृ० २९६
२. वही, पृ० २६२
३ हरिपद संग्रह, पृ० ३०२
४. रेखता संग्रह, पृ० ३१६

(५)

तू है बड़ा खिलारी मै हू खिलौना तेरा।
ज्यो बाजीगर की पुतली फिरता हूँ तेरा फेरा ॥
है तार यार हाथ और भरम है बखेरा।
चाहो सो करो ब्रजनिधि कुछ बस नहीं है मेरा[१]॥५६॥

उपरोक्त हरिपद सग्रह के तीनो पदो मे जिन 'गोविन्द' अथवा 'राधा गोविन्द' का उल्लेख हुआ है यही 'ब्रजनिधि' के इष्ट देव है। रेखता सग्रह मे जिन 'सॉवले सलोनें' बाजीगर खिलाडी की ओर सकेत है वह भी उनके इष्ट का ही स्वरूप है। अतएव यह स्पष्ट है कि 'गोविन्द' ही उनके उपास्य थे। कई स्थानो पर ब्रजनिधि ने राधिका रानी को भी अपनी इष्ट देवी माना है—

(१)

कृपा करो वृन्दावन रानी।
महिमा अमित अगाध न जानो नेति नेति कहि वेद बखानी ॥
तुम हौ परम उदार स्वामिनी मनमोहन के प्रान समानी।
'ब्रजनिधि' कौ अपनौ करि लीजै दीजै वृंदावन रजधानी[२] ॥८॥

(२)

छबीली राधे कब दर्शन दैहौ।
तुव मुख-चंद चकोरी अँखियनि रूप सुधा अचवैहो।
यह आशा लागी रहे निस-दिन कब मन तपत बुझैहो।
करिके कृपा कहौ, 'ब्रजनिधि' को कब अपनो करि लैहो[३] ॥२५॥

ब्रजनिधि का परम विश्वास है कि राधिका के प्रसन्न होने से भगवान भी उन पर अनुग्रह अवश्य करेंगे। इसी कारण अपने मन को प्रबोध देते हुए ब्रजनिधि कहते हैं—

---

१. रेखता संग्रह-पृ० ३२७
२. ब्रजनिधि पद संग्रह-पृ० ६३
३. वही, पृ० १६७

पायौ बडे भागनि सो आसरौ किसोरी जू कौ,
और निरवाहि नीके ताहि गहे गहि रे।
नैननि तें निरखि लडैती कौ वदन-चन्द,
ताही को चकोर ह्वै के रूप-सुधा लहि रे।
स्वामिनी की कृपा तें अधीन ह्वै हैं 'व्रजनिधि'
तातें रसना सो नित्य स्यामा नाम कहि रे।
मन मेरे मीत जो तू मेरो कह्यो मानै तौ तू,
राधा-पद-कंज को भ्रमर ह्वै के रहि रे[1] ।।५०।।

अपनी इस उपासिका राधिका का नख-शिख वर्णन का प्रयास करते हुए लेखक ने कई रेखते लिखे है। उनमे से एक यह है--

अहा बनी किसोरी की अजब लावन्यता लोनी।
करें तारीफ क्या इसकी हुई ऐसी न फिर होनी।
गुही बेनी अजब सज से न छबि का पार कुछ पाया।
जकरिके मुश्क संकू[2] से गोया रसराज लटकाया।
छबीली बीच पेशानी[3] बनी है आड मृगमद की।
या मन्मथ राज ने सीढी रची है रूप के नद की।
न कुछ कहना है अबरू[4] का विलासी रस्म के घर हे।
और ये नैन अनियारे गोया रसराज के सर हैं।।
गुलिस्ताँ[5]-हुस्न के विच मे चमन ह्वै कर्न की सोहैं।
लसे है कर्नफूलन से न क्यो मोहन का मन मोहैं।।

---

१ हरिपद संग्रह-पृ० २६४

२ तसल्ली

३. ललाट

४ भौंहे

५. उद्यान

इसी बुस्ताँ[1] मे रौनक़[2] है जु नासा सर्व[3] की ऐसी।
सकै तो सिफ़त[4] करि इसकी सु वह फ़हमीद[5] है कैसी ।।
कपोलन की करै तारीफ़ जिसका दिल अदीसा[6] है।
व लेकिन कुछ कहा चहिये लसै जनु हलबी सीसा है[7] ।।
हँस दंदान[8] दमकन का अचानक नूर[9] यो बरसै।
परै बर अक्स[10] सीने पर कि मोती–माल सी दरसै ।।
जकन[11] के चाह औड़े मे चमक है नीलमनि कैसी।
कहै तमसील[12] जब इसकी कि पैदा होय तब तैसी ।।
गले तमसील देने को सु किस तमसील को छीवै।
कि रखिके जिस गुलू[13] बाँहों[14] सलोने श्याम से जीवै ।।

---

१ बाग़

२ शोभा

३. एक वृक्ष विशेष जो सीधा बढ़ता है और फारसी मे जिसे सौंदर्य का प्रतीक माना है।

४ विशेषता

५. समझ

६ अदृश्य

७ हलब देश का शीशा; बढिया शीशा

८. दाँत

९. ज्योति

१० प्रतिबिम्ब

११. ठुड्डी के बीच का गढ़ा

१२ उदाहरण

१३ गला

१४. भुजाएँ

छबीले दस्तबाजू[1] की जु यह तमसील पाई है।
कि कंचन-कोकनद जु मृनाल कंचन की लगाई है।।
कहूँ तारीफ़ क्या तन की जु सिर-ता-पा[2] अजब इकसाँ।
वही जानै मुकर्रब[3] की कि है हमराज[4] महरम जाँ[5] ।।

चरन-नख चन्द्रिका ऐसी कि महताबी[6] मे रलि जावें।
जड़े इलमास[7] मानक मे जगामग ज़ेब[8] को पावें।।
सजे रहँ नील पट ज़ेवर[9] फिरावै कर कमल गहिके।
अपर है ख़ौफ़ दिल मे यह मवादा[10] लग पवन लहिके।।
जुबाँ[11] तो चश्म[12] नहिं रक्खे न कुछ चलता बिचारी का।
न चश्मे यह जुबाँ रखें कहै औसाफ[13] प्यारी का।।
निकाई गौर सिख-नख[14] की जु किससे जात गाई है।
सु ऐसी लाडिली 'ब्रजनिधि' लला भागन सो पाई[15] है ।।३।।

---

१. हाथ और भुजाएँ
२ सिर से लेकर पैर तक
३ पडोसी
४. भेद जानने वाला
५ जान का परदा डालने वाले
६. चाँदनी
७ कीमती पत्थर
८. द्युति, रौनक़
९ आभूषण
१० परिवर्तन
११ जिह्वा
१२. आँख
१३. कमाल
१४. शिख-नख
१५ रेखता संग्रह पृष्ठ, ३१०, ३११

राधा का इतना विस्तृत वर्णन, उनके रूप का प्रभाव, उनके शील का आकर्षण और गोविंद के साथ उनकी क्रीडाओ एव लीलाओ मे भाग लेते समय के स्वरूप का सागोपाग विवरण इसका द्योतक है कि अपनी भक्ति भावना मे 'ब्रजनिधि' ने राधा को प्रमुख स्थान दिया है। उनकी रचनाओ के कुछ छोटे-छोटे अश तो जैसा पहले कहा जा चुका है, केवल राधा सम्बन्धी प्रसगो से ही ओतप्रोत है। वास्तव मे राधा के अभाव मे गोविन्द की बाल-लीला के दृश्य अकित किये गये हैं। अष्टछाप के कवियों ने भगवान की बाल लीलाओ की सूक्ष्मता एव बाल-चापल्य विषयक नाना प्रसगो को जिस तन्मयता से अकित किया है वैसी अनन्यता ब्रजनिधि की कविता मे दुर्लभ है। कृष्ण-जन्म, गो-चारण, गोपी-गोप सँवाद मे कृष्ण के बाह्य आकर्षण का वर्णन, नद और यशोदा के स्नेह प्रदर्शन की अभिव्यजना ब्रजनिधि की कविता मे नाम मात्र के लिए ही प्राप्य है। इनकी कविता मे बाल-चातुर्य, माखन-लीला अथवा गोचारण प्रसगो मे रमने वाले हृदय का अभाव स्पष्ट ही व्यजित होता है।

ब्रजनिधि का हृदय कृष्ण-राधा की युगलमूर्ति की ओर ही जाता है। इस पद मे देखिए—

जय जय राधा-मोहन जोरी।
नव-नीरद-घनश्याम-बरन पिय दामिनि सी तन-दीपति गोरी।
बिहरत ललित निकुँज-सदन मे गावति गुन सहचरि चहूँ ओरी।
निरखत प्यारी की छबि 'ब्रजनिधि' अखियाँ भईं चकोरी[1] ।।२८।।

भोर ही उठि सुमरिए बृषभान की किसोरी।
वाधा-हर राधा सुख-मंगल-निधि गोरी।
बैठि उठि सुभग सेज नागरि अलबेली।
दंपति-मुख-छबि निहारि हरखहिं सहेली।
रतन-जटित मुकर मुकर[2] ललिता अलि लीये।
जुगल बदन निरखि निरखि हरखत रस पीये।
लेके कर जंत्र-तार सरस अलि बिसाखा।
गावति गुन रुचि विचारि पुरवति अभिलाखा।

---

१ ब्रजनिधि-पद-सग्रह, पृ १६८
२ मुकुर

महल टहल चित्रा कर लिए पीकदानी।
बीरी कर देत हेत दंपति रुचि जानी।
भाँति भाँति सौंज लिये सबही अलि ठाढी।
उरझनि सुरझनि निहारि अद्‌भुत छबि वाढी।
बन–बिहार करन चले दीये गरबाहीं।
यह स्वरूप सदा बसौ 'ब्रजनिधि' हिय माँहीं ॥५३॥[1]

भैरव राग मे गाया हुआ यह पद ब्रजनिधि की भावना पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। ललिता, विशाखा एव चित्रा आदि सखियो के साथ राधा और कृष्ण का यह वर्णन विशेष महत्व रखता है। ब्रजनिधि 'सखाओ' का वर्णन न कर 'सखियो' को जो महत्व दे रहे है उसमे कुछ-न-कुछ रहस्य होना चाहिए। नागरीदास के सम्वन्ध मे उनकी दाम्पत्य–भावना पर विचार करते हुए यह कहा जा चुका है कि वल्लभ सप्रदाय मे बाल–भाव के साथ दाम्पत्य–भाव किस रूप मे ग्राह्य है। अतएव यहा प्रश्न यही उपस्थित होता है कि राधा की प्रधानता और युगल-स्परूप के इस वर्णन के कारण हमे ब्रजनिधि को वल्लभ सप्रदाय का अनुगामी मानना चाहिए अथवा राधा–वल्लभीय ?

राधा वल्लभीय सप्रदाय कोई तात्विक सिद्धान्त पर चलने वाला 'वाद' नही था। अतएव उसके दर्शन के विकास का पता नही चलता। हाँ, यह एक साधना मार्ग अवश्य था जिसमे राधा-कृष्ण, दम्पति की शृ गारिकेलि के आनन्द का उपभोग करते हुए और विधि निषेध का ध्यान छोडकर अपनी मानसिक वृत्ति को लौकिक वासनाओ से बचाने का कठिन योग सम्मिलित है। सभवत इसी कारण से नाभादासजी ने इस सप्रदाय के प्रवर्त्तक श्री हितहरिवश के विषय मे लिखते हुए उनकी कृष्णोपासना-विधि का वर्णन इस प्रकार किया है—

श्री हरवंश गुसाई भजन की रीति सकृत कोउ जानि है।
श्री राधाचरण प्रधान हृदें अति सुदृढ उपासी।
कुँज केलि दंपति तहाँ की करत खवासी।
सर्वसु महा प्रसाद प्रसिद्धता के अधिकारी।
विधि निषेध नहिं दास अनन्य उत्कट व्रतधारी।

---

१ हरि पद सग्रह, पृ २६५

श्री व्यास सुवन पथ अनुसरे सोई भले पहिचानि है।
श्री हरिवंश गुसांई भजन की रीत सकृत कोउ जानि है।

'दम्पति कुंज केलि' के मनन से वासना-कूप मे से निकलने की अपेक्षा उसमे डूबने की सभावना अधिक रहती है। इसी से यह साधना मार्ग केवल उन्ही पुण्यवान भक्तो के लिए है जो इस साधना की कठिनता से परिचित है। यद्यपि कान्ता अथवा परकीय भाव से मधुर भक्ति के इस रूप का ग्रहण चैतन्य और वल्लभ सप्रदाय मे भी है परन्तु कुंज-केलि की प्रधानता उसमे नही है।

राधा वल्लभीय सप्रदाय मे प्रेम श्रृंगार की केवल सयोग लीलाओ का ही अवलम्बन अधिक लिया गया है। उसकी वियोग भावना इस सप्रदाय मे नही है। इसी कारण कुंज-लीला के परमानन्द को इसके अनुयायी 'परम रस माधुरी भाव' कहते हैं। हितजी की रचना 'हित चौरासी' के पदो मे वर्णित राधाकृष्ण के विहार एव प्रेम-लीला का श्रृंगारिक वर्णन तथा उस भाव की अनुभूति एव व्रजनिधि की अनुभूति मे बहुत कुछ साम्य स्थापित होता है।

हित-चौरासी मे एक पद है—

आज प्रभात लता मंदिर मे, सुख ब्ररसत अति जुगलवर।
गौर स्याम अभिराम रगभरे, लटकि लटकि पग धरत अवनि पर।
कुच कुमकुम रंजित मालावलि, सुरतनाथ श्री श्याम धामवर।
प्रिया प्रेम अंक अलकृत चित्रित, चतुर सिरोमणि निजकर।
दम्पति अति अनुराग मुदित कल, गान करत मन हरत परस्पर।
जै श्री हितहरिवंश प्रसंस परायन, गाईन अलि अति सुर देत मधुरतर।

'कुँज-केलि' के इस वर्णन से तुलना कीजिये—

मेरा स्वामिनि सुख-कारिनी।
राजति नवल-निकुँज-भवन मे प्रीतम सग-विहारिनि।
उठीं उनींदी सुभग सेज पर स्याम-भुजा-उर धारिनि।
सो छबि सरस बसी 'ब्रजनिधि' उर कृपा-कटाछ निहारिनि[1] ॥२४॥

---

१. ब्रजनिधि पद संग्रह, पृ. १९७

अथवा—

करत दोऊ कुंज में रस-केलि ।
डोलत रतन-जटित आँगन मे अंसन पर भुज मेलि ।
बोलत मोर घटा जल बरखत हरित भई बन-वेलि ।
गावत राग मलार सरस सुर 'ब्रजनिधि' संग सहेलि[1] ॥

हम तौ राधा-कृष्ण उपासी ।
गौर-स्याम अभिराम मनोहर सुंदर छवि-सुख-रासी ।
एक प्रान तन मन दोऊ नित वृंदा-विपिन-विलासी ।
कृपा दृष्टि तें पाई 'ब्रजनिधि' दम्पति खास खवासी[2] ॥११॥

जिस प्रकार हितहरिवश दम्पति-केलि के उपासक है उसी प्रकार ब्रजनिधि भी प्रतीत होते है .—

ब्रजनिधि की कविता मे-विशेषकर रेखतो मे माधुर्य भाव की व्यजना बिल्कुल स्पष्ट है—

प्यारे सजन सलोने मै बाँदी भई तेरी ।
क्या खूब दरस देके बिन दामों लई चेरी ।
तेरी जुदायगी से सब सुधि गई है मेरी ।
'ब्रजनिधि' मिलने के कारज ब्रज मे दई है फेरी ॥१२॥[3]

हम पर मिहर भी करके अब तो इधर भी चेतो ।
टुक मिहर की नजर से मुझ तर्फ-देख ले तो ।
शब-रोज तड़फती हूँ जीऊँ दिदार दे तो ।
दुख दफै होय 'ब्रजनिधि' जो तू करम करै तो ॥२६॥[4]

---

१ ब्रजनिधि पद सग्रह, पृ० १६७

२ ब्रजनिधि पद सग्रह, पृ० १६४

३ रेखता संग्रह, पृ० ३१४

४. रेखता संग्रह, पृ० ३१७

स्त्री रूप मे, भावो की यह व्यजना सखी-सम्प्रदाय की याद दिला देती है। एक रेखते मे तो ब्रजनिधि ने अपने आपको 'पत्नि' और इष्ट को 'पति' वना डाला है—

उसको मै देखा जब से नहीं और नजर आता।
दुनियां के बीच तबसे छिन भी नही सुहाता।
शब-रोज तड़फती हूँ नहिं आब-खुर[1] भी भाता।
अब पाया मैने खाविंद[2], 'ब्रजनिधि' सरीसा दाता[3] ॥२८॥

कही कही इन रेखतो में ब्रजनिधि ने 'दास–भाव' भी प्रकट किया है—

सॉवरे सलोने मै तेरा हूँ गुलाम।
तू ही है मेरा साहिब नहिं और से कुछ काम।
तेरे फजल[4] किये से जव दिल को हो आराम।
'ब्रजनिधि' दरस को तकते नित सुबह को हो शाम[5] ॥२१॥

सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि ब्रजनिधि के इष्ट के स्वरूप का वर्णन अनेक रगो मे पाया जाता है अर्थात् कही उसमे वल्लभी छाप है तो कहीं राधा-वल्लभी और कही दास-भाव है तो कही माधुर्य-भाव परन्तु ये सव होते हुए भी उनकी कविता की मुख्य प्रेरणा राधा और कृष्ण की युगल मूर्ति ही हे और उसमे राधा के प्रति उनकी अनन्यता इसी कारण हे कि इस शक्ति को इष्ट से पृथक नहीं किया जा सकता। अपनी प्रेरणात्मक शक्ति के विपय मे उन्होंने स्वय कहा है—

---

१ आव–जल ; खुर–अन्न

२. पति

३. रेखता संग्रह, पृ. ३१७

४ कृपा

५ रेखता संग्रह, पृ ३१६

गाइ हौं प्यारी को नित्य बिहार
बिहारी को भावुक दास कहाइहौं।
हाय हौं जानि अजान भयो,
अब तो मन मोहन सो चित लाइहौं।
लाइ हौं अच्छर चोज[1] भरे,
गुन गावन को लहि नीको उपाइहौं।
पाइहौं या तन कौ फल मै,
'व्रज की निधि' श्याम सो नेह लगाइहौं[2] ॥३८॥

इष्ट–स्वरूप वर्णन के अतिरिक्त साम्प्रदायिक रूप से व्रजनिधि ने अन्य प्रसगो को भी अपनी कविता का विषय बनाया है। वल्लभ सप्रदाय मे जमुना के महत्व की चर्चा पहले हो चुकी है। उसकी महिमा का वर्णन व्रजनिधि ने भी किया हे। उदाहरण देखिये—

ललित पुलिन चिंतामनि चूरन और सरितवर पास मना।
दिव्यभूमि दरसे जल परसे तनक रहत तन मे तम ना।
दुतिय कौन कबि बरन सके छवि महिमा निगमहु की गम ना।
भजन करौ निसि-बासर 'व्रजनिधि' श्री वृंदावन जै जमुना[3] ॥२२॥

अथवा—

सुरति लगी रहै नित मेरी श्री जमुना वृंदावन सो।
निस–दिन जाइ रहौं उतही हौं सोवत सपने मन सो।
बिना कृपा विषभान–नंदिनी बनत न बास कोटिहू धन सो।
'व्रजनिधि' कब ह्वै है वह औसर व्रज-रज लोटौं या तन सो ॥२३॥[1]

---

१. सुभाषित; व्यगपूर्ण उपहास; मनोविनोद के लिए चमत्कारपूर्ण उक्ति
२. हरिपद पद सग्रह, पृ २६१
३. व्रजनिधि पद संग्रह, पृ. १६६
४. व्रजनिधि पद संग्रह, पृ. १६७

उक्त दोनो पदो मे काव्यत्व चाहे न हो परन्तु साम्प्रदायिक भावना की अभिव्यक्ति तो है ही। इसी प्रकार खडिता नायिका विषयक भी कुछ पद और रेखते व्रजनिधि की कविता मे मिल जाते है–

खडिता के इस व्यग के साथ इस रेखते को देखिये—

आओ जू आओ प्रान पियारे, रूप छके रसबस मतवारे।
जामिनी जगे पगे भामिनि सग नैन रसमसे अरुन तिहारे।
पीकलीक सोहत कपोल पर कज्जल अधर-छाप छबि मारे।
'व्रजनिधि' मदन देव पूजन करि लै प्रसाद इत भले पधारे[1] ॥३७॥

खंडिता के इस व्यग के साथ इस रेखते को भी देखिये—

जिहाँ वेदार[2] होते ही फजर[3] ही आप आये हो।
जु रति के चिन्ह हैं परगट भले नीके छिपाए हो।
चलो हो चाल अलबेली कदम कहिं का कहीं पड़ता।
खुमारी से भरी अँखियाँ कहो शब किन जगाये हो।
मुँदी सी जात ये पलकें सरस अहवाल[4] कहती हैं।
कहो हो बात अलसानी सिथिलता अंग छाये हो।
करो हो बतबनी एती खबर तन की नहीं रखते।
पितांबर खोय के प्यारे निलाँबर क्यो ले आये हो।
कहूं कहना कहूं रहना अजब यह चाल पकड़ी है।
जु चाहो सो करो 'व्रजनिधि' मेरे तो मन में भाये हो ॥३९॥[5]

खडिता विषयक इन पदो का समावेश केवल परकीया-प्रेम की उत्कृष्टता निमित्त हुआ है। इसलिये ये पद भी नित्य कीर्तन के पदो मे गाये जाते हैं और साम्प्रदायिक प्रसगों मे इनकी गणना होती है।

---

१. व्रजनिधि पद संग्रह, पृ २००
२ जागते
३. प्रात.काल
४. हाल
५. रेखता संग्रह, पृ. ३१९–३२०

अतएव इष्ट के स्वरूप का वर्णन, जमुना वर्णन, खडिता वर्णन आदि से यह सिद्ध होता है कि व्रजनिधि को वल्लभ सम्प्रदायी मानना चाहिए। इस अतर्साक्ष्य के अतिरिक्त एक बात यह भी प्रसिद्ध है कि व्रजनिधिजी का यह नियम था कि वे जो पद या रेखता बनाते थे वह अपने इष्ट को समर्पण कर देते थे। एक बार के समर्पण की कथा का उल्लेख व्रजनिधि ग्रथावली मे योग्य सम्पादक ने किया है। इनके द्वारा व्रजनिधि मदिर का निर्माण और उसमे मूर्ति की प्रतिष्ठापना भी उनके भक्तिभाव एव सम्प्रदाय की द्योतक है।

व्रजनिधि की कविता मे रस —

व्रजनिधि की कविता का प्रधान विपय रति है। रति के अनेक रूपो का समावेश स्थान-स्थान पर उनकी कविता मे हुआ है। पहले दिखाया जा चुका है कि उनकी रति का प्रधान केन्द्र राधा और कृष्ण है। कृष्ण के सौन्दर्य और लीलाओ के प्रसग कवि की रुचि को विशेषतया आकर्षित करते है। कुछ उदाहरणो से इसका प्रमाण भी मिल जायगा।

प्यारो व्रज ही को सिंगार।
मोर-पख वा लकुट बाँसुरी गर गुंजन को हार।
बन बन गोधन संग डोलिवो गोपन सौं करि यारी।
सुनि सुनि कै सुख मानत मोहन, व्रजवासिन की गारी॥

विधि, सिव, सेस, सनक, नारद से जाको पार न पावै।
ताकौ घर-बाहर व्रजसुन्दरि नाना नाच नचावै॥
ऐसौ परम छबीलौ ठाकुर कहौ काहि नहिं भावै।
'व्रजनिधि' सोई जानि है यह रस जाहि स्याम अपनावै॥१०॥[1]

एक गोपिका कह रही है—

माई री मोहि सुहावै स्याम सुजान कुंवार।
कटि पट पीत पिछौरी बाँधे अनूप रूप सुकुमार॥

---

१. व्रजनिधि मुक्तावली, पृ. १५८

देखत कोटिक मन्मथ लाजै होत हिये कौ हार ।
'ब्रजनिधि' परम छबीलौ मोहन सोभा सरस अपार[1] ॥

एक छबीले पर भला कौन मोहित न होगा ? और ऐसी ही सुन्दर है राधिका रानी भी ।

छबीली बिहारिनि की छबि पर बलिहारी ।
ब्रज-नव-तरुनि-सिरोमनि स्यामा बस किये कुंजबिहारी ॥
सीस चन्द्रिका सोहत मोहत नील बरन तन सारी ।
'ब्रजनिधि' की स्वामिनि अभिरामिनि होत न हिय तें न्यारी[2]॥६२॥

राधे सुन्दरता की सीवाँ ।
मन मोहन कौ हू मन मोह्यो निरखि करत अध ग्रीवाँ ॥
चितवनि चलनि हसनि प्यारी की देखे बिन क्यो जीवाँ ।
'ब्रजनिधि' की अभिलाष निरतर रूप-सुधा रस पीवा[3] ॥३५॥

आलम्बन के इन बाह्य वर्णनो के अतिरिक्त उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत ऋतु वर्णन भी ब्रजनिधि की कविता का एक अग है । भगवान की लीलाओ मे इस प्रसग का विशेष महत्त्व है क्योकि उनकी क्रीडाएँ ऋतुओ के अनुकूल ही है । सेवा मार्ग मे इन सन प्रसगो का वर्णन बडी रुचि से किया गया है और नित्य की लीलाओ एव श्रृ गार के लिये सब पदार्थो का समयानुकूल होना आवश्यक माना गया है । सर्व-प्रथम वर्णन तो स्वय ब्रजनिधि का ही है । वैकुण्ठधाम वासी रसेश भगवान कृष्ण भक्ति के वशीभूत होकर जिस भूमि पर अवतरित हुए उसकी महिमा का बखान कौन कवि करने मे समर्थ हुआ है ? ब्रजनिधि ने 'ब्रजसिंगार' नामक रचना मे इष्ट की लीला भूमि का वर्णन किया है । वे कहते है—

कौन अहे तीरथ औ कौनसी जमीं है ऐसी,
याके नाहि लवे लागै कौन कहै झूठी बात ।

---

१ ब्रजनिधि पद सग्रह, पृ० १९२

२. वही, पृ० २०६

३ ब्रजनिधि मुक्तावली

ऐसी तौ यही है औ पुराननि कही है सो तौ,
सत्य ही सही है और मन माहिं नाहीं आत।
व्रज है अटल धाम व्रजनिधि कौ बिसराम,
सुख लीला करें लाल लली लिये दिन रात।
व्रजनिधि भाई रुचि मृत्तिका गुपाल खाई,
प्रभुताई याको कहो कैसे अब कही जात[1] ।।६।।

प्रकृति-वर्णन व्रजनिधि जी की रचनाओ मे पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। ऋतु-वर्णन की कविता के कुछ उदाहरण देखिये—

स्त्री रूप मे पावस का वर्णन व्रजनिधि ने बडे सुन्दर ढग से किया है—

वनिता पावस रितु बनि आई।
नीलाम्बर घन दामिनी अगदुति चमकनि सरस सुहाई।
मुक्त-माँग वग-पाँति मनोहर अलकावलि धुरवाई।
नखमनि मेहदी इन्द्रवधू मनों सोहत अति छवि पाई।
नूपुर दादुर बोलनि सोहै चितवनि झर बरसाई।
मेटी विरह ताप 'व्रजनिधि' सब मिली कीनी सियराई[2]।।६४।।

रूपक की स्वाभाविकता और भाषा प्रवाह के साथ शब्दो का गठन इस पद की विशेषता है। वग-पक्ति की स्वेतता का काले वादलो रूपी केशो मे मुक्ता-माग सा लगना सहज कल्पना है।

शरद का वर्णन भी देखिये—

सरद की निर्मल खिली जुन्हाई।
वृंदारण्य तीर जमुना के राका की छवि छाई।
प्रफुलित तरु-बल्ली सोभा लखि रास करन सुधि आई।
'व्रजनिधि' व्रज-जुवतिन-मन-मोहन मोहन बेन वजाई[3]।।६०।।

---

१. ब्रज सिंगार, पृ० १४४
२ ब्रजनिधि पद सगह, पृ० २०७
३. वही, पृ० २०६

रास के प्रसगो मे शरद का वर्णन अन्य स्थानो पर भी आया है। सभी स्थानो पर शरद की सात्विकता का प्रभाव हृदय पर अनायास आधिपत्य कर लेता है। भारतवर्ष जैसे ऊष्ण देश मे, भगवान ने रास-लीला के लिये उपयुक्त ऋतु का चुनाव किया था और भक्तो ने उसकी शोभा का बखान कर अपने हृदय की भावनाओ को प्रकट करने के लिये उसे उपयुक्त पृष्ठभूमि का स्थान दिया है।

थोडे दिनो के पश्चात् वसन्त का आगमन हुआ। अपनी मादकता और सौदर्य के कारण वैसे ही उसे सबने ऋतुराज की पदवी से विभूपित किया है। वसन्त ऋतु मे न अधिक सर्दी होती है और न अधिक गर्मी। रति-लीलाओ के लिये कितना प्राकृतिक चुनाव है। निसर्ग अपना समस्त सौन्दर्य प्रस्फुटित कर रहा है—

फूलीं सबै बन-वेली लतानि पै भावते भौंर गुंजारनि की।
जल-जत्र अनेक छुटैं तिनमांहि मनोहरता जलधारनि की।
हरखैं बरखा छबि की बरखैं रितुराज के साज निहारनि की।
तबकी छबि को पै कही न परै 'ब्रजकोनिधि' स्याम बिहारनि[1] की ॥४४॥

प्रकृति के साथ साथ मानवी कला के द्योतक जल-जत्र मानवत्व एव देवत्व के सगम सकेत है। एक अन्य कवित्त मे स्याम-स्यामा की मुद्रा-वर्णन करते हुए व्रजनिधि कहते है।

सीतल सुगंध मंद मधुर समीर बहै
कोकिल अलापै अलि करत गुंजार कौ।
तरनि-तनूजा-तीरफूल्यौ बनराज तहां
खड़े स्यामा-स्याम गहे कदम की डार कौ।
रंग भरी रागनि अलापै ललितादि अली
जानति सबै ही रुचि प्रीतम के प्यार कौ।
जानि अभिलाष हिये भांति भांति साज लिये
आयो रितुराज 'व्रजनिधि' के बिहार कौ[2] ॥३६॥

---

१. हरिपद संग्रह, पृ० २६३
२. हरिपद संग्रह, पृ० २६०

ऋतु वर्णन के ऐसे मनोरम प्रसगो मे इष्ट की लीलाएँ आरम्भ होती है। भावोद्रेक के अनेक चित्रो का सृजन होता है। कभी मुरली–वादन, कभी रास–नृत्य, कभी फाग और कभी हिंडोलो पर झूलना, कभी दान–लीला कभी मानलीला–सभी तो अनुभाव का रूप धारण कर लेते है। ब्रजनिधि अपनी सरल और हृदय हारिणी भाषा मे भिन्न-भिन्न रूप से अपने हृदय को खोलकर रख देते है। शेष गोपियो की सगति को छोडकर राधाकृष्ण के युगल–विहार का कितना स्वाभाविक अकन है!

बिरहत राधे संग बिहारी।
कुंज-भवन सितता द्रुम-छैयां चद–ज्योति उजियारी।
गलबाहीं दै करत नृत्य दोउ उघटत संग ललिता री।
बहसि बढी आपस मे दुहुँवनि रंग रह्यो अति भारी॥
वाजत ताल, मृदग, झाँझि, डफ, मुरली की धुनि न्यारी।
ब्रजनिधि तान लेत रंग भीनी अति अनूप पिय प्यारी[1] ॥३॥

परस्पर की प्रतिस्पर्धा सगीत की गति को कितना मादक बना डालती है इसका अनुभव सहृदयी स्वय कर सकते हैं।

वात्सल्य भाव का चित्र देखिये—

ललन को जसुमति माई झुलावें।
सुन्दर स्याम पालने झूलें गीत गाई दुलरावें।
किलकि किलकि मैया तन हेरें तब हँसि कंठ लगावें।
'ब्रजनिधि' चूमि बदन मोहन को आनंद उर न समावें[2] ॥२५॥

गोपियो और कृष्ण के हर्षातिरेक की व्यजना रास–नृत्य–वर्णनो मे बड़ी विशदता से अकित की गई है। ब्रजनिधि ने इस प्रसग को केवल ब्रजभाषा मे ही नहीं लिखा बल्कि रास के रेखते उन्होने पृथक रूप मे लिखे है। नृत्य की गति का शब्द–चित्र कितना सुन्दर और स्वाभाविक है—

---

१ ब्रजनिधि मुक्तावली, पृ० १७६

२ वही, पृ० १६१

नाचते मे दिल हरा है, लेता गति उमंग।
भौह-मटक नैन-चटक गीव-हल सुढंग ॥
मंद हँसनि राग-रसनि तान लेत रंग।
भुज की डुलनि कर की मुरनि कटि की लचनि[1] रंग ॥१॥

थिरकन के साथ साथ शब्द भी प्रगतिवान हो रहे है। ताल और लय के इस अद्भुत सगम का परिणाम यह हुआ कि—

बाल विथुरे सुथरे पैरो पै जा पडे है।
मानो अगर सो लपटे-झपटे भुजंग अडे है।
अवर अतर सो तर हैं जिनसे सुमन झडे है।
मखतूल के छूझे हैं जिय मे रहे अडे है ॥८॥

शरीर के तोड़ मरोड गजब ढा रहे है और उस पर—

घमघम घुमाते घुंघरू बेलागि पाय ठोकर।
गति लेके उझक देखन मे अजब अदा होकर।
जिसके देखने से काम हो रहा है नोकर।
कदमो मे जाय पडिये, दिल का गुबार धोकर[2] ॥६॥

वास्तव मे किसी उर्दू कवि ने ठीक कहा है—

मानूस नही शोखिये रफतार कदम से।
बजते नहीं पाजे़ब के घुँघरू कभी छम से ॥

यह तो स्वाभाविक देन होती है अन्यथा सभी नर्तक बन जाते।

ब्रजनिधि ने रास का वर्णन करने मे उसके अलौकिक महत्त्व को दृष्टि से ओझल नही किया है। जिस प्रकार रास, ताल और लय की एकता के द्योतक हैं, उसी प्रकार कृष्ण और गोपियाँ भी आत्मा-परमात्मा की एकता के प्रतीक हे।

एक ही सरूप दोऊ भेद ना दुहूँ मै।
सोभा भई अपार आज देखि व्रज की भू मै ॥१३॥

---

१. रास का रेखता, पृ० ५८
२. वही, पृष्ठ ५६

चौपड के खेल मे भी कृष्ण और राधा के मिलन का वर्णन स्पष्ट है। 'रग-चौपड' की रचना श्रृ गार के रति भाव का अनुभाव मात्र ही तो है। फाग खेलने मे तो जैसे अनुराग ही बिखरता जा रहा है। और ठीक यही दशा हिडोले झूलने के समय होती है। इसमे सदेह नही कि अनुभाव के अन्तर्गत जिन भावो की अभिव्यजना हुई है उसमे दाम्पत्य भाव की प्रधानता है।

सचारी भावो की दृष्टि से व्रजनिधि की कविता रति के अनेक सचारियो से पूर्ण है।

निर्वेद :—

> **तुम बिन नाही ठिकानो मोकौ।**
> **भवसागर मै तुमहीं सबहो मो तारत जोर नहिं तोकौ॥**
>
> **अब तो कष्ट बहुत मै पायौं तातें सरन तिहारे आयौं।**
> **'व्रजनिधि' तुम्हरी ओर निहारो, मेरे कष्ट सबै झट टारौ[1] ॥१३८॥**

व्रजनिधि ने अच्छी तरह अनुभव कर लिया था कि भगवान के अनुग्रह के अतिरिक्त भवसागर से पार होने का दूसरा मार्ग नही है। भले ही इसे उनका तत्वज्ञान समझ लिया जाय जिसकी उपस्थिति पर क्षणिक विपय भोगो और अनित्य सासारिक सुखो से उदासीन होकर मनुष्य अतने आपको धिक्कारता है परन्तु यहाँ निर्वेद शात का स्थायी न होकर रति के सचारी के रूप मे ही प्रस्तुत हुआ है। यह निर्वेद वैराग्य से उत्पन्न नही है। इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी उनकी रचनाओ मे अनेको मिलते है। [2]

असूया—सपत्नि के साथ रात व्यतीत करने पर नायक नायिका के पास गया। नायिका ने देखा हाथ की अगूठी बदली हुई हे। एक चावल से खिचडी परख ली जाती है। फिर एक चिन्ह से प्रेमी की चतुराई का रहस्य क्यो न पा लिया जाय?

वह कहने लगी—

> **प्यारे तुम्हारी चाल बडी अजब अनूठी,**
> **हमसे वनाओ बातें बस झूँठी झूँठी।**

---

१ व्रजनिधि पद सग्रह, पृ० २४६

२ व्रजनिधि पद सग्रह, पृष्ठ २३७, २३९, २४० २४१-४४

चाकरी तुम्हारी, यह तुम्हे ही बने कहते,
हौं कुछ व चलती हौं चाल अपूठी ।
हरचंद वात वनी कैसे मै एक न मानूं,
निज दस्त मे सँभालो, यह किसकी अंगूठी ।
इस शव कहाँ रहे थे सो साँच वताओ,
लूटी थी खूबी किसकी पिया भर भर मूठी ।
सुनकर दिया जवाब विहँसि 'व्रजनिधि' प्यारे,
मुझको तो प्यारी एक तू ही क्यो अब रूठी[1] ॥२७॥

इस रेखते मे नायक का सपत्नि के घर जाना सहन न होना असूया है । असूया का भाव समस्त खडिता विषयक पदो मे प्राप्य है । यह पहले वताया जा चुका है कि खडिता पद परकीया-प्रेम के द्योतक होने के कारण संप्रदाय मे मान्य है । परतु व्रजनिधि ने इस प्रसग के अधिक पद नही लिखे हैं । सूरदास की गोपिका ने उद्धव के सामने कुवजा को इगित करके अपनी असूया भावना का वृहत परिचय दिया है । नागरीदास की कविता मे भी यह भाव विशेष रूप से दृष्टव्य है परन्तु व्रजनिधि तो अधिकतर केलि-कुँज लीला मे ही आनन्द लेने वाले है उनके पात्र औद्धत्य के कारण किसी भी गुण गरिमा एव समृद्धि को सहन न करने के दोष से सर्वथा मुक्त है ।

'मद' का भाव व्रजनिधि के रेखतो मे अधिकतर पाया जाता है परन्तु यह मद हर्षातिरेक का पर्याय है । अपने इष्ट के स्वरूप को देखकर भक्त का हृदय जव आनन्द से विभोर हो उठता है तो फिर वह झूम झूम कर गाने लगता है—

आज अचानक भेंट भई री ।
हौं सकुचाई रही अनबोली उन हँसि नैननि सैनि दईरी ।
लोक लाज वैरिनि रही बरजति ये अँखियाँ बरजोरी गईरी ।
जो सुख चाहति सो सुख दैके करि पठई रस-रूप मई री ।
चंचल चारु चोकनी चितवनि बिनहि मोल मैं मोल लई री ।
स्याम सुजान सजन तै 'व्रजनिधि' प्रीति पुरानी रीति नई री[2] ॥१३५॥

---

१. हरिपद सग्रह, पृ० २५७
२ व्रजनिधि पद संग्रह, पृ० २२३

ब्रजनिधि के रेखतो मे हर्षाधिक्य की भावना स्थान–स्थान पर मिलती है।

'दैन्य' का भाव विनय–लीला के पदो मे स्पष्ट दिखाई देता है। सकटपूर्ण परिस्थिति अथवा अनिष्ट की प्राप्ति के कारण होने वाले दुख को दीनता कहा जाता है। वास्तव मे ओज का नष्ट होना, आत्म–सम्मान हीनता, साहस का अभाव, मलिनता का आविर्भाव एव चाटुकारिता का समावेश, दीनता के मुख्य लक्षण हुआ करते है। ब्रजनिधि की कविता मे यथास्थान इनका प्रयोग हुआ है। इष्ट के अनुग्रह की अभिलाषा रखने वाले भक्त की आत्मग्लानि एव साहसहीनता का एक चित्र देखिये—

मेरे पापन कौ है नाहीं ओर।
जो मेरे कहुं पापनि गिनिहौ तौ मोकौं कहु नाहिन ठौर।
आछे कर्म नाहिं हैं मोमै खोटे कर्म भरे हैं कोर।
ब्रजनिधि पीर हरोगे मेरी तुम ही सों है जोर[1] ॥२४०॥

अपनी सीमाओ और इष्ट की असीमता से परिचित होने पर ही भक्त के हृदय मे उपरोक्त भाव प्रकट हुए हैं।

अपनी व्यथाओ से व्याकुल होकर ही वह सीधा इष्ट के दरबार मे जाकर पुकार करता है—

अब भट गोविंद करो सहाय।
आग्या सो मै काम कियो है काज करो अब दुखहि बिलाय ॥
गरीब नवाज कहाइ विरद अब गज की सहाय करी ज्यो जाय।
मै दुख पाऊँ अब हो 'ब्रजनिधि' तेरे चरन सरन मै आय[2] ॥२४१॥

इसी प्रकार कई अन्य पदो मे भी यह भाव प्रगट हुआ है।[3]

---

१. ब्रजनिधि पद संग्रह, पृ० २४७; उदाहरण के लिये देखिये रेखता संख्या १०६, १०८, ११२, ११३ आदि।

२ ब्रजनिधि पद संग्रह, पृ० २४७

३. वही, पद स० २३७, २३८, २४२, २४४

'चिन्ता' चिंता भाव का प्रस्फुटन ब्रजनिधि की उस उद्विग्नता से प्रगट होता है जब इष्ट की प्राप्ति न होने पर वह आतुरता के वशीभूत होकर कहते हे—

बक विलोकनि हिये अरी री।
जब तें दृष्टि परे मनमोहन लोक–लाज कुल–कानि टरी री।
दिन नहिं चैन रैन नहिं निद्रा ना जानौ विधि कहा करी री।
ह्वै निसक 'ब्रजनिधि' सो मिलि हौं सो वह ह्वै है कौन घरी री[1] ॥४०॥

चिन्ता के वशीभूत गोपिका को तभी शाँति मिल सकती है जब उसे अपने प्रिय के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हो। अतएव आतुरता और मिलन की उत्कठा का बडा स्वाभाविक चित्र अकित किया गया है। देखिये—

को जानै मेरे या मन की।
रटना लगी रहै चातक लौं सुंदर छैल साँवरे घन की।
जब तें श्रवन परी बसी-धुनि दसा भई औरै कछु तन की।
ले चलि मोहि सखी, 'ब्रजनिधि' जहाँ वहै गैल श्री वृंदावन की[2] ॥३८॥

रेखते सभी प्राय॰ मोह के भाव से ओतप्रोत है। यद्यपि इस सग्रह का आरम्भ प्रेम–पथ की करालता और वियोग-निवेदन से हुआ है परन्तु दूसरे रेखते मे ही लेखक ने प्रियदर्शन के प्रभाव के रूप मे अपने मोह की अभिव्यजना कर डाली हैं। आँखे चार हुई, अभाव मे स्मृति का भाव जागरित हुआ। इष्ट की पूरी तस्वीर आँखो के सामने चित्रित हो गई। धीरे धीरे स्मृति ने आतुरता का रूप धारण कर लिया। मोह का इससे अधिक मनोवैज्ञानिक वर्णन और कहाँ मिलेगा?

सखि एक साँवरे से चार चश्म जब हुई है।
ताकत जु ता कहूं फिर नहिं ख्वाब निस छुई है।
रग ज़ाफरानी जिसके कजदार सिर लपेटा।
छबि चन्द्रिका–हलन की गोया मैंन का चपेटा।

---

१. ब्रजनिधि पद सग्रह, पृ० २०१

२. वही, पृ० २०१

अबरू कजदुम कमाँ से जख्म सीने में भया है।
जंजीर जुल्फ की में दिल बंद हो गया है।
उस चश्म की निगह से पीरख रखें तु को सी।
बेसर करें जो बे-सर दुर दुर बुलाक-मोती।
उसकी सहज हँसी में असरी ग्रौर का मरन है।
ब्रजनिधि मिलाय मुस्की यह साँवरे बरन है[1] ॥२॥

राधा के प्रति कृष्ण के आकर्षण में भी मोह का भाव ही प्रधान[2] है। परन्तु यह मोह केवल (बाह्य) सांसारिक भाव है यह नहीं भूलना चाहिये।

शृंगार के अन्तर्गत संचारी भावों के अनेक चित्र ब्रजनिधि की कविता में मिलते हैं। यहाँ केवल उदाहरण स्वरूप संचारियों का उल्लेख मात्र किया गया है। अतएव शृंगार की प्रधानता उनके काव्य में स्पष्टतः लक्षित होती है।

वियोग-शृंगार का वर्णन भी ब्रजनिधि की कविता में पाया जाता है। परन्तु सूर के से कवियों जैसी अभिव्यञ्जना उसमें दिखाई नहीं देती। भ्रमरगीत विषयक पदों की ब्रजनिधि के काव्य में अत्यधिक कमी है क्योंकि दो चार प्रसंग देकर ही उन्होंने इससे अवकाश ग्रहण कर लिया है। सम्प्रदाय के प्रचार और भक्ति की दृढ़ता के प्रतिपादन एवं योग आदि मार्गों के ग्रहण करने की अनावश्यकता का जो सजीव वर्णन अष्टछाप के कवियों ने है, ब्रजनिधि के काव्य में उसका अभाव है। गोपिका विरह की परिपुष्टता भी उनके काव्य में नगण्य है अन्यथा ब्रजनिधि की समस्त रचनाएँ इष्ट की प्रेम-लीलाओं और उनसे प्रवाहित होने वाले हृदय-व्यापारों एवं भक्ति-भावों से सम्बन्धित भरी हैं।

ब्रजनिधि की भाषा—ब्रजनिधि ने तीन भाषाओं का प्रयोग किया है-ब्रजभाषा, राजस्थानी (जयपुर की भाषा) और रेखता। अधिकांश पद और छन्द ब्रजभाषा में लिखे गये हैं जिसका कारण स्पष्ट ही है। ब्रजभाषा ही उनके समय में काव्य की भाषा थी और इसी भाषा में उनके इष्ट ने अपनी लीलाओं में अपने भावों को व्यक्त किया था। राजस्थानी ब्रजनिधि की मातृ-भाषा थी। अतएव दोनों अन्योन्याश्रय भाव से सम्बन्धित थे। शृंगार-वर्णन के लिये राजस्थानी बड़ी उपयुक्त भाषा है।

---

१. रेखता संग्रह, पृ० ३०९
२. प्रीतिलता, प्रेम-प्रकाश

राजस्थान की वीरता की ऐतिहासिक कहानिया, शृ गार की पृष्ठभूमि के लिये बडी उपयुक्त प्रतीत होती हैं। वीरता के साथ शृ गार का यह मिश्रण पढने वाले के हृदय मे जिस रोमास भावना को उत्पन्न कर देता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। यही कारण है कि ब्रजनिधि के राजस्थानी पद बड़े स्वाभाविक बन पडे है। मोहन की बाँसुरी का प्रभाव और उनकी लीला मे सम्मिलित होने की अभिलाषा को कैसे सरल शब्दो मे व्यक्त किया गया है !

मोहन थाँरी बाँसुरी मे रंग ।
मोह लई सब अद्‌भुत नारी ले अति तान तरंग ।
राग भरी यह मधुर सुरन सों बाज रही सुधंग ।
ब्रजनिधि को अब भुज भरि लीजे कीजै रंगरो[1] संग[2] ।।७४।।

इस भाषा मे उनके अनेको पद मिलते हैं।[3]

रेखता तत्कालीन शैली थी। नागरीदास जी ने भी रेखते लिखे थे। इतना कहना पर्याप्त है कि उर्दू, फारसी, पजाबी और हिन्दी सभी के मिश्रण से यह पुटपाक बनता है। ब्रजनिधि ने पजाबी मिश्रित रेखते भी लिखे है और उर्दू फारसी मिश्रित भी। उर्दू मिश्रित रेखते पूर्वोक्त प्रसगो मे दिये जा चुके है।

सलोने स्याम ने मन लीता
रत्त दिहाड़े कल नहिं पड़दी क्या जाणू क्या कीता ।
कहर विरहदी लहर उठंदी दिल नहिं रहे सुचीता ।
'ब्रजनिधि' मिहरि नजरबा जूं अब क्यो होवे चित चीता ।।५०।।

तीनो भाषाओ पर ब्रजनिधि का समान अधिकार है। उनकी भाषा सुघड, मँजी हुई, प्रवाह-युक्त और प्रौढ है !

ब्रजनिधि के अनुवाद—मौलिक रचनाओ के अतिरिक्त ब्रजनिधि ने भर्तृहरि के नीति शतक, शृ गार शतक और वैराग्य शतक का भी रूपान्तर हिन्दी मे प्रस्तुत किया है

---

१. ब्रजनिधि मुक्तावली, पृ० १७४
२. खेल का साथी: वल्लभ संप्रदाय में भक्ति की यही भावना प्रधान है।
३ ब्रजनिधि मुक्तावली पद सं० ८३, ८७, ९०-९२, ९५-९८ इत्यादि।
४. वही पृ० १६६

और 'शतक' के स्थान पर 'मजरी' शब्द का प्रयोग उचित समझा है। भर्तृहरि राजपद प्राप्त करने के उपरान्त राज–योगी बने थे अतएव उनके जीवन मे नीति और शृंगार स्वाभाविक उपादान के रूप मे आए थे। दोनो के उपभोग के अनन्तर उनकी वैराग्य भावना तीव्र हुई थी और उसी मे उन्हे शाति मिली थी। अतएव इन तीनो रचनाओ मे व्यक्तिगत अनुभूति की तीव्रता एव सत्य निहित है। ब्रजनिधि भी राजघराने मे उत्पन्न हुए थे। उनकी जीवनी बताती है कि किस प्रकार अपने राजमहल मे जीवन मे दृढता और स्थायित्व देने के लिये उन्हे सघर्षमय जीवन व्यतीत करना पडा था। राजमहलो का शृंगारी जीवन भी उनके लिये परम्परा से प्राप्त वातावरण था। अतएव इन दोनो के ससर्ग ने ही उनकी अन्तरतम् भावना को भक्ति का रूप प्रदान किया। अनन्य भक्ति के लिये उन्हे इसी दृढ भित्ति की आवश्यकता भी थी।

ब्रजनिधि के प्रेम का रूप सासारिक अभिव्यजना प्राप्त करते हुए भी जैसा उनकी रेखता रचनाओ अथवा प्रेम-पथ आदि से प्रतीत होता है, आध्यात्मिक पर्यवसान मे ही अपनी शान्ति प्राप्त कर सका था। उनके पद–सग्रह ही उनकी वास्तविक रीति के परिचायक है। ब्रज-शृंगार मे ससार से विरक्ति और भगवत-प्रेम की लिप्सा की मधुर उद्‌भावना वर्तमान हैं।

भर्तृहरि की रचनाओ के अन्य अनुवाद भी हिन्दी मे हुए पर ब्रजनिधि का अनुवाद सरस और सरल दोनो प्रकार का है। नीति–शतक का एक श्लोक देखिये–

व्यालं बाल मृणाल तन्तुभिरसौ रोद्धु समुज्जृम्भते।
छेत्तु ब्रजमणीञ्छिरीष कुसुम प्रान्तेन सन्नह्यते।
माधुर्यं मधु विन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते।
नेतुं वाञ्छतियः खलान्पथि सतां सूक्तै. सुधास्यन्दिभि[1] ॥६॥

(वह पुरुष कोमल कमल–तन्तुओ से हाथी को बाधना चाहता है, शिरीष पुष्प की पखुडी से हीरे को भेदना चाहता है और मधु की एक बूँद से क्षीर–सागर को मीठा बनाना चाहता है, जो दुष्टो को अपने अमृत तुल्य वचनो से सन्मार्ग पर लाने की इच्छा करता है।)

---

१. नीति शतकम्, ६

इसी का हिन्दी रूपान्तर है—

कमल-तन्तु सो बाँधि व्याल बस करन उमाहत ।
सिरीस-पुहुप के तार वज्र को वेध्यो चाहत ।
बूंद सहत की डारि समुद्र को खार मिटावत ।
तैसे ही हित-बैन खलनु के मनहि रिझावत ।।
वे नीच अपनपौ तजत नहि, ज्यौं भुजंग त्यौं दुष्ट जन ।
पय प्याय सुनावत राग बहु, डसिबे ही मै रहत मन ।।८६।।[1]

ब्रजनिधि ने छप्पय मे अनुवाद करने के कारण मूल को कुछ विस्तृत कर दिया है परन्तु उनमे छप्पय का कुंडलिया भाग मूल का यथावत अनुवाद है ।

इसी प्रकार श्रृंगार-शतक का उदाहरण है—

भ्रूचातुर्यात्कुंचिताक्षाः कटाक्षाः
स्निग्धा वाचो लज्जितान्ताश्च हासा ।
लीला मन्दं प्रस्थितञ्च स्थितञ्च
स्त्रीणामेतद् भूषणं चायुधञ्च ।।३।।[2]

(भौह फेरने की चतुरता, अर्धनेत्रो के कटाक्ष, मधुर वचन, लज्जायुक्त हास्य, लीला समन्वित चलना और ठहर जाना, ये स्त्रियो के आभूषण और अस्त्र है ।)

ब्रजनिधि के अनुवाद की तुलना कीजिए —

करत चतुरता भौंह नैनहू नचत चितैबो ।
प्रगटत चित कौ चाव चाव सौं मृदु मुसिकैबो ।।
दुरत मुरत सकुचात गात अरसात कहावत ।
उझकत इतवत[3] देखि चलत ठठकत छबि छावत ।।

---

१ नीति-मंजरी
२ श्रृंगार शतकम्-३
३ इधर-उधर, इत-उत

ये हैं आभूषन तियन के अंग अंग सोभा धरन।
अरु ये ही सस्त्र समान हैं जुव[1]-जन-मन-मृग-वध करन ।।२६।।[2]

अनुवाद मे मूल की रक्षा भी है और कवि अभिप्राय की स्पष्ट व्यजना भी।

वैराग्य-शतक के सम्बन्ध मे भी यही बात कही जा सकती है अतएव कहना पडेगा कि ब्रजनिधि मौलिक रचना के साथ साथ अनुवाद मे भी पटु थे। उनका सस्कृत ज्ञान भरपूर था और सक्षेप मे यही कहना उचित होगा कि वह कई भाषाओ के पण्डित थे।

राजघराने के कवियो मे ब्रजनिधि का स्थान किसी से कम नही हे। रचनाओ की सख्या, विषय प्रसगो का चुनाव, भगवतभक्ति की गहनता, भक्ति भावना की अभिव्यजना, भाषा पर अधिकार और शैलियो की उत्कृष्टता एव काव्य की प्रभावोत्पादकता सभी गुणो से उनकी ग्रन्थावली आद्योपान्त भरी हुई है।

ब्रजनिधि स्वय ही कवि नही थे, वह ज्ञान के पुजारी और कवियो का आदर करने वाले राजा थे। इनके प्रोत्साहन से वैद्यक का ग्र थ 'प्रताप-सागर'[3], ज्योतिष का 'प्रताप-मार्तण्ड' (जातक-ताजक सार), धर्मशास्त्र[4] का 'प्रतापार्क' आदि कई ग्र थ बने। सगीत सम्बन्धी 'राधा गोविंद सगीत सार', 'राम रत्नाकर' 'स्वर सागर' एव 'ब्रज-प्रकाश' की रचना भी इन्ही के समय मे हुई। फारसी के 'दीवाने-हाफिज' और 'आइने-अकबरी' का हिन्दी मे अनुवाद भी इनकी आज्ञा से हुआ। इसके अतिरिक्त अमृतराम कृत 'अमृत-प्रकाश' पद-ग्र थ, बखतेश कवि का टकसाली पदो का संग्रह, एव राव शभूरामजी, महाकवि गणपतिजी 'भारती', गुसाई 'रसपु ज जी', 'रसराजजी', 'चतुर शिरोमणीजी' आदि अनेक कवियो के पद सग्रह बने। महाराज ने कई 'हजारो' का भी सग्रह कराया था जिनमे 'प्रताप-वीर-हजारा और 'प्रताप सिंगार-हजारा' प्रसिद्ध हैं।[5]

---

१ युवा

२. शृंगार-मंजरी

३ हिन्दी मे भी इसका अनुवाद करवाया जो 'अमृत सागर' नाम से प्रसिद्ध हे।

४. धर्मशास्त्र के ग्रंथो का भी अनुवाद करवाया।

५. ब्रजनिधि ग्रंथावली-प्रस्तावना, पृ ४७-४६

हिन्दी साहित्य के लिए महाराज प्रतापसिह का व्यक्तित्व एक अनुपम वरदान प्रमाणित हुआ। सन् १८०३ मे वह स्वर्ग सिधार गए।

महाराज प्रतापसिह के उपरान्त उनके पुत्र महाराज जगतसिह गद्दी पर वैठे। इनके नमय मे राजमहल मे जो घटनाएँ हुई उनका सम्वन्ध राजनीति से ही अधिक है और साहित्य से नही के वरावर हे। यह जयपुर के प्रथम महाराजा थे जिन्होने अग्रेजो से सन्धि की थी। सन् १८१८ मे इनका देहान्त हुआ। इनके पश्चात् जयसिह जयपुर राज्य के महाराजा वने। इनके राजा होने तक राज्य मे तरह-तरह के कुचक्र और षडयन्त्र चलते रहे। अग्रेजी सरकार द्वारा नियुक्त एजेन्ट ने भरपूर प्रयत्न कर राज्य मे शाति करनी चाही परन्तु शान्ति वडी कठिनता से स्थापित हो सकी। लगभग १६ वर्ष राज करने के उपरान्त इनका देहान्त हो गया। इनके पश्चात् महाराज रामसिह का राज्य-काल रहा (सन् १८८४-८६ ई) और तदुपरान्त महाराज माधोसिह का।

हिन्दी साहित्य के विषय मे इन महाराजाओ के समय कोई मे उल्लेखनीय प्रगति नही हुई। वास्तव मे महाराज प्रतापसिह के पश्चात् इस राजघराने से विशेष प्रोत्साहन मिलने के प्रमाण उपलव्ध नही होते।

विहारी, कुलपति मिश्र और पद्माकर जैसे कवियो के आश्रयदाता जयपुर राजघराने के महाराज थे और इसलिए जयपुर का राजघराना हिन्दी साहित्य के लिए स्मरणीय रहेगा।

नोट—उपरोक्त विवरण मे जो विभिन्न संग्रह उद्धृत किये गये हैं वे सव 'व्रजनिधि ग्रथावली' के पद विभाग के अन्तर्गत है।

: ७ :

बूंदी का राजघराना

—"गाडा टले–हाडा नहीं टले"

बूदी राजघराने का सम्बन्ध राजपूतो की चौहान शाखा से है। इस शाखा का इतिहास कर्नल टॉड[1] और वश भास्कर के लेखक ने[2] अपने अपने ग्रथो मे विशेष रूप से दिया है। आरम्भ मे चौहानो की हाडा शाखा का राज्य कोटा और बूदी दोनो राज्यो पर था और दोनो ही सम्मिलित रूप से हाडो द्वारा शासित हो रहे थे परन्तु आगे चलकर कोटा और बूदी दोनो पृथक एव स्वतत्र राज्य हो गये। कोटा बडा राज्य बन गया और विस्तार मे बूदी का राज्य उससे छोटा रहा।

डा० मथुरालालजी शर्मा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक[3] मे हाडा वश के प्रतिष्ठापक हरराज अथवा हाडाराव का उल्लेख किया है और (हाडा वश) का आदि-जन्मदाता उन्ही को माना है। डाक्टर साहब ने बूदी राज्य की स्थापना के सम्बन्ध मे भी अपनी पुस्तक मे, थोडा सा सकेत किया है। हमारे दृष्टिकोण से बूदी राज्य का इतिहास इतना आवश्यक नही है जितना कि उसके राजघराने के द्वारा हिन्दी-साहित्य के विकास का विवरण। अतएव इसी प्रसग तक हम विषय को सीमित रखना चाहते हैं।

दुर्भाग्य से अन्य राजघरानो की भाँति, बूदी के राजघराने की साहित्य सेवा का कोई क्रमबद्ध एव प्रामाणिक विवरण कही भी उपलब्ध नही होता। महाराव रामसिहजी

---

1. Annals & Antiquities of Rajasthan by James Tod. 1950 Edi. Pp. 355–476
२ वंश भास्कर, सूर्यमल्ल सम्पादित पं० रामकरण शर्मा, सम्वत् १९५६, भाग १, पृ. ३६७ आदि।
३. कोटा राज्य का इतिहास, डा० मथुरालाल शर्मा, भाग १, पृ० ५६

की आज्ञा से लिखित (वश भास्कर) भी अनेक अतिशयोक्तियो से भरपूर है। ऐसा अवस्था मे अधिक सामग्री की उपलब्धि दुर्लभ ही है।

बूदी राजघराने के सस्थापक देवाजी हाडा से लेकर महाराव राजा रघुवीर सिहजी तक २३ राज्यो के नाम इतिहास मे आते हैं। इनमे से अनेक राज्य अपने अपने समय के कवियो और विद्वानो के आश्रयदाता रहे परन्तु काव्य के क्षेत्र मे स्वय अवतीर्ण होने का श्रेय सर्वप्रथम श्री महाराव राजा बुद्धसिहजी को प्राप्त हुआ। महाराव बुद्धसिहजी का जन्म सन् १६८५ ई० मे हुआ था। अपने पिता राव अनिरुद्धसिह की मृत्यु के पश्चात् सन् १६६५ मे केवल दस वर्ष की आयु मे यह राज-गद्दी पर बैठे। राज्याभिषेक के अनन्तर औरगजेब ने उन्हे दिल्ली बुला लिया और अपने पुत्र शाहआलम के पास रखा। इनकी सेवाओ से प्रसन्न होकर टोक का परगना औरगजेब ने इन्हे इनाम मे दिया। काबुल के युद्ध मे शाहआलम के साथ यह भी भेजे गये। शाहआलम का बुद्धसिह पर बडा विश्वास था। दक्षिण मे अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर जब शाहआलम दिल्ली की ओर रवाना हुआ तो बुद्धसिहजो को ही उसने अपनी सेना का सेनापति बनाया। जाजव नामक स्थान मे इन्होने आजम को हराकर उसे मार डाला। शाहआलम (बहादुरशाह अथवा मुअज्जम) ने प्रसन्न होकर इन्हे महाराव राजा की पदवी से विभूपित किया। और भी अनेक पदवियाँ इन्हे मिली। कुछ घटनाओ को लेकर लिखे गये इनके छंद प्रसिद्ध है। एक बार बुद्धसिह जी को सैयदो से लडना पडा। जिनके विषय मे उन्होने एक कवित्त कहा है —

ऐसी ना करी है काहू आजलौं अनैसी जैसी
सैयद करी है ए कलंक काहि चढ़ेंगे।
दूजे को नगारो बाजै दिल्ली मे दिलीश आगे
हम सुनी भागे तो कविन्द कहा पढ़ेंगे।
कहे राव बुद्ध हमे करने है युद्ध स्वामी
धर्म में प्रसिद्ध जे जिहान जस मढ़ेंगे।
हाडा कहवाय कहा हारि करि कढ़े तातें
झारि समशेर आज रारि करि[1] कढ़ेंगे ॥२॥

---

१. राजरसनामृत—मुंशी देवी प्रसाद कृत—पृष्ठ ६६–७०

आत्म सम्मानी और स्वामी भक्त वीर की वाणी का कितना सत्य प्रदर्शन है। दूसरी एक और घटना इस प्रकार है। जोधपुर नरेश, महाराज जसवन्तसिहजी की मृत्यु के उपरान्त औरंगज़ेब ने मारवाड को अपने राज्य मे मिला[1] लिया। इस घटना के २७ वर्ष पश्चात् औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् जब महाराज अजीतसिंह ने अपना राज्य छीनकर वापस अपने अधिकार मे कर लिया तो बुद्धसिंह जी को यह समाचार सुनकर बडी प्रसन्नता हुई और उन्होंने यह सवैया लिखकर अजीतसिंह के पास भेजा—

देंत दिल्लीपति भीर महाजल सैंद हिलोरन तें अति बाढी
हिन्दुन की हद दाव दस दिसो तेज तुरक्क तरंगम चाढ़ी
मारू महीप प्रभु अवतार ह्वै धीरज धार गही खग गाड़ी
यों कहि बुद्ध अजीत बराह ह्वै बूडी धरा कमधज्ज ने काढ़ी[2]।

महाराज अजीतसिंह को वाराह भगवान का रूप देकर दिल्लीपति को महा जल-सागर मानकर उनके हाथो से मरुभूमि का उद्धार करने की उक्ति मे कितनी मौलिकता है।

इसी प्रकार एक बार और बुद्धसिंहजी ने महाराज अजीतसिंह की प्रशसा की थी। मौहम्मदशाह से अनबन होने पर, अजीतसिंह ने चढाई करके साँभर और अजमेर से बादशाही अधिकार उठा दिया। इस घटना पर बुद्धसिंहजी ने यह सवैंया कहा था—

बात कराह कराह कहै जु मुहम्मदशाह अमीरन सों
सरजोर भयो है मरूधर राज अजीत सबै रनवीरन सो।
महाराव[3] निकाल खराब कियो जिन मारे हुसैन[4] जु तीरन सो
साँभर छीन लई सो लई न टरयो अजमेर के पीरन सों।

---

१. स० १७३६ मे

२ राजरसनामृत-पृष्ठ ७०

३. महाराब खाँ
४. हुसैन खाँ] यह दोनो बादशाही सरदार थे।

भावी को रोकने मे भला अजमेर के पीर क्या करते ? सोमनाथ पर आक्रमण होते हुए, मूर्ति ने शत्रुओ को कही रोक लिया था क्या ? महाराव का हिन्दुत्व उनकी इन रचनाओ से स्पष्ट ही प्रगट हो रहा है । शृ गार का एक और छद 'राजरसनामृत' मे दिया गया है । नायिका मान करके बैठी है । नायक आकर मना रहा है । इस मान–मनुहार मे अनुप्रास की छटा देखने योग्य है ।

कीनो तुम मान, मै कियो है कब मान अब
कीजै सनमान अपमान कीनो कब मै ?
प्यारी हँसि बोलु और बोलै कैसे बुद्धराज
हँसि हँसि बोलु हँसि बोलि हैं जु अब मै ?
दृग करि सोहे कोरि सोहै करि जानत है
अब करि सोहे अनसोहै कीने कब मै ?
लीजे भरि अंक जाहि आये भरि अंक हो न
काहू भरि अंक उर अंक देखे अब मै[1] ।

राव बुद्धसिहजी के साथ आम्बेर के राजा जयसिह ने जो षडयन्त्र किये और उनके कारण उन्हे जो कष्ट उठाने पडे, कर्नल टॉड ने उनका कुछ विवरण अपनी पुस्तक में दिया है ।[2]

राव बुद्ध के पश्चात् उनके पुत्र राव उम्मेदसिह बूदी के शासक हुए । एक बार उन्होने अपने पिता का प्रतिशोध लेने मे सफलता भी प्राप्त की परन्तु अन्त मे उन्हे आम्बेर नरेश से हार कर चम्बल नदी के कगारो मे आश्रय लेना पडा । समय समय पर युद्ध और प्रतियुद्ध होते रहे । कभी उम्मेदसिह के हाथ विजय आई और कभी हार । अत मे अपने पुत्र अजीतसिह के पक्ष मे उन्होने राज्य का परित्याग कर दिया और स्वय तीर्थ यात्रा को निकल गये । सन् १८०४ मे उनका शरीरान्त हुआ । अजीतसिह का शासनकाल भी अधिक समय तक नही रहा । उनके पश्चात् बालक विष्णुसिह राज्य के अधिकारी हुए । इनके अल्पायु काल मे राज्य का शासन इनके पितामह महराव उम्मेदसिहजी की आज्ञा के अनुसार चलता रहा ।

---

१. राजरसनामृत–पृष्ठ–७१

2. **Annals & Antiquities of Rajasthan by James Tod. 1950 Edı. Pages 392–94.**

विष्णुसिह जी श्रीरगजी भगवान के अनन्य भक्त थे। अतएव इनकी कविता भक्ति भाव से ओतप्रोत है। अपने इष्ट के प्रति उनका कथन है—

आन को ध्यान धरौं न कबै नहिं गान करों मुख तै पन मेरे।
कीरति रावरी कौं सुनि कानन मो मन मानि गुमानन घेरे।
देकर राजन काज हमे करुणा करि कै करुनावर हेरे।
तारि अतारी दया ढर तापर हौं रगनाथ रग्यौ रंग तेरे।

रगजी के रग मे रग कर इष्ट क्यो दूसरे की ओर निहारने लगा ? यही तो भक्ति की दृढता है। रगजी के रूप मे ही श्रीराम का वर्णन विष्णुसिंह ने अनेक छदो मे किया है। अपने इष्टदेव राम की चरण-वदना करते हुए उन्होने कहा है—

काहू के कुभावत सपूत पूत काहू के सु,
आवत है माल महा मुलकन गाम के।
केई दौर चाकरी करे है केई बैठे घर,
भोजन करत भाग फूले फले नाम के।
ऐसे बहु विमल विलोकत विहल भयो,
मन मे गह्यो है एक अवर न काम के।
जग मे न जॉचि हौं जियत जन प्रति प्रति,
मेरे धन धाम धरा पद जुग राम के।

जिसकी कान्ति को देखकर कैलाश निवासी महादेव भी एक बार अपने को हार बैठे हो उसकी आभा के सामने अन्य वस्तुएँ कहाँ तक टिक सकती है ? कैसा अदभुत् प्रकाश है राम के प्रताप का !

दशरथ-नन्द महाराजा राजा रामचन्द्र,
तेरा जस चन्द्र रहयो अवनि प्रकास के।
ताको तौ किरनि करि कलित ललित भये,
सेत ही सकल अंग वसन विलास के।

मेरू मैनाक गंधमादन हिमाचल हुवै,
विन्ध्य के सहित सब भासै इकभास के।
दीस तन न्यारे सब एक से निहारे गिरि,
हेरि हेरि हारे हर भोरे कैलास कै[1] ॥१७॥

राम नाम की महिमा भी देखने ही योग्य है। सीता की प्राप्ति के लिये लका पर चढाई की गई। बीच मे समुद्र ने गति अवरोध किया। मत्रणा होने लगी समुद्र को पार करने के लिए पुल कैसे बाधा जाय ? राम नाम लिखकर पत्थर डालने आरम्भ किये। फिर क्या था सफलता हाथ लग गई। उसी दिन से राम नाम की महिमा का प्रचार होने लगा—

लक प्रमान को आदि मिला नहिं तीर जलाशय के उतरायो।
देखि अगाध भयान महादल भाल कपीसन को हहरायो।
राम को नाम लिख्यो तिन ऊपर ऊपल लै जल मांहि तरायो।
ता दिन तै वह रावरे नाम को तारक मन्त्र सबै ठहरायो[2]।

राम–नाम की गुण ग्राहकता के लिये कैसी मौलिक कल्पना है।

राम के प्रताप का एक अन्य चित्र देखिये। राम की चतुरगणी सेना विजय के निमित्त प्रयाण कर रही है। परिणाम यह हुआ कि सभी दिशाये धूलि से पूरित हो गईं और देवताओ ने भी अपने विमानो को रोककर उसे आगे जाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। मार्ग–पथ–चाल पर कैसा सयम दिखाया गया है—

श्री रघुनाथ की सेन सजी सु बजी सुनि नौबति ह्वै घन हीनो,
घोरन की खुरतारनि खुन्दि महीतल को मनु मर्दन कीनो।
धूरितै पूरि सपूरि दशो दिशि अम्बर मे मिलि डम्बर कीनो,
सैल कढ़े सुर गैल न पावत रोकि विमानन को मग दीनो[3]।

---

१ राजरसनामृत, पृष्ठ ७५
२ वही, पृष्ठ ७४
३. वही, पृष्ठ ७४

राम की सेना की नौबत की आवाज़ बादलो की गर्जन तक को हरा डालती है। इसीलिये तो कवि का कहना है कि चाहे कोई वेद पढकर पडित हो जावे, मनन कर के ज्ञानी बन जाय और तीर्थ–यात्रा करके अपने को पवित्र समझने लगे परन्तु सत्य यह है कि राम के बिना सभी व्यर्थ है। अपने कष्ट की अनुभूति होने पर और भगवान की सहायता मे विलब होते देखकर भक्त किस विह्वलता और दीनता से उन्हे पुकारता है--

परम प्रहलाद की पुकार सुनि ताहि काल,
करि विकराल खभ फारि छबि छाई है।
जिते अवतार जग व्यापित है बार बार,
कीरति की कला कान कलित कमाई है।
दौरत दुवारिका तें द्रौपदी दुवार गयो,
और कहा कहौं गाय सेसन सुनाई है–
मेरी बेर दीन बन्धु देर क्यो दयाल अब
तारन कौं वारन कौ बार न लगाई है[1] ॥५॥

इस कवित्त मे इष्ट की आतुरता और विरह निवेदन के साथ यमक की छटा भी देखने योग्य है। वैसे भाषा और भाव दोनो साधारण है परन्तु सरलता के साथ सत्य के सहयोग ने वाणी को मर्मभेदी बना दिया है। परिणामस्वरूप अनायास ही पाठक की सहानुभूति लेखक के साथ हो जाती है। सच्चे हृदय से निकली हुई कविता मे यही गुण विशेष होता है।

अन्य कवियो की तरह विष्णुसिंह का भक्त हृदय केवल साम्प्रदायिकता की सकुचित सीमा मे ही आबद्ध नही रहा। उन्होंने कृष्ण और शिव के व्यक्तित्व को भी अपनाया। कृष्ण वैसे भी राम की अपेक्षा भक्तो के इष्ट देव अधिक रहे हैं। उनके रूप की मोहिनी और उनके लोकरजन कार्यो पर कौन सहृदयी मुग्ध नही हुआ? सौन्दर्य की इसी राशि का वर्णन करते हुए महाराव कहते है—

मरकत के सो ओप ओपत अपार तन,
तापै पट पीत को दुपट उरझावनो।

---

१. राजरसनामृत, पृष्ठ ७२

मोर को मुकुट औ लकुट बनमाल हार,
भूषन सकल विधि तन पैं बनावनो ।
लटकि लटकि चले मटकि मटकि मुख,
अटकि भटकि मेरो मन ललचावनो ।
जमुना के तट बंसीवट के निकट मिल्यो,
सुन्दर चटक नट नागर सुहावनो ।[1]

सायकाल के समय गायो को चरा कर घर की ओर लौटते हुए कृष्ण का चित्र है—

सांझ समै सब धेनु समेटि चले बनतैं हरि आवन काजे ।
पायन की रज धूम चढ़ी सु चढ़ी तन अम्बर पैं छबि छाजें ।
मोर पखान किरीट सजे बजि यौं मुरली मुरलीन समाजे ।
गोकुल के गन गैल गहै सब आपनी आपनी आरती साजे[2] ॥२१॥

मुरली और श्याम तो जैसे अभिन्न वस्तु है। और इस मुरली ने क्या-क्या गज़ब नही ढाये !

बैन बजावत गावत आवत नाचत राचत राग घनेरो ।
हालन गैलन गाय बिराजत ता छबि लै ब्रज आज बसेरो ।
चातक ज्यो चित चौप रहै बरसे परसे कवि आँखिन भेरो ।
रूप अनूप लख्यो सु चहैं हम सुन्दर श्याम शिरोमणि केरो ।

सौन्दर्य आकर्षण का प्रधान हेतु होता ही है। उस पर यदि किसी मे शील और वाणी की मधुरता हो तो सोने मे सुहागा मिल जाता है। कृष्ण के ऐसे ही रूप जाल मे फस कर उनका कोई प्रेमी कह रहा है—

---

१ राजरसनामृत, पृष्ठ ७६

२. वही, पृष्ठ ७६

कानर की सुनि कानन मे कहि तानन गानन आनि बसाई।
यौं करि चाहि वढी उर मे उरिकैन मुरयौं कढि जानन चाई।
बैनन नैनन सैनन कौ लखि साँवरी सूरत मो मन भाई।
फन्द परयो मन मोहन कै निकस्यो न गयो जकरयौं जनु जाई ॥२५॥[1]

श्रवण द्वारा पूर्वानुराग की स्थिति और फिर उसका परिणाम नितान्त सरल भाव से व्यक्त हुआ है। अनुप्रास की योजना ने इस अभिव्यक्ति मे चार चाँद लगा दिए हैं। मानसिक भावनाओ का विकास भी अनायास ही मनौवैज्ञानिक रीति से आ गया है। वास्तव मे भक्त के मस्तिष्क के विकास का अध्ययन मनोविज्ञान-विशारद के अनुसधान का अधिकारी विषय है। हिन्दी साहित्य इस सामग्री से भरपूर है। पूर्वानुराग अब मजिष्ठानुराग की स्थिति पर पहुँच कर क्या रग ला रहा है—

मोर की पच्छ मनोहर शोभित लोभित मो मन देखि महाई।
माधुरता मुरली मुख की सुख को जनु रासी निवास बढ़ाई।
नेह-नदी उमगी न रही कुल लोक की लाज सुपाज बँधाई।
फैलि गयो परिपूरन प्रेम सु कोन अली अपने घर आई ॥२६॥[2]

गोपिका सर्वस्व खोकर भी अपने भाग्य की सराहना कर रही है। यही सूफियो के 'वज्द' की दशा है, यही वेदान्त का अद्वैत है। अपने को खोकर परम तत्व मे विलीन हो जाना यही हिन्दू दर्शन का व्यवहारिक अध्यात्मवाद है। सान्त और अनन्त का यह प्रेम-मिलन कितना सुखदाई होता है यह केवल अनुभूति का विषय है और विष्णुसिंह ने सीधे-सादे शब्दो मे उसे रख दिया है।

भारतीय समन्यवाद का रूप हमारे भक्त कवियो की वाणी मे वडे मनोहर ढग से निखरा है। शैव और वैष्णव पृथक-पृथक धर्म भावनायें होते हुए भी कभी विरोधी नही बन पाई है—कम से कम महान् पुरुषो ने यह संघर्ष नही होने दिया। तुलसी और सूर- सभी भक्तो ने अपने-अपने इष्ट के साथ अन्य देवी देवताओ को वडी श्रद्धा और विनम्रता से स्मरण किया है। कृष्ण और रुक्मणी द्वारा शिव नाम की रटना का उल्लेख कर विष्णुसिंह ने भी उसी मर्यादा को अक्षुण्ण रखा है।

---

१ **राजरसनामृत—पृ ७७**
२ **वही, पृ ७६**

शिवाष्टक मे उन्होने शिव की अनुपम विभूतियो का प्रशस्तिपूर्ण वर्णन कर अपनी श्रद्धान्जलि-अर्पित की है। इन्ही शिव के विषय मे वह कहते है .—

भूतन भूत विभूति विभूषित भासत भास महा भय माता।
मु डन माल कपालिक मंडल काल कहे तिन सौं सब ज्ञाता।
यौं चलि संभ्रम आवति है मन जावति है हटि हेरि हराता।
जानि न जाय वहै मति की गति है शिव शोक अशोक के दाता।

ऐसे ही शिव रूप का स्मरण कृष्ण-रुक्मणि द्वारा होता है.—

शिव को समाज मेरे नैनन निहार्‌यो आज
आये ब्रजराज तेरे पूजन करत हैं।
जप तप नेम ब्रत यज्ञ कों करत सब
अर्चन सकल वेदवानी यो फुरत हैं।
तेरे ध्यान धारे ताते वेग मुक्ति पावें भजि
तिनतें कलेश जर मूरि तें जरत हैं।
डाक बाजे डैरू रूंडमालि कै करन ताकौं
रुक्मिणि सहित कृष्ण रटिबो करत हैं॥३५॥[1]

जिस प्रकार कृष्ण समुदाय मे यमुना का महत्व है उसी प्रकार रामभक्ति सम्प्रदायो मे गगा का भी महात्म्य है। भगीरथ अपने पुरखो को मोक्ष दिलाने के लिए ही तपस्या द्वारा, गगा को मर्त्य लोक मे लाये थे। अपने पिता के चरणो से पृथक होकर गगा ने जो पाप किया था उसकी पूर्ति तो तभी सभव हो पाई जब वह भगवान शिव के शीश पर चढने मे समर्थ हुई। पिता अपनी सतान को सफलता की चोटी पर चढा देखकर ही प्रसन्न होता है। इस व्याजस्तुति मे शकर की निंदा नही है और न ही विष्णु के उच्च पद की व्यजना है। कवि-भक्ति के आवेश मे वह एक मौलिक कल्पना कर बैठा है और उसके मुख से निकल पडा है —

हेत भगीरथ लेत रहै सुख है वदि वेद पुरान विचारै।
सागर सौं सनमन्द किते इक जानत है जस जासन हारै।

---

१. राजरसनामृत–पृ. ७६

ए गुन गंग अभग असंक ससंक कहौ कवि के कुल सारै ।
बाप के पाप को आप मिटावन ईश के सीस चढी डर ढारै ॥४६॥

श्री हरि के पद पंकज तें जल की चली धार सुढार ढली है ।
ह्वै शिव शीश सुमेर के ऊपर भू पर न्हात जिन्हे गति ली है ।
सो जस पावन गावन कौ कहि आवन मो मन माझ भली है ।
दै निज दीनन मीनन की गति आप त्यो पाप बुहाय चली है ॥४७॥

विष्णुसिह की कविता मे ऋतु-वर्णन भी मिलता है । वर्षा वर्णन मे वर्षा का प्राकृतिक सौदर्य वर्णन है और विहरणियो के लिए उनकी स्थिति के अनुकूल उसकी जीवनदायिनी एव मृत्युदायिनी शक्ति का भी अनादर नही किया गया है—

तीनो कवित्त इस प्रकार है '–

पावस अँध्यार दिन रैन की निहार नाहीं,
फैल्यो पारावार ज्यौं चलै है तम-दूत कै ।
मोरन की घोरन तैं घोरन सुनत कोऊ
नैनन की दौर है नजीक तन हूत कै ।
घन की घमक देखि दामिनी दमकि सब
चमकि चमकि रति ऐसी अदभूत कै ।
रसन तैं रेले धारा धरनी न झेले जात
आये घन मैले मानो पेले पुरहूत कै ॥४८॥

बाचिके सुनावे मोर कैकी कलरव और
कूकि कूकि सारो सुक सोर करे जतिया ।
घोर करें उमंडि घुमंडि घन घेरि घुरि
दामिनी चिराक दरसाते मेह रतियां ।
वैरी मनमोहन की मधुरि सु सोय सुधि
खरकि खरकि उर आत जात बतियां ।
मेरे जानि प्रीतम की आवन की भावन ले
पावस पठाई लै हरोल आइ पतियां ॥४६॥

प्रियतम के पत्र की भावनाओं का, मोर, केकी, सारिका और शुक द्वारा सुनना और दामिनी का दीपक का कार्य करना मनभावनी कल्पना है। पावस का इस रूप मे वर्णन विष्णुसिंहजी ने ही किया है। स्मृति का भाव आ जाना भी स्वाभाविक है।

विरहिणी की अन्य स्थिति मे पावस का तीसरा कवित्त भी अपना विशेष स्थान रखता है। इसमे कुछ मौलिकता नही परन्तु परम्परा का निर्वाह स्वत लक्षित है।

चातक चितावे चहू घाते सोर और मोर
मोहि न सुहावै सब माधुर सुमन री।
प्रबल चलत पौन जुगुनू जुगति जौन,
दामिनी दुतकि हो न लागे बन बन री।
वाछत पियूष तें इताविन विष सरूप
वासन सिंहासन अवासन तें तन री।
बालम विदेस तातें विरहनि मारबै को
घोर आये घन के करोरि आये घन री ॥५०॥[1]

फाग के दिनो मे राधा द्वारा कृष्ण की जो गति बनाई गई है उसका भी एक दृश्य देखिये—

होरी मे गोरी किशोरी सबै मिली दौरी सुपौरि पै कान पयेरी।
हौ हौ कै हाक करी हसि कै बसि कै रसि कै चसकै सच येरी।
चन्दन चोवन चर्चित है चितयौ पिवकी करि कै झपयेरी।
मार मची अतिही सुकुमार सुलाल गुलाल तै लाल भयेरी ॥५३॥[2]

वियोग का वर्णन करते हुए एक विरहिणी नायिका सयोग कालीन आनन्द-दायक चन्द्रमा को बुरा भला कह रही है—

---

१. राजरसनामृत, पृ. ८१

२. वही, पृ ८१

चन्द भयो विषकन्द हमे अब सूल सहेली समीर लखीरी ।
भाजन भौन भये भय भूखन भोजन भोग भले न भखीरी ।
जा छिनतैं नद-नद लख्यो कहि ता दिन तै सब बात नखीरी ।
नैनन सैनन सौर लगी उर प्रीति नहीं विपरीत सखीरी ॥५४॥[1]

विष्णुसिंहजी ने साहित्य के अनेक विपयो को अपनी कविता का उपादान वनाया है परन्तु यह मानना पडेगा कि उनकी मूल भावना मे ससार से वैराग्य की भावना ही प्रधान है। जो सफलता उन्हे भक्ति काव्य मे मिली है वह अन्य प्रसगो मे नही। उनका व्यक्तित्व बूंदी के राजघराने मे अपनी विशेषता रखता है। स्वय कवि होते हुए वह कवियो के आश्रय दाता और उनका सम्मान करने वाले थे। उनकी रानी राठौडजी भी साहित्य-रसिक और भगवद्भक्त थीं। इनकी आज्ञा से बूंदी के कृष्णलाल गोस्वामी ने भक्तमाल की टीका बनाई थी। वैसे इन गोस्वामीजी का लिखा 'कृष्ण-विनोद' और 'रस-भूषण' क्रमश नायक-नायिका भेद एव अलकार विषयक प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

सन् १८२१ मे महाराव विष्णुसिंह का परलोक गमन हुआ-और इनके पुत्र महाराव राजा रामसिंह गद्दी के उत्तराधिकारी हुए। इन महाराव की साहित्य और इतिहास के प्रति विशेष रुचि थी। इनके दरबार मे पडितो का जमघट रहता था। वे स्वय भी कभी-कभी कविता कर लेते थे। परन्तु अधिकाश समय विद्वन्मडली के सत्सग मे ही व्यतीत करते थे। प्रसिद्ध ग्रथ 'वश-भास्कर' इन्हीं की आज्ञा से लिखा गया था। यह ग्रथ स्वय इसका प्रमाण है कि महाराव की रुचि कैसी परिष्कृत और सुसस्कृत थी। जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहास वेत्ता मुशी देवीप्रसाद ने फारसी पुस्तक 'तौकीयात किसरा' का उल्था हिन्दी मे करके 'नौशेरवाँ नीति-सुधा' के नाम से इन्हे भेट किया था। इस पर बूंदी नरेश ने उन्हे परितोषिक देकर अपनी गुण ग्राहकता का परिचय दिया। इन्ही के पुत्र महाराव राजा रघुवीरसिंह इनकी मृत्यु के पश्चात् गद्दी पर विराजमान हुए (सन् १८८९ ई) महाराव रघुवीरसिंह ने भी हिन्दी मे कविता की है। इनके श्री रगजी इष्ट देव थे।

सक्षेप मे बूंदी का राजघराना, अपने छोटे से इतिहास मे, पर्याप्त साहित्य सृजन और उसके प्रोत्साहन का क्षेत्र रहा। प्रकृति की स्वाभाविक छटा ने इस नगरी को जो सौंदर्य प्रदान किया है-कवि की कल्पना उससे आनद विभोर हो

---

१. राजरसनामृत, पृ. ८१

उठती है। बूदी की पहाड़ियाँ और उसकी जलराशि कल्पना तत्व को उडान और शीतलता प्रदान करती है। उसकी वीरता का इतिहास अनुराग को स्वत ही जाग्रत कर देता है अतएव बुद्धि के मेल से यदि यह क्षेत्र काव्य का गढ और कवि-आश्रय का केन्द्र रहा तो कोई आश्चर्य की बात नही।

खेद का विषय केवल इतना ही है कि कोटा राज्य मे साहित्य सृजन की कोई क्रमिक एव सूत्रवद्ध योजना न हो पाई। उसकी पीढियाँ अपनी राजनीतिक दृढता और सास्कृतिक सरक्षा मे ही अधिक दत्तचित्त रही।

बूदी के राजघराने मे जिन कवियो को आश्रय मिला उनमे से कुछ प्रसिद्ध कवि ये है —

चौबे लोकनाथजी
,, फतहरामजी
,, मिश्र हीरालालजी
,, झारसीलालजी
,, जगन्नाथजी
,, बालकृष्ण (बिहारी के वशज)
,, अमर कृष्णजी
गोस्वामी कृष्णलालजी
राव रामनाथजी
राव गुलाबसिंहजी आदि आदि।

: ८ :

अन्य राज घराने

जैसलमेर :—जैसलमेर का कोई स्वतत्र और प्रामाणिक इतिहास अभी तक नही लिखा गया अतएव वहा की सास्कृतिक परम्पराओ के ज्ञान के लिए बिखरे हुए विवरणो पर ही निर्भर रहना पडता है। इन विवरणो मे सब से अधिक खोज से लखा हुआ वर्णन कर्नल टॉड का है[1]। मेजर अर्सकिन (K D Erskine) ने भी अपने विवरणो को अधिकतर टॉड पर ही आश्रित रखा है।[2]

टॉड के अनुसार जैसलमेर का वर्तमान राजवश भाटी राजपूतो की शाखा के आधीन है। यह भाटी शाखा चन्द्रवशी यादवो को अपना पूर्वज मानती है और श्रीकृष्ण को अपने पूर्व पुरुषो मे गिनती है। इनके पूर्व पुरुषो मे से एक गज अथवा गजपति नाम के व्यक्ति ने गजनी या गजनीपुर नाम के दुर्ग का निर्माण किया। कुछ विद्वान गजनी को ही गजनी मानते है परन्तु कनिघम ने रावलपिडी के निकट एक गाव को प्राचीन गजनीपुर माना है। इतिहास चाहे इसको प्रमाणित कर पावे अथवा नही, यह अवश्य है कि वर्तमान जैनलमेर के भाटी कही अन्य स्थान से आकर यहा मरुभूमि मे बसे। जैसलमेर की स्थापना भाटी रावल जैसल ने की थी। अर्सकिन ने इसकी नींव का समय सन् ११५६ ई माना है।

जैसलमेर के राजघराने मे अनेक रावल उत्पन्न हुए और अनेक युद्धो मे उन्होने अपनी वीरता दिखाई। भापा-कविता का अनुराग भी इस घराने मे भाटी देवराजजी के समय से चला आरहा है। देवराजजी की रचनाये उपलब्ध नही होती, परन्तु उनकी गुणग्राहकता और कविता विपयक रुचि की अनेक किवदतिया प्रचलित है। इन्ही की वश परम्परा मे रावल भोज देवजी ने जन्म लिया। इनके भी कई दोहे प्रसिद्ध है। वैसे यह डिगल मे कविता करते थे। इनके पिता रावल लाखा

---

1. **Annals and Antiquities of Rajasthan ; Annals of Jessulmer PP. 169—231**
2. **Rajputana Gazetteers ; Vol III–A PP. 9-17**

विजयरावजी ने अपने भाई जैसलजी को निकाल दिया था। इससे चिढकर जैसलजी गजनी के बादशाह शहाबुद्दीन गौरी को चढाकर भारत मे लाये। भोजदेवजी को जब यह मालूम हुआ तो उन्होने दो दोहे लिखकर अपने चाचा के पास भेज दिए।

आड़ कुवाड़ उतरादरा भाटी झेलरण भार।

वचन राखाँ विय रावरा समहर बाँधा सार ॥

तोड़ां धड़ तुरकाण रा मोडां खान मजेज।

भाखे भोजो अधपति, जादिय मत कर जेज ॥

(भाटी उत्तराधरा के किंवाड और (रण) भार के झेलने वाले है, विजय रावजी का बचन रखेगे तथा लडने के लिए हथियार बाँधेगे। तुर्को के धड तोडेगे, खान का मुह मोडेगे। राजा भोज कहता है तुम देर मत करना)

इस वश मे चालीसवे रावल मूलरावजी हुए (सन् १७६२ १८१६ ई) कहा जाता है कि यह ब्रज भाषा के अच्छे कवि थ। इनका एक सवैया इस प्रकार है।

ब्रज साम विहाय विदेस बसे, हरि देख कृपा सुध क्यो न लई।

निस बासर सोच रहे नितही, दुख ताप मिटै विध को न दई ॥

घन श्याम बिना घन देखि घटा, तरुनी विरहानल ताप तई।

छिरक्यो न गयो उन को अगना, वर्षा अध बीचहुँ सूख गई ॥

जैसलमेर जैसे मरुस्थल मे वर्षा की वैसे ही कमी रहती है। विरह ने रही सही वर्षा को भी सुखा दिया सुन्दर और स्पर्श करने वाली उक्ति हैं। तैतालीसवे रावल वैरीशालजी भी डिंगल के कवि थे।

जैसलमेर के जैन भडारो मे आज भी जो हस्तलिखित पुस्तके प्राप्त है वे सस्कृत और प्राकृत की अनन्यतम निधिया है। डिगल और ब्रज के भी अनेक ग्रथ वहा छिपे पडे है। पुस्तकालयो की यह स्थिति जैसलमेर के राजघराने और प्रजा के विद्यानुराग की द्योतक है। वैसे जैसलमेर मरुभूमि है परन्तु ज्ञान की प्रवाहमान धारा वहा अब भी बह रही है केवल प्यासे की आवश्यकता है। कालान्तर मे इस जलाबुधि का दर्शन हो सकेगा यह विश्वास है।

भरतपुर —स्वतंत्र राज्य के रूप मे सन् १७२२ मे भरतपुर का निर्माण हुआ। यह बदनसिंहजी का राज्यकाल था और उस समय भरतपुर राज्य की राजधानी डीग नगर थी। वैसे इस राज्य की स्थापना का विवरण ११ वी शताब्दी से भी पहले मिलता है। इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार[1] इस राज्य का उत्तरीय भाग तोमर राजपूतो और दक्षिण भाग जादो के हाथ मे था और उस समय इसकी राजधानी बयाना थी। ११ वी शताब्दी मे महमूद गजनी ने तोमरो को पराजित किया। बाहरवी शताब्दी मे मोहम्मद गौरी के हाथो इस समस्त राज्य की बागडोर आई और लगभग पॉच सौ वर्षो तक देहली के सम्राट का अधिकार पूरे राज्य पर रहा। मुगलो के समय मे भी यह राज्य आगरा का एक सूबा रहा।

भरतपुर का वर्तमान राजघराना सिसिवार राजपूत जाति से सम्बन्धित है। इसके पूर्वज श्री तहनपाल ११ वी शताब्दी मे बयाना मे राज्य करते थे। इनके तीसरे पुत्र मदनपाल थे। इनके एक उत्तराधिकारी बालचन्द से सिन्सिनी जाटो का परिवार आरम्भ हुआ। बालचन्द से लेकर बदनसिंह के राज्यकाल तक का इतिहास रोचक होते हुए भी यहा अवाछित है अतएव हम बदनसिंहजी से ही अपने विवरण का श्रीगणेश करते है।

बदनसिंहजी का देहावसान सन् १७५५ ई मे हुआ। भरतपुर राज्य को दृढता और प्रसिद्धि की चरम सीमा तक पहुचाने वाले श्रीसूरजमल इन्ही के पुत्र थे। सूरजमल का देहान्त सन् १७६३ ई मे हुआ। इनके पुत्र श्री जवाहरसिंह राज्य के अधिकारी हुए परन्तु इनमे अपने पिता की सी बुद्धि कुशलता का अभाव था। सन् १७६८ ई मे आगरे के राजमहल मे इनकी हत्या हुई। जवाहरसिंह के पश्चात् भरतपुर राज्य का शौर्य - चन्द्र प्रतिदिन क्षीण होने लगा। परस्पर की ईर्ष्या और राज्य शक्ति की लिप्सा ने अशाति का रूप धारण किया। जवाहरसिंह के उत्तराधिकारी रतनसिंह और केसरीसिंह कुछ न कर सके। रतनसिंह का भाई रणजीतसिंह उत्तराधिकारी बन बैठा और उसके समय से जो चौदह परगने भरतपुर राज्य मे सम्मिलित थे आज भी वे ही इस राज्य की विस्तार सीमा है। इन्ही रणजीतसिंह से लार्ड लेक की सधि हुई थी। सन् १८०५ मे रणजीतसिंह की मृत्यु हुई। इनके उत्तराधिकारी इनके दो पुत्र हुए (रणधीरसिंह १८०५–२३) और बलदेवसिंह (१८२३–२५)। बलदेवसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र बलवतसिंह राज्याधिकारी हुए परन्तु अल्पायु होने के कारण राज्य की बागडोर दुर्जनसाल

---

1. **Imperial Gazeteer of India, Vol. VIII PP. 74–79.**

ने सभालनी चाही और बलवर्तसिंह को कारागार मे डाल कर स्वय अधिकारी बन बैंठा। अन्त मे बलवर्तसिंह ही राज्याधिकारी निश्चित् हुए। सन् १८३५ मे वे स्वर्गवासी हुए। इनके पुत्र जसवर्तसिंह अल्पायु थे और इसलिए पोलीटिकल एजेन्सी द्वारा राज्य की देखभाल आवश्यक हो गई। सन् १८७१ मे इन्हे समस्त अधिकार प्राप्त हुए और महाराज की पदवी दी गई। सन् १८९३ मे इनका देहान्त हुआ। रामसिंह इनके उत्तराधिकारी हुए परन्तु स्वभाव मे विकृतता आजाने के कारण दो वर्ष बाद ही इनके सारे अधिकार इनसे छीन लिए गए और सन् १९०० मे इन्हे अपदस्थ कर दिया गया। महाराज किशनसिंह इनके पश्चात् गद्दी पर बैठे। वर्तमान महाराज ब्रजेन्द्रसिंह इन्ही के पुत्र हैं।

साहित्यिक विकास की दृष्टि से भरतपुर के कई राजाओ और महाराजाओ का महत्व विचारणीय है। सर्वप्रथम राजघराने मे प्रतापसिंह का नाम उल्लेखनीय है। यह बदनसिंह के छोटे पुत्र थे और 'वैर' नामक गढ मे रहते थे। भरतपुर राज्य के प्रधान कवि सोमनाथ माथुर चौबे को इन्ही का आश्रय प्राप्त हुआ था और सोमनाथ का 'रस पीयूष' 'राम कलाधर' एव अन्य ग्रंथ 'वैर' मे ही रचे गए थे। सोमनाथ कवि की प्रशसा और उनकी रचनाओ का महत्व किसी से छिपा नही है।

भरतपुर के दूसरे व्यक्ति महाराज बलदेवसिंहजी स्वय थे। इनकी कविता से प्रतीत होता है कि वह 'चतुर' उपनाम से कविता करते थे। इनकी पत्नि का नाम अमृतकौर उपनाम 'चतुर सखी' था। इनकी रचनाओ मे कही 'चतुर पीव' कही 'चतुर मोहन' और कही 'चतुर सूर' आदि प्रयोग मिलते है।

हे ब्रजनाथ नाथ अब तुम सो अरजी नेक विचारो।
कैसे बदन दुरावत हो हरि पिछली प्रीति सम्हारो।
नंद नदन करुणारस भरि कै मेरी ओर निहारो।
तुम बिन जग मे और न कोई महादीन मै नाथ तिहारो।
तन मन धन औ नैन प्रान सौं मन मोहन घनस्याम हमारो।
'चतुर पीव' गिरवर गिरधारी दरस देहु अब मोहि उबारो॥

प्रीति जुरी मेरी तुम सूं गिरधर प्रीति जुरी मोरी तुम सूं।
बहौत जतन क्यो हूं करि जोरी अब तोरो हरि छल सूं।
माहधूत वह नद रावरो घात चलावे बल सूं।
'चतुर सखी' मेरो विरह बहुत है बिन दरसन अब तरसूं॥

भजो मन लक्ष्मण राजकुमार ।
सकल सकल सुखदायक भक्तन को अभिमत के दातार ।
तेज प्रताप पुंज एक ही जग प्रगट सेस अवतार ।
पाखन्डन के तुम समूह को दावानल सु पजार ।
चारवाक से जन फोरन को इन्द्र वज्र सम त्यार ।
बौध अधकार मेटन को सूरन उदय उदार ।
जैनी मत मतंग मर्दि को पंचानन वन सार ।
माया वाद भुजंग भगहित गरुड कहत निरधार ।
विश्व शिरोमणि श्री रघुवर ने जब की ध्वनि आकार ।
शरणागत के पाप-पुंज मेटन को गंगाधार ।
ऐसे प्रभु को सेवन सर्वस और व्यथा व्यौहार ।
चित्त लग्या चतुर ताही मे तरि भव पारावार ।

उपरोक्त तीनो पदो मे तीन उपनामो का प्रयोग हुआ है । एक आश्चर्य की बात यह है कि प्रथम दो पद कृष्ण विषयक है और तीसरा लक्ष्मण विषयक । दोनो इष्टो की भावना भिन्न हैं । अतएव यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि क्या ये तीनो उपनाम एक ही कवि के है ? 'चतुर पीव' ने अपने को गोवर्धनवासी कहा है ।

'चतुर पीव गोवर्धन वासी गावत हूं गुन गान' ।
'चतुर पीव गोवर्धन वासी मारौ विरह दा फंद' ।
'चतुर पीव गोवर्धन वासी हैं तुम पर बलिहारी' ।

यदि महाराज बलदेवसिंह ही 'चतुर-पीव' है तो समझ मे नही आता उन्होने अपने को 'गोवर्धनवासी' क्यो कहा जब कि उनका निवास स्थान वास्तव मे डीग नगर था ।

एक अन्य पद मे 'बलदेव' और 'चतुर' दोनो नाम साथ-साथ आये है ।

मंगल मूल राम जस गायो ।
कोटिक विघ्न विनासन के हित गनपत चरन मनायो ।
सकल सुबुद्धि सिद्धि हेत कूं सारद को सिर नायो ।
निर्मल ज्ञान उदय के कारन श्री गुरु रूप सुहायो ।

हिये अधिक जलधार होन को मन वांछित फल पायो ।
रसिक समाज रंजन सुग्रंथ यह श्री लक्ष्मण मन भायो ।
नृप बलदेव आपने जन के अंतर मे प्रगटायो ।
चतुर कृपा ही तें सुख सपति अति आनंद दरसायो ।

'चतुर' उपनाम के ये पद अधिकाश मे राम भक्ति से सम्बन्धित है । यह मानी हुई बात है कि भरतपुर राज्य की कुल–देवी श्री गगाजी है । वहा पर लक्ष्मणजी का एक मन्दिर भी है । यद्यपि आजकल गोवर्धनजी इष्ट के रूप मे अधिक पूज्य है परतु इनके पहले इन दोनो मदिरो के अस्तित्व से तत्कालीन भक्ति भावना का पता चलता है ।

हमारा निष्कर्ष यही है कि बलदेवसिंहजी 'चतुर' ही है । अन्य उपनामो का समावेश उनके काव्य मे हो गया है । अधिक सामग्री प्रकाश मे आने पर इसकी विवेचना सभव हो सकेगी । तब तक यही मानना ठीक है कि महाराज की कविता साधारण है और भक्ति–भावना से ओत-प्रोत है ।

बलदेवसिंह के पुत्र बलवतसिंहजी भी साहित्य के प्रशसक और उसकी रक्षा मे दत्तचित रहने वाले व्यक्ति थे । उनकी कविता प्राप्त नही है । इनके उत्तराधिकारी महाराज रामसिंह का भी बनाया हुआ एक ग्रथ 'रस सिरोमणि' कहा जाता है परन्तु अभी तक वह उपलब्ध नही है । महाराज रामसिंह के पश्चात् महाराज किशनसिंह भरतपुर के राजा हुये । इनके समय मे हिन्दी साहित्य की सरक्षा का सबसे बडा सयोग प्राप्त हुआ । भरतपुर राज्य मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन को निमन्त्रित करने का श्रेय इन्ही महाराज को है । राजनीतिक क्षेत्र मे अग्रेज़ी सरकार इनको वक्र दृष्टि से देखती थी और शुद्ध साहित्यिक प्रवृतिया भी सदेह से युक्त रहती थी । महाराज किशनसिंह स्वय कवि नही थे परन्तु भरतपुर के राजकीय पुस्तकालय मे जो हस्तलिखित साहित्य इस समय प्रस्तुत है वह इन्ही के साहित्य प्रेम का परिणाम है । 'हिन्दी–समिति' भरतपुर की स्थापना भी इन्ही के प्रोत्साहन का फल है । याज्ञिक बन्धुओ ने जो विशाल हस्तलिखित निजी पुस्तकालय बनाया उसमे भरतपुर राज्य से एकत्रित किए गए ग्रथो का बडा स्थान है ।

ब्रजभाषा की कविता और साहित्य की रक्षा एव कवि–आश्रय मे भरतपुर राज्य की देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।[1]

---

१. विशेष विवरण के लिए देखिए डा मोतीलाल गुप्त कृत 'मत्स्य प्रदेश की हिंदी की देन ।

अलवर —

अन्य राजपूत जातियो की तरह अलवर का राजघराना भी अपना सम्बन्ध सूर्यवशी रामचन्द के वश से स्थापित करता है। वर्तमानकालीन अलवर के अधिपति अपने को कछवाहा राजपूत मानते हैं। स्वर्गीय महाराज जयसिंह ने अपने घराने की वशावली मे अपने को 'कुश' की सन्तान प्रमाणित किया है। 'कुशवाहा' शब्द ही कछवाहा मे परिवर्तित हुआ माना जाता है। इसी आधार पर जयसिंह ने अपनी राजधानी के मार्गो का नामकरण अपने पूर्वजो के नाम पर 'कुश मार्ग' 'लव मार्ग' अथवा 'नरू मार्ग' आदि रखा था। नरू भी इनके पूर्व पुरुष के रूप मे पूज्य हैं अतएव अलवर का राजघराना अपने को नरू कछवाहा वशज मानता है।

अलवर राज्य का आरम्भ प्रतापसिंहजी (सन् १७४०–१७९१ ई) से हुआ था। आरम्भ मे माछेरी गाव मे राज्य की नीव पडी। प्रतापसिंहजी अम्बेर के राजा के सम्बन्धी और उनकी आधीनता मे थे। धीरे-धीरे अपनी बुद्धि और बल से उन्होंने अलवर नगर पर भी आधिपत्य कर लिया और यह छोटा सा रजवाडा माछेरी से अलवर आ गया। वही राजधानी बनी और आगे चल कर 'राज्य' मे परिवर्तित हुई।

प्रतापसिंहजी के पश्चात् उनके पौष्य पुत्र बख्तावरसिंह गद्दी के अधिकारी हुए। लार्ड लेक की सहायता करने के कारण इन्हे तीन जिले और अधिक मिले। इनके जीवन की अनेक घटनाएँ इतिहास के विद्यार्थी के लिए जानने योग्य है परन्तु यहा इनका विवरण देना व्यर्थ है। सन् १८१५ मे इनका देहान्त हुआ। निस्सन्तान मरने के कारण लगभग दश वर्ष तक गद्दी के लिए सघर्ष चलता रहा। अन्त मे विनयसिंह इस राज्य के अधिकारी हुए। सन् १८५७ मे इनका भी देहावसान हो गया और इनके पुत्र शिवदानसिंह इनके उत्तराधिकारी हुए। परन्तु मुसलमानो के प्रभाव मे पडने से राज्य मे अशान्ति हो गई और वह तभी शात हुई जब मगलसिंह सन् १८७६ मे राज्याधिकारी बने। अग्रेजी सरकार से इन्हे महाराज की पदवी मिली और सन् १८९२ मे अकस्मात् इनकी मृत्यु हुई। इनके पश्चात् इनके पुत्र महाराज जयसिंह अलवर राज्य के अधिकारी हुए[1]। महाराज जयसिंहजी के राज्यकाल और उनके जीवन की घटनाओ से सभी परिचित है। वर्तमान महाराज तेजसिंहजी भी इन्ही के उत्तराधिकारी हैं।

---

1. Imperial Gazetteer, Vol V PP. 256-59

अलवर के राज घराने मे बख्तावरसिंहजी का व्यक्तित्व साहित्य की दृष्टि से भी वैसा ही महत्वपूर्ण था जैसा इतिहास की दृष्टि से। इनकी दो रचनाएँ प्रसिद्ध है–

(१) दान लीला

(२) श्री कृष्णलीला राधा कृष्ण का नखशिख वर्णन।

दान लीला —यह प्रसग, दाम्पत्य भाव के रूप मे, कृष्णलीला का एक मुख्य अ श है। भगवद् भक्तो ने अनेक प्रकार से इसका वर्णन किया है। कृष्ण गोपियो से दूध, दही मक्खन बेचने का कर मागते है। गोपिया मना करती हें। साधारण दृष्टि से यही प्रसग है। इसमे परस्पर कहा सुनी और झौड-झपट भी हो जाती है। अग स्पर्श तक की नौबत आजाती है। ऐसे अवसर पर परस्पर के वार्त्तालाप का वर्णन बख्तावरसिहजी ने इस प्रकार किया हे —

मोहन कहै सुनो ब्रजनारी। हमरी बाट कहा अड़वारी।
तुम हो दान कौन सो चाहो। सो किनि परगट हमे लखाहो॥
तब मनमोहन बोले बानी। हम रह ब्रज नये सुदानी।
नये कहो कह खिजहि हमरी। देह बात अब सुनिये सगरी।
इन बातन कह पूरी परि है। जब तो दान दिए ही सरि है।
नये रहे हम कछु न बजावें। नई नई कहो बात सुनावें।
नयो सघन बन यहे निहारौ। नई नई सुनि तुम चित धारौ।
फूल पान फल नये नये हैं। नये सु-बादर भूमि रहे हैं।
नई सु चपला चमकत दरसे। नई नई बूँदे घन बरसें।
नई सुबानी पंछी बोलें। नये नयें बन करत किलोलें।
नई नई तुम बनि ठनि आई। नई बेलि तरवर वर छाई॥

नए सु लहगा चीर नये हैं। सब आभूषन नए नए हैं।
नए सुफल को जो तुम धारो। नए नए चित नहीं बिचारो।
कहो नए फल तुम ही चखाये। जो कछु दान नयो सौ पाये॥

कृष्ण की प्रेम भरी इन बातो को सुनकर गोपियो ने कहा–

जो वृषमान श्रवणि संचरि हैं। नंद राय कूं दूभरि परि हैं॥

नए दान की कठिनाइया का इस प्रकार उल्लेख करने के उपरान्त उन्होने कृष्ण की 'श्यामता' पर व्यग करना आरम्भ किया।

श्याम रंग को को पतियावैं। हिये हमारो कबहुँ न भावैं।
देखी स्याम सर्प हैं जेते। औगुन विष तें भरे हैं तेते।
कारे काग करें विधि खोटे। स्याम रंग सब ही हैं खोटे।

अपने ऊपर इन उक्तियो का प्रहार सहन कर श्याम ने गम्भीरता से उत्तर दिया।

मुख पर श्याम दिठौना सोहे
स्याम चिबुक तिल मति मन मोहे
देहु दान क्यो रार बढावौ
ठाढी कव की वचन बनाओ।

इस प्रकार परस्पर प्रेमोक्तिया चलने के उपरान्त नृत्य-गान आरम्भ हुआ, मन भर कर यही प्रसग चला।

मनमोहन मोहीं व्रज भामा। सरस रंग रीझी सुनि स्यामा
राधिका ने प्रसन्न होकर अपनी सखि ललिता से कहा—

सुनो सु-ललिता जव हरि हारे
नाच गान इन हमे रिझाए। दीजै दान चारु चित लाए।

आज्ञा मिलते ही—

कदम पत्र के दोना लाये, मडल करि बैठे मन भाये।

तत्पश्चात्, क्रीडा-केलि चलती रही।

बख्तावरसिंहजी ने सरल शब्दो मे इसी प्रसग को दान-लीला कहा है और अपनी रचना के विषय में इतना लिखा है।

सवत युग सिव-वदन वसु ससियुत कातिक मास।
कृष्ण-पक्ष षष्ठी बुधे पूरन दान विकास॥
जगर मगर सपति अगर सोहत नगर नगीच।
'वखत' रची लीला सु यह अलवर गढ के बीच॥

मंगल श्री गोविन्द को बरन्यो बखत प्रवीन।
टरत अमंगल नित आई नित मंगल करत नवीन ।।

अतएव अमगल को दूर कर नित्य मगल के हेतु यह दान–लीला सवत् १८५२ मे लिखी गई।

श्री कृष्ण लीला—राधाकृष्ण का नखशिख वर्णन। जैसा नाम से प्रतीत होता है श्री कृष्ण लीला के अन्तर्गत इस रचना मे राधा और कृष्ण के नखशिख वर्णन की प्रधानता है। आरम्भ करते हुए लेखक ने लिखा है।

दोहा –**बिघन हरन मगल करन दुरद बदन इक दन्त।**
परस धरन असरन सरन बुद्धि देऊ बरबंत ।।

मगलाचरण के अनन्तर अपने प्रसग पर प्रकाश डालते हुए लेखक की उक्ति है।

बदौं राधा रमण वर दृढ़ करि उर आधार।
गिरा गौरि गणपति सुमरि सरस सारदा सार ।।

कृपा माह द्विज वरन की गुरु पद पकज धारि।
सीस नवाइ सुकविन हरि लीला रचउ विचारि ।।

राधा के नखशिख का वर्णन करते हुए लेखक ने अनेक उपमाओ और उत्प्रेक्षाओ को आश्रय दिया है। समस्त वर्णन की सूक्ष्मताओ मे न जाकर कुछ उदाहरण यहा दिये जाते है।

चमकत चौंप चारु चित्त चोषी।
दमकति दामिनि दुति दुइ दोषी ।।
× × ×
कानन–कुंडल कनक कलित है।
चारु तरौना चपल चलित है ।।
× × ×
जगमग जड़ा ज्योति जुगन सो।
परगट पाटी प्रेम पगति सो ।।
बेनी विमल पीठि पर राजै।
नागिन कछपी पत्र विराजै।

लोल कपोल गोल मन मोहैं।
ठोरी चिबुक चारु दुति सोहैं॥

नख शिख वर्णन के अनन्तर लेखक ने राधा की सखियो, वन वृक्षो एव पक्षियो आदि के नाम बताये हैं और फिर उन के चरण-चिन्हो के गुणो का वर्णन किया है। तत्पश्चात् श्री कृष्ण का नखशिख वर्णन है।

वक्षस्थल दृढ़ता अति धारैं।
मणिक माल मृदु लता बिहारैं॥
भुज ध्वज गज सुंडन वर मानै।
कोमल कर सखि कंजन जानै॥
अग अंग छबि बरणि न जाई।
कोटि काम दुति देखि लजाई॥

इसके पश्चात् राधिका की सखियो के समान कृष्ण के सखाओ का नाम वर्णन है। दोनो का परिचय देने के उपरात राधा-कृष्ण के मिलन का प्रसग इस प्रकार आता है।

गह्विर वर मोहन लसैं तिह मग राधा आय।
जुरि सुदृष्टि हि परस्पर 'बषत' कहत सिर नाय॥

कृष्ण वचन .

हो तुम कौन गोप की जाई। बिन बूझे यह बन मे आई ?

इस प्रश्न का उत्तर राधा नही देती ललिता नेतृत्व करती है और तत्पश्चात् कृष्ण के सखाओ और राधिका की सखियो में वार्त्तालाप होता है।

ऐसा प्रतीत होता है उपरोक्त दोनो रचनायें एक ही हैं। परन्तु प्रसगानुसार पृथक-पृथक कर दी गई है।

बख्तावरसिहजी का व्यक्तित्व राजनीतिक दृष्टि से महान था परन्तु साहित्यिक दृष्टि से वह उपेक्षनीय नही कहा जा सकता। यह महाराज भक्त कवि थे। अपने भक्ति भाव का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है—

राधा कृष्ण सुदृष्टि सो मम उर भक्ति प्रकास ।
गढ लीला बन दानि की बरनो कृष्ण-विलास ॥
कृष्ण कथा यह दान की कहत बषत चित लाई ।
श्रवण सुनी वरनन करौं मन हरिवंस मिलाई ॥
रसिक भक्त जे जगत के सुनो सो अब चित धारि ।
दूषन या के दूरि कर भूषन देऊ सुधारि ॥

इससे प्रगट होता है कि हितहरिवश के वश मे प्रचारित राधा-कृष्ण की भक्ति ही इनकी भक्ति का स्वरूप था । काव्य की दृष्टि से इनका काव्य उच्च कोटि का नही है परन्तु भगवत् भक्ति के नाते वह सराहनीय है ।

अलवर की राज परम्परा मे दूसरा उल्लेखनीय नाम महाराज विनयसिंह का है । इन्होने भाषा-भूषण पर एक टीका लिखी है जिससे रीति कालीन विषयो का व इस पुस्तक की लोकप्रियता का पता चलता है और यह भी विदित होता है कि अलकार एव रस इत्यादि के अध्ययन की ओर राजाओ की कितनी रुचि थी । अपने पहले ही सोरठे मे लेखक ने कहा है ।

गणपति गवरि गिरीस बंदौं मन बचि काम करि ।
धरौ पानि मम सीस जेती बुद्धि प्रकास है ॥
× × ×
प्रथम सुमरि गन ईस ईस सुत करत प्रणामहि ।
बहुरि भक्ति करि शक्ति व्यास सेवत भगवानहि ॥

दया रूप धरि आपु कियो सब जगत सरस नर ।
ताकौ पालन करत कहत सब प्रगट चरणि वर ॥

जस जागत जसवंत नृप भाषा-भूषण रचत ।
राजाधिराज वषनेस सुत विनैसिंह टीका करत ॥

यह टीका व्रज भाषा गद्य मे की गई है । शैली प्राचीन टीकाओ के अनुकूल है । उदाहरण के लिये मूल दोहे की टीका प्रस्तुत की जाती है ।

मूल — **पदमनि चित्रनि संषनि जस हस्तिनी बषानी ।**
विविध नायिका भेद मे चारि जाति तिय जानि ॥१२८॥

टीका—"पदमनि सो कहिये जाके अग मे कमल की सी सुगध आवै। वस्त्र स्वेत उज्जवल पवित्र पहरेवे की रुचि होवे। देव पूजन मे रुचि होय। आहार थोडौ करै, कदर्प थोरो हौय। कुच नितव पीन होय। नासिका चपक की सी तिल प्रसून सी होय। और नेत्र मृग के सेवा कमल दल के हौय। चद कौ आधो भाग सों भाल होय, और भृकुटी टेढी कवान सी हौय, सूछ्म हौय। हसगमनी पिकवेनी होय। कटि छीन होय, सब अग सुन्दर वन्यो हौय। कर चरन की अगुरी पतली हौय। और करतल पगतल आरक्त हौय। और उमर बडी होय तोहू बारै वरस की सी दीखैं और दात छोटे हौय, सूधी पगति हौय। केस माथे के सचकारे हौय, लचकिन हौय। और अनग भूमि मे समान हौय और सुरत जल मे पुष्प रस की सी सुगन्ध आवे और जाके अग सुगधि के लोभ सौ भ्रमर मडरायो करै! पीक निगलती वरीया पीक री लीक कठ मे होर दीषे। ऐसी त्वचा भीनी होय। स्वसी की प्रकृति होय, छह आगुर की घरनी होय। और सीप स्वसी की धुरी रेषा तछत, अनग भूमि होय, पोहप माल आसन की रुचि होय, स्वेद मे कमल पुष्प आदिकन की सी सुगधी होय। सुरति समे विमल स्थान, निर्मल सेज भूषन वस्त्रादि विमल भावै। गति हस की सी मद होय। नष स्पर्श। नषाग्रपरत कपोल चुवन नेत्र चुवन की रुचि होय यह लच्छिन पदमनीन के है।" इसी प्रकार आगे चित्रणी, हस्तिनी, सिहनी के लक्षण वताए गये है।

तीसरा नाम महाराज जयसिंह का है। इन्होने सभी प्रकार से राज्य की उन्नति मे सफलता पाई। 'पागल' उपनाम से यह कविता किया करते थे। परन्तु इनकी कविता मे कोई विशेपता नही है। इनके राज्यकालमे हिन्दी साहित्य के सरक्षण का पर्याप्त उद्योग रहा।

राज्याश्रित कवियो मे निम्नलिखित व्यक्ति उल्लेख योग्य है—भट्ट मुरलीधर, भट्ट श्रीकृष्ण, पूरणमल ब्रह्मराय, इन्द्रमल, उम्मेदराम, राम गोपाल, उमादत्त।

करौली — ११ वी शताब्दी मे बयाना नगर पर जादो राजपूत विजयपाल के आधिपत्य का उल्लेख ऊपर हो चुका है। इन्ही के वडे पुत्र तहनपाल ने करौली राज्यान्तर्गत तहनगढ का निर्माण लगभग सन् १०५८ मे किया था। तत्पश्चात् वर्तमान करौली राज्य पर इनका अधिकार हुआ। इन्ही के वशज अर्जुनपाल ने सन् १३४८ ई० मे वर्तमान करौली नगर की नीव डाली। अकवर के समय मे यह राज्य मुगलो के आधिपत्य ने रहा और करौली अधिपति गोपालदास अकवर के कृपापात्र वने रहे। सन् १८१७ ई० मे यह राज्य, एक सधि के अनुसार, ईस्ट इडिया कम्पनी

की सरक्षता मे आ गया । राज गद्दी के अधिकार के विषय मे अनेक झगड़े चलते रहे। परन्तु सन् १८५० मे अल्पायु नरसिंह पाल अधिकारी हुए परन्तु वे दो वर्ष पश्चात् ही स्वर्ग सिधार गये। सन् १८५४ मे मदनपाल को यहा का अधिकारी स्वीकृत कर लिया गया। इन्होने सरकार की वडी सहायता की विशेषकर सन् १८५७ मे। परिणामस्वरूप इनको अनेक पदवियो से विभूपित किया गया। इनके पश्चात् इनके सात उत्तराधिकारी हुये जिनमें महाराजा भवरपाल को सन् १८८९ मे पूरे अधिकार प्राप्त हुये।

इसी राजघराने मे महाराज कुमार भैया रतनपाल का नाम आता है। यह साहित्य के प्रेमी और साहित्यिको के आश्रयदाता थे। देवीदास नामक कवि ने इनके राज्य मे रहकर 'प्रेम रत्नाकार' नामक काव्य ग्र थ की रचना की थी। प्रेम निरुपण इस रचना का प्रधान विषय है। पाच तरगो मे इसकी समाप्ति हुई है। अन्तिम तरग की समाप्ति पर लिखा है—

"इति श्री मन्महाराज कु वर भैया रतनपाल विरचताया, प्रेमरत नागरे पचस्तरग। ईति। श्री देवीदास कृत 'प्रेम-रतन' नागोर सम्पूर्ण।" ग्रंथ निर्माण का समय भी स्पष्ट है।

संवत् सत्रह सै वरष वयालीस इव ध्यार।
अश्वनि सुदि तेरस कियो, ग्रंथ विचारि विचारि॥

करौली राज्य के अन्तर्गत एक सुन्दर पुस्तकालय है जिसका अस्तित्व यहा के राजघराने की साहित्यक सुरुचि का द्योतक है।

: ६ :

राजस्थान के राजघरानों की महिलाओं द्वारा हिन्दी की सेवाएँ

राजस्थान के राजघराने सदैव से ही हिन्दी की सेवाएँ करते आये हैं। महाराजाओ को तो हिन्दी साहित्य मे रुचि थी ही किन्तु अनेको विदुषी महिलाएँ भी ऐसी हुई हैं जिनको भाषा से विशेष प्रेम रहा और जिन्होने हिन्दी एव राजस्थानी भाषा मे अनेको ग्र थो की रचना की। राजघरानो की इन महिलाओ को हम दो भागो मे विभक्त कर सकते है। प्रथम वर्ग मे वे विख्यात रानियाँ आती हैं जिन्हे हिन्दी से विशेष प्रेम रहा और जिनकी सेवाएँ हिन्दी को निरन्तर मिलती रही।

इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाली रानियो के नाम इस प्रकार हैं।

(१) मीरा
(२) चाँपादे रानी
(३) बाँकावत जी
(४) सुँदरि कुँवरि
(५) छत्र कुँवरि
(६) हरीजी रानी
(७) जामसुता जाडेची पताप बा
(८) बाघेली विष्णु प्रसाद कुँवरि
(९) गिरिराज कुँवरि
(१०) प्रताप कुँवरि
(११) रणछोड कुँवरि
(१२) रत्न कुँवरि

द्वितीय वर्ग मे आने वाली निम्नलिखित महिलाये हैं। इनका सम्बन्ध भी राजघराने से ही रहा परन्तु पाटवी रानियो या कुँवरानियो के रूप मे नही, वरन् परदायतो अथवा पावानो के रूप मे।

(१) रसिक बिहारी "बनीठनी जी"
(२) बीरॉ
(३) तुलछराय ।

कवयित्रियो की क्रमसख्या मे सबसे पहला नाम मीराबाई का है परन्तु दुर्भाग्यवश उनके जीवन वृत्त के सबध मे सिर मु डाते ही ओले पडे वाली कहावत चरितार्थ होती है । उनका जीवन वृत्त अभी तक भी सदिग्घ है । राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहास लेखक कर्नल टॉड ने सबसे पहले मीराबाई के जीवन पर प्रकाश डाला और मेडता के राव दूदा के तीसरे पुत्र रतनसिह को मीरा बाई का पिता माना है तथा चित्तौड के महाराणा कु भा को उनका पति[1] । उनके जन्म एव मृत्यु के सम्बन्ध मे टॉड साहब मौन है ।

जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहास लेखक मु शी देवीप्रसाद ने "मीराबाई का जीवन चरित्र" लिखकर टॉड महोदय की कुछ मान्यताओ पर और अधिक प्रकाश डाला है । उन्होने राव रतनसिह को मीरा का पिता स्वीकार किया है परन्तु उनका विवाह महाराणा कु भा से होना न मानकर महाराणा सागा के कु वर भोजराज से होना प्रमाणित किया[2] है । मु शीजी के परिणाम का समर्थन हरविलास सारडा ने भी किया[3] है । "राजपूताना का इतिहास" पुस्तक के लेखक ओझा जी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे है ।[4]

मीरा की जीवन घटनाओ के सम्बन्ध मे अनेक विवादास्पद सम्मतिया प्रचलित है अतएव इसकी खोज बीन मे जाकर सबका सार यह निकलता है कि मीरा आरम्भ से ही ससार से उदासीन और भगवान के प्रेम मे लीन रहा करती थी । भगवत् भक्ति ही उनके जीवन का सबल था और साधु सतो का समागम, तीर्थ यात्रा एव भजन कीर्तन उनके जीवन की प्रेरणा । वे जहा भी गई मेवाड, द्वारिका, मथुरा कृष्ण भक्ति का पाथेय सदैव उन्हे योग देता रहा । यह ठीक है कि सबधियो और समाज की सकुचित भावना के कारण उन्हे अनेको कष्ट सहन करने पडे परतु अपने उपास्य की दृढ भक्ति के सामने वे सदैव गौरव से खडी रही और कोई भी उन्हे अपने पथ से

1. Annals & Antiquities of Rajasthan, Volume II, Foot note on page 856.
२ मीराबाई का जीवन चरित्र, पृष्ठ ७ (मुंशी देवी प्रसाद कृत)
३. महाराणा सांगा, पृष्ठ ८७ (हरविलास सारडा कृत)
४ जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग १, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पृष्ठ २५३

विचलित न कर सका। सन् १५४६ के लगभग उनका निधन हुआ। इस तिथि को कई विद्वानो ने माना है।[1]

मीरा की रचनाएँ— इनके द्वारा लिखे हुए चार ग्रथ मिलते है जिनके नाम इस प्रकार है —

(१) गीत गोविन्द की टीका
(२) नरसीजी का मायरा
(३) राग गोविन्द
(४) मीरा बाई के भजन

मीरा श्री कृष्ण को अपना इष्ट देव मानती थी। मारवाड मे जन्म होने के कारण इनकी भाषा मारवाडी थी। बचपन से ही भगवान श्री कृष्ण की प्रतिमा की पूजा बडे भक्ति भाव से करती थी। विवाह के उपरात उनके पति की शीघ्र ही मृत्यु हो जाने के कारण, तथा अनेको प्रकार की पारिवारिक यातनाओ के पश्चात् इनके हृदय मे वैराग्य की मात्रा बढती गई। परम भक्त मीरा कहा जाता है ईश्वर मे ही लीन होगई।

रचनाएँ— मीरा की जन्म घटनाओ के समान उनकी रचनाये भी बहुत कुछ सदिग्ध ही है। मीरा की तथाकथित रचनाये भी अनेक सस्करणो मे प्रकाशित हुई है[2]। जहा तक मेरा विचार है मीरा का सर्वप्रथम सग्रह "मीरा की वाणी" के नाम से वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ था। उसके पश्चात् अगले २०, २५ वर्षो मे मीरा के भक्तो द्वारा सग्रहीत उनके पदो की एक बाढ सी आ गई। कुछ विद्वान इनको राजस्थान की कवयित्री मानते है, कुछ व्रजभाषा की और कुछ गुजराती की। इस प्रकार उनकी रचनाओ को भाषा की दृष्टि से, तीन भागो मे विभाजित किया जाता है परन्तु परिस्थिति यह है कि राजस्थानी भाषा और व्रजभाषा की रचनाये इतनी मिली जुली है कि उन्हे एक दूसरे से पृथक करना असभव है। अतएव उचित यही

---

१. (१) उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ३६० (गौरीशंकर हीराचद ओझा)
(२) मुंशी देवी प्रसाद ने किसी चारण के मुह से यह सुना था मीराबाई-कालिका रजन कानूनगो प्रवासी, स० १३३८, पृष्ठ २४६

२. संग्रह ग्रथो के लिये देखिये बाबू व्रजरत्नदास द्वारा सम्पादित मीरा माधुरी, पृष्ठ १६२, १६३

प्रतीत होता है कि उन्हे दो भागो मे विभाजित किया जाय—ब्रजभाषा की रचनाये, तथा राजस्थानी और गुजराती की रचनाये ।[1]

ब्रजभाषा की रचनायें:—निम्नलिखित रचनाएँ मीरा की मानी जाती है ।

(१) नरसीजी रो मायरो
(२) गीत गोविन्द की टीका
(३) राग गोविन्द
(४) राग सोरठ
(५) स्फुट पद

नरसीजी रो मायरो.—यह ग्र थ ब्रजभाषा मे है कहा जाता है। कि यह रचना अत्यन्त नीरस और सामान्य कोटि की है। प्रसग प्राचीन है किन्तु मीरा ने इसे पदो मे लिखा है। यह पूरी रचना अप्राप्य है पर अशरूप मे कुछ कुछ अवश्य मिलती है। मीरा के समय राजस्थान मे राजस्थानी और ब्रज दोनो भाषा प्रमुख रूप धारण किये हुए थी। सभव है कि मीरा ने प्राचीन प्रसग को लेकर पदो का रूप दे दिया हो।

गीत गोविन्द की टीका—यह ग्र थ सस्कृत भाषा मे है और कहा जाता है कि यह महाराणा कु भकर्ण (कु भा) की रचना है किन्तु मीरा की मान ली गई है। यह ग्र थ अप्राप्य है इसलिये इसके विषय मे अधिक कुछ नही कहा जा सकता। महाराणा कु भा सस्कृत भाषा के अच्छे ज्ञाता थे तथा प्रसिद्ध कवि भी। हो सकता है यह ग्र थ उन्ही का लिखा हुआ हो।

राग गोविन्द और राग सोरठ—ये दोनो रचनायें भी अप्राप्य है किन्तु कहा जाता है कि ये दोनो कोई पृथक ग्रथ नही है केवल मीरा के कुछ सग्रहीत पद हैं जो इस शीर्षक के अन्तर्गत कहे गये है।

स्फुट पद:—मीरा जन्म ही से भक्त थी। वह भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने गाती और पद बनाती थी। अधिकतर मीरा के सभी पद गेय हैं। मीरा की भाषा ब्रज एव राजस्थानी है। द्वारिका मे रहने के कारण सभव है वे गुजराती भाषा मे भी कविता करने लगी हो। इनके गुजराती भाषा के कुछ पद विशेष सु दर और प्रसिद्ध हैं। इन पदो की कुल सख्या कितनी है यह निश्चित रूप से नही कहा जा

---

१ के० एम० मु शी का मत है कि पुरानी गुजराती और पुरानी राजस्थानी का साहित्य एक ही है। दोनो का एक रूप उनके प्राचीन सांस्कृतिक समन्वय का द्योतक है। इस दृष्टि से भी मीरा की रचनाओ का यह वर्गीकरण उपयुक्त है।

सकता । इन स्फुट पदो मे, मुद्रित और हस्तलिखित दोनो प्रकार के ग्र थो के पद हैं जो अनेक सग्रहो से सकलित किये गये है । इस सग्रह मे लगभग ४५० पद हैं ।

अब प्रश्न यह उठता है कि उपर्युक्त उल्लेख किये जाने वाले ग्र थ मीरा के हैं अथवा नही। इस विषय मे श्री मोतीलाल मेनारिया लिखते हैं कि उपर्युक्त सभी ग्रथ करीब करीब उनके देखने मे आये है और इन ग्र थो मे से एक भी ग्र थ मीरावाई का नही है । उनका कथन है कि मीरा की भाषा कविता इन ग्र थो की भापा कविता से भिन्न हैं तथा इन ग्र थो मे कोई ऐसा निर्देश नही पाया जाता जिससे यह पता चले कि ये ग्र थ मीरा के है । किन्तु मेनारियाजी ने किसी निश्चय पर पहुँचने के लिये इस शका का उपयुक्त समाधान नही किया । यदि वे यह कहते हैं कि मीरा की भाषा कविता से इन ग्र थो की भाषा कविता भिन्न है तो यह भी उन्हे कहना चाहिये था कि अमुक रचना एव भाषा कविता मीरा की है । उन्होंने कौनसी भाषा कविता एव ग्र थ को प्रामाणिक माना है यह उनके कथन से नही पता चलता ।

मेनारियाजी का कहना है कि मीरा ने केवल स्फुट पद लिखे है जिनकी सख्या २०० वा २५० से अधिक नही । अन्य जो पद है वे मीरा के नाम से किसी और के लिखे हुए है किन्तु इस कथन की प्रामाणिकता कोई नही मिलती है ।

इसमे सदेह नही कि मीरा ने गेय पद अधिक लिखे है जो राजस्थानी, गुजराती और व्रजभापा मे है । जो ग्र थ मीरा के नाम से विख्यात है वे सभी अप्राप्य है अतएव उनके विषय मे अधिक कुछ नही कहा जा सकता । 'गीत गोविन्द की टीका' जिस प्रकार महाराणा कु भा की रचना कही गई है और जो मीरा की मान ली गई है उसी प्रकार सभव है अन्य रचनायें भी किसी और की हो और मीरा की मान ली गई हो ।

मीरा की विचारधारा की पृष्ठभूमि :—भारतीय विचार धारा का प्रधान अग अध्यात्मवाद है । ऐहिक ससार की ओर ध्यान न देकर पारलौकिक आनद को सब कुछ मानना उनका प्रधान लक्ष्य रहा है । ऋगवेद की ऋचाओ से लेकर देशीय भाषाओ के साहित्य–सृजन तक अनेक सिद्धात और सम्प्रदाय उत्पन्न हुए, विकसित हुए और बहुत कुछ विलीन भी हो गये परन्तु उनकी अमिट छाप परवर्ती साहित्य पर स्पष्ट है । इस साहित्य को यदि 'साधना साहित्य' कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा ।

मीरा की विचार धारा का सूक्ष्म अध्ययन करने के लिए उनके समय तक की समस्त प्रधान विचार धाराओ का ज्ञान अपेक्षित है क्योकि वर्तमान अधिकाशरूप

से अतीत का ही परिणाम हुआ करता है। यह तो निर्विवाद है कि मीरा सत भी थी और भक्त भी अतएव उनकी इन दोनो विचार धाराओ मे उनके पूर्ववर्ती विचारको का प्रभाव प्रकृति जन्य है।

मीरा की पूर्व विचार धारा को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता हे।

(१) सिद्धो की परम्परा मे चली आने वाली विचार धारा।

(२) और सतो की परम्परा मे प्रवाहित होने वाली विचारवाहिनी।

इस प्रकार इस सिद्ध और सत विचारधारा को जानना अतिआवश्यक है अतएव अधिक विस्तार मे न जाकर यहा यही बताया जायगा कि ये विचार धारायें कौन कौनसी थीं और इनके प्रधान लक्षण क्या थे ?

बुद्ध के परिनिर्माण के पश्चात् बौद्ध धर्म महायान और हीनयान नामक दो भागो मे विभक्त हो गया। हीनयान बहुत कुछ अपने मूल रूप मे ही लिप्त रहा परन्तु उसके विकास मे परिवर्त्ती बौद्ध विचार धारा स्वभावत सम्मिलित होती गई परन्तु महायान ने जिस साधना मार्ग को अपनाया उसमे मूल की अपेक्षा अधिक परिवर्तन था। यह सम्प्रदाय आगे चल कर अनेक उपयानो मे विभाजित हो गया जिनमे मत्रयान और वज्रयान प्रधान रहे। प्रसिद्ध चौरासी सिद्ध इस वज्रयान शाखा के अन्तर्गत ही आते है और अब बहुत से हिन्दी के विद्वान हिन्दी के आदि साहित्य को इन्ही सिद्धो की अपभ्र श रचनाएँ मानते है।[1]

सहजयान मत्रयान शाखा के ऐसे साधको का सम्प्रदाय है जो मत्रयानी साधना के वास्तविक रहस्य से परिचित थे और उसे निर्लिप्त भाव के साथ किया करते थे। उनका कहना था 'हमारी साधना ऐसी होनी चाहिए जिससे हमारा चित्त क्षुब्ध न हो सके क्योकि चित्त रत्न के क्षुब्ध हो जाने पर सिद्धि का होना किसी प्रकार भी सभव[2] नही। सहजयान की इसी शाखा मे सरहपाद व सरहपा की गणना की जाती है जो सभवत स्वामी शकराचार्य के कुछ पूर्ववर्ती थे। इनकी तथा इनके साथियो की विचार धारा हिन्दी के प्राचीन साहित्य की आदि विचार धारा कही जा सकती है।

---

१. (i) राहुल सांकृत्यायन कृत हिन्दी काव्य धारा।
(ii) हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत हिन्दी साहित्य।

२ देखो-प्रज्ञोपाय-'विनिश्चय सिद्धि', श्लोक ४० पृष्ठ २४।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्धो की साधना जो बुद्ध के समय सदाचरण की साधना के रूप मे आरम्भ हुई आगे चलकर भक्ति, ज्ञान एव तत्रोपचार की पद्धतियो से परिवेष्ठित होकर वज्रयानियो के हाथ मे आई और आखरी शताब्दी के लगभग कतिपय सहजयानियो के कारण अनेक प्रचलित बातो का समन्वय कर किसी न किसी रूप मे १२ वी शताब्दी तक चलती रही । जैन मुनियो के साधना परक सिद्धात भी बौद्ध-सिद्धो के साथ-साथ भारतीय विचार धारा को परिपोषित करते रहे । यदि बौद्ध सिद्धो का धर्म चित्त शुद्धि द्वारा सहजावस्था की उपलब्धि कर अपने को विश्व कल्याण के धागो मे मग्न कर देना था तो जैन मुनियो का लक्ष्य ज्ञान द्वारा शुद्ध स्वभाव की पूर्ण अनुभूति प्राप्त कर उसके आधार पर अपने को परमात्मा की कोठी तक पहुचा देना था ।

सक्षेप मे ८ वी शताब्दी से लेकर १२ वी शताब्दी तक सभी प्रमुख सुधारको ने प्राचीन भावो को पुनर्जीवित करने के प्रयत्न किये । शकराचार्य ने प्राचीन ग्र थो का आश्रय लिया और ईश्वरवादी होने के कारण उनकी साधना मे भक्ति का अश स्वभावत. आ गया और रामानुजाचार्य एव उनके अन्य समकालीन आचार्य इसी भक्ति को उत्तरी भारत मे अनेक रूपो मे फैलाने के कारण बने । भक्ति का यह पौधा मीरा के समकालीन सूर और तुलसी मे अपनी चर्मावस्था पर पहुचा हुआ मिलता है । सहजयानियो की विचार धारा से प्रभावित एक अन्य मार्ग-नाथ योगी सप्रदाय भी उल्लेखनीय है । इन योगियो की विचार धारा ने हिन्दी मे पर्याप्त साहित्य की सृष्टि की । एक अन्य विचार धारा भी, जिसका उल्लेख होना आवश्यक हे, इन शताब्दियो मे विकसित हो रही थी और वह थी सूफीमत की विचार धारा ।

मीरा के समय तक जिन सम्प्रदायो[1] की विचार धाराओ ने हिन्दी-साहित्य को प्रभावित किया उनमे सहजयानि विचार धारा, नाथयोगी विचार धारा, सत विचार धारा, सूफीमत विचार धारा उल्लेखनीय है । हमे इसी पृष्ठभूमि मे मीरा सम्बन्धी कुछ विचार करना है ।

मीरा के कुछ पदो मे योग परक सिद्धो और सन्तो साधुओ की विचार धारा का प्रभाव स्पष्ट है । इन पदो की सख्या लगभग पन्द्रह हैं, उदाहरण के लिए कुछ यहाँ दिये जाते है ।

---

१ इनके सम्बन्ध की सिद्धान्त-समीक्षा के लिए देखिए सम्बन्धित ग्र थ-यथा उत्तर भारत की सत परम्परा, ले० परशुराम चतुर्वेदी ।

(१)

जोगिया ने कहियो रे आदेस
आऊंगी, मै नाहीं रहूं रे, कर जटाधारी भेस ।
चीर को फाडूँ कंथा पहिरूं, लेउंगी, उपदेश ।
गिणते गिणते घिस गई रे, मेरे अंगुलियाँ की रेख ।
मुद्रा माला भेष लूं रे, खप्पर लेऊं हाथ ।
जोगिन होय जग ढूंढसूं रे, साँवलिया के साथ ।
प्राण हमारो वहाँ बसत हैं, यहां तो खाली खोड़ ।
मात, पिता परिवार सूँ रे, रही तिनका तोड़ ।
पाँच पचीसो बस किये, मेरा पल्ला न पकड़े कोय ।
मीरां ब्याकुल विरहणि कोई, आन मिलावे मोय ।।२३६।।

(२)

जोगिया ने कहज्यो जी आदेस
जोगिया चतुर सुजाण सजनी ध्यावै संकर सेस ।
आऊँगी मै नाह रहूगी (रे म्हारा) पीव बिना परदेस ।
करि किरपा प्रतिपाल मोपरि रखो न अपणें देस ।
माला मुंदरा मेखला रे व्हाला खप्पर लूगी हाथ ।
जोगिण होइ जग ढूंढ़सू रे म्हारा रावलियारी साथ ।
सावण आवण कह गया व्हाला कर गया कौल अनेक ।
गिणता गिणता घिस गई री म्हांरी आंगलियाँ री रेख ।
पीव कारण पीली पड़ी व्हाला जोबन वाली वेस ।
दासी 'मीरा' राम भजि के तन मन कीन्है पेस ।।२३७।।

(३)

जोगियाजी छाई रहा परदेस ।
जब का बिछड़या फेर न मिलिया बहुरि न दियो संदेस ।
या तन ऊपरि भसम रमाऊं, खोर करुँ सिर केस ।

भगवा भेख धरूं तुम कारण ढूंढत च्यारूं देस ।
मीरां के प्रभु राम मिलण कूं जीवन जनम अनेस ।।२४४।।

(४)

धूतारा जोगी एक रसूं हसि बोल ।
जगत विदीत करि मनमोहन कहा बजावत ढोल ।
अग भभूति गले म्रिगछाला तू जन गुढ़िया खोल ।
सदन सरोज वदन की सोभा ऊभी जोऊं कपोल ।
सेली नाद बभूत न बटवो अंजू मुनी मुख खोल ।
चढ़ती बैस नैण अणियाले तूं घरि घरि मत डोल ।
'मीरा' के प्रभु हरि अविनासी चेरी भई बिन मोल ।।२४७।।

(५)

मैने सारा जगल ढूंढा जोगीड़ा न पाया रे ।
कान बीच कुन्डल जोगी, गले बीच सेली, घर घर अलख जगाया रे ।
अगर चदन की जोगी धूणी धरवाई अंग बीच भभूत लगाया रे ।
बाई मीरां के प्रभु गिरिधर नागर शब्द का ध्यान लगाया रे ।।२४६।।

ऊपर के पदो मे कुछ शब्द विचारणीय है। योगिनी के रूप मे मीरा का आत्मनिवेदन २३६ वें पद मे किया गया है । 'जोगिया' शब्द इसका द्योतक है वैसे योग परक सम्प्रदाय मे शिव को आदियोगी, योगीश्वर और आदिनाथ शब्दो से व्यजित किया गया है। प्रस्तुत पद मे शब्दो का प्रयोग नाथ–योगियो की परम्परा के अनुसार प्रतीत होता है। सम्प्रदाय का एक अनुयायी दूसरे अनुयायी से जिस समय मिलता है परस्पर का वह सम्बोधन आजकल का नमस्कार व नमस्ते न होकर आदेश होता है। इसका साम्प्रदायिक अर्थ जीवात्मा और परमात्मा का मिलन है और योगियो मे यह मिलन, योग की महत्ता का सूचक है। मीरा भी अपने साथी, अपने उपास्य को अपना विनम्र नमस्कार इन्ही शब्दो द्वारा प्रेषित करती हैं क्योकि उसका सदेश लेजाने वाला कोई अन्य व्यक्ति है। 'जटाधारी भेष' भी हठयोगी साधको का वाह्य रूप स्पष्ट करता है। और चीर न पहन कर कथा पहरना, उपदेश लेना नाथ सम्प्रदाय के साम्प्रदायिक शब्द है और उनकी विशेष परम्परा के द्योतक भी। मुद्रा की विवेचना करते हुए गोरक्षनाथ ने कहा है कि यह

शब्द 'मुद' धातु मोदार्थक और 'रा' धातु दानार्थक से मिलकर बना है जो जीवात्मा और परमात्मा दोनो की एकता करने वाली और कल्याणदायिनी है । 'माला' 'भेष लेना' 'खप्पर लेना' 'परिवार से तिनका तोडना' ये सब चिह्न भी नाथ परम्परा के ही अवशिष्ट है । 'पाच पच्चीस' शब्द भी योग साधना से ही लिया गया है । योग मे 'मुद्रा' और 'बन्ध' का विवेचन आया है । यद्यपि ये अनेक है परन्तु पच्चीस प्रमुख हैं महा मुद्रा, नमो मुद्रा, उड्डीयान मुद्रा, जालन्धर मुद्रा मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीत करणी, योनि, वज्रोलि, शक्ति चालनी, तडागी, मान्डवी, शम्भवी, अश्विनी, पापिणी, काकी, मातगी और भुजगिनि । इसी प्रकार पाच धारणाओ का (पार्थिव, आम्भसी, वैश्वानरी, वायवी और आकाशी) विवरण भी आया है । मीरा का सकेत निश्चित रूप से इस योग की मुद्रा है । इसके अतिरिक्त अन्य पदो मे जो शब्द आये है वे भी हमारे मत के पोषक हैं ।

'मेखला' 'खप्पर' 'सेली' 'भसम' 'नाथ' 'भभूति' आदि नाथ सम्प्रदायी परम्परा के अनुसार योग की साधना, उपास्य के विरह मे साधक का विरह वर्णन, ध्यान और चिंतन का महत्व, गुरू की आवश्यकता, व्यक्तिगत साधना, कर्मकान्ड का खडन, आचार और आग्रह, आदि अनेक प्रसंग आते है । कबीर से लेकर मीरा के समय तक के सभी सतो ने इन पर ज़ोर दिया है । सँतो के राम दशरथी राम नही हैं । वे तो वेदान्तियो के निर्गुण राम प्रतीत होते है । मीरा ने भी अपने पदो मे इन्ही राम का स्मरण किया है ।[1]

योग की आवश्यकता पर कोई विशेष आग्रह मीरा के पदो मे नही हैं । कही–कही गुरू की आवश्यकता अवश्य बताई गई है । अन्यथा सत्गुरु के प्रभाव से सुरत की डोर पकड कर वह उसी प्रकार अपने प्रिय से मिलने के लिए इच्छुक है जिस प्रकार एक सच्चा साधक अपने साध्य के लिए रहता है क्योकि उसका विश्वास है ।

'तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं जैसें सूरज घाम'

मीरा अपने तन की ताल और मन का मोरचग बनाकर प्रेम का ढोल बजाती है । सोती हुई सुरत को जगाकर अमरपुरी मे जाने की, राम से मिलने के कारण उसके हृदय मे जो आर्त्तता है वह जब तक मीराँ के प्रभु न मिलें तब तक उसके मन की आशा पूरी नही करने वाली है ।

---

१. पद सँख्या २५१ से लेकर २७१ तक ।

सत्गुरु की प्रशसा मीरा के कई पदो मे आई है[1]। सत परम्परा के अनुसार सत्गुरु अपने शिष्य की तृष्णा को बुझाने वाला और भवसागर से पार लगाने वाला है। वह एक ऐसी औषधि है जिसके कारण रोम-रोम सुख का अनुभव करता है, जिसकी कृपा के कारण हरि का दीदार होता है जिसके शब्द साधक को राह बताने वाले होते हैं और उसी मे ध्यान लगाने की प्रेरणा देने वाले भी। सत रैदास ने सत्गुरु रूप मे मीरा को वह सुरत रूपी सहलानी दी जिसके कारण उसके दुख का अत हुआ। वह प्रियतम से मिली। ससार की खाक से पृथक हुई और अपना घर जानने को समर्थ हुई जिनके शब्दो के कारण माता पिता कुटुम्ब कबीला सभी कुछ धागे के समान टूट गया और जो भवसागर मे से उसकी नाव को सच्चे खिवैये की तरह सदा के लिए पार लगा दे।

तीसरा प्रभाव मीरा पर भक्ति–भावना का प्रतीत होता है और यह तो निर्विवाद ही है कि मीरा भक्त थी परन्तु मीराँ की भक्ति का उद्घाटन करने से पहले यह देख लेना आवश्यक है कि भक्ति के तत्वो मे से कौन कौन से तत्व उनके काव्य मे प्राप्त होते है। ईश्वर मे परानुरक्ति का होना ही भक्ति है। शान्डिल्य के इस मत के अनुसार मीरा मे अनुरक्ति की प्रधानता और गहनता का होना परमावश्यक है। गहराई से इस प्रश्न पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति मे रसानद की महत्ता है। इस आनन्दोद्रेक के लिए आलम्बन और आश्रय आवश्यक हे। मीरा स्वय आश्रय हे और श्री कृष्ण उसके आलम्बन। परन्तु प्रश्न यह है कि श्री कृष्ण के अनेक रूपो मे से मीरा उनके किस रूप की उपासिका है। इस स्वरूप के निर्णय पर उनकी भक्ति भावना का बहुत कुछ स्वरूप आश्रित है।

मीरा की पदावली इस बात की साक्षी हे कि सयोग और वियोग दोनो अवस्थाओ मे मीरा ने श्री कृष्ण के किशोर रूप को ही अधिक महत्व दिया है। इस स्वरूप मे माधुर्य भाव अथवा दाम्पत्य भाव की प्रधानता है और यह स्थिति स्वाभाविक भी प्रतीत होती है। स्त्री के लिए भगवान का यह स्वरूप अन्य किसी स्वरूप की अपेक्षा अधिक प्राकृतिक हे।

मीरा के पदो मे कुछ पद ऐसे हैं जिनमे उनके जीवन की घटनाओ का उल्लेख मिलता है। इन पदो मे मीरा ने यह प्रकट किया है कि राणा अथवा उनके साथियो द्वारा उन पर जो कुछ भी अनाचार किया गया उसको उन्होने अपने उपास्य का

---

१. पद सख्या २७२ से २८५ तक।

वरदान मानकर ही ग्रहण किया। विषपान की कथा तथा कालेनाग की फुफकार मे यही भावना है। साम्प्रदायिक दृष्टि से कभी-कभी यह प्रश्न उठाया जाता है कि मीरा को वल्लभकुल मे वल्लभकुल का अनुयायी न माना जाय क्योकि विष को भगवान का चरणामृत करके पान करना इस कुल की भावना के विपरीत है। कुछ सीमा तक यह तर्क सही है परन्तु यदि वल्लभ कुल की विचार परम्परानुसार भक्त को प्रत्येक बात मे अपने प्रिय के अनुग्रह पर छोडना ही उचित है तो हम यह क्यो न मानले कि मीरा ने जो कुछ किया यही समझकर किया कि यह सब कुछ भगवान का अनुग्रह ही है। यदि यह तर्क सत्य मान लिया जाय तो इस आधार पर वल्लभ सप्रदाय से मीरा का निर्वासन अनुचित प्रतीत होता है। उनके माधुर्य भाव की प्रधानता के कारण और बालकृष्ण की उपासना के अभाव के कारण यदि मीरा को पृथक किया गया हो तो इसमे कुछ सार माना जा सकता है। एक और भी बात है वल्लभ–सम्प्रदाय अपने अनुयायियो को अपने सिद्धातो के विपरीत किसी का वचन सुनने अथवा किसी की सेवा–सुश्रूषा करने की आज्ञा प्रदान नही करता। मीरा भक्त होते हुए भी साधु सतो की सेवा मे पर्याप्त मात्रा मे लीन रहती थी। इस कारण से यदि वल्लभ कुल मे उनको न माना जाय तो भी कुछ समझ मे आ सकता है। अस्तु, चाहे जो कुछ भी हो उपास्य के स्वरूप के दृष्टिकोण से मीरा मे दाम्पत्य–भाव की प्रधानता है। रही नवधा भक्ति की बात। वैसे तो भक्ति भावना मे प्राय ये सभी–स्वरूप इतने अभिन्न रूप से मिले रहते हैं कि उन्हे पृथक करना असमव है फिर भी मीरा के वियोग–वर्णन मे उसके आत्मनिवेदन की बडी करुण और गहरी छाप है। कीर्त्तन तो मानो उसके जीवन का एक अग ही बन गया था। करताल लेकर नृत्य करती हुई रसमग्न मीरा कीर्त्तन के अतिरिक्त और किस प्रकार की भक्ति का प्रतीक मानी जा सकती है? जहा तक पाद–सेवन का सबध है वह तो मीरा के प्रत्येक पद मे है। जो अतिम चरण मे 'दासी' शब्द द्वारा व्यक्त हुआ है। इन पक्तियो मे केवल दास भाव की व्यजना ही नही उनमे प्रभु गिरिधर नागर की दासी कहलाने का गौरव भी सम्मिलित है। यह बात अवश्य है कि मीरा के पदो मे सख्य भावना अधिक नही मिलती। यदि कही राधा और कृष्ण की समानता, समवयस्कता अथवा सख्य भाव का वर्णन हुआ भी है तो भी अत मे मीरा ने उन्हे अपना प्रभु गिरिधर नागर ही माना है।

सक्षेप मे अन्य भक्तो की तरह मीरा मे नवधा-भक्ति भी पर्याप्त मात्रा मे पाई जाती है। राज घराने की इस राज-वधू ने आने वालो के सामने जो मार्गदर्शन किया उसके लिए उसके परवर्ती ऋणी है। यह मीरा की ही प्रेरणा थी जिसने राजसी ठाट बाट मे रहने वाली महिलाओ को भगवत् भजन और ईश्वर पूजा की ओर आकृष्ट किया। मेडते

मे चतुर्भुजी का मदिर, राजस्थान की इसी शकुन्तला का पुन्य-स्मारक और पवित्र आश्रम है।

मीरा की कविता —मीरा भक्त थी यह ऊपर सिद्ध किया जा चुका है अतएव काव्य शास्त्र के उपकरणो के आधार पर उनकी कविता की परख करना लेखिका के साथ अन्याय करना है। कहा जाता है कवि का कार्य-क्षेत्र कल्पना है सत्य नही, हृदय है मस्तिष्क नही, सौन्दर्य है ज्ञान नही, भाव है विवेक नही, परन्तु इतना होने पर भी सत्य, मस्तिष्क, ज्ञान और विवेक को उपेक्षा की दृष्टि से नही देखा जा सकता। यह सभव है कल्पना के सामने सत्य का रूप अधिक प्रस्फुटित न हो, हृदय के सम्मुख मस्तिष्क मौन हो, सौन्दर्य की उपस्थिति मे ज्ञान का मूल्य कम हो जाय और भाव के होते हुए विवेक शून्य मे विलीन हो जाय, परन्तु कल्पना के क्षेत्र मे सत्य सदैव अकुरित होता रहता है। वास्तव मे कल्पना और सत्य का चोली दामन का साथ है, यही कल्पना भावमयी हो तो उसमे स्वत ही चार चाद लग जाते है। भाव और सत्य के हिंडोले मे मीरा की कविता झूल रही है।

मीरा कृष्ण-मदिर की पुजारिन है। भगवान की मधुर मूर्ति के सामने वह नतमस्तक होकर गीत गाती है। इन गीतो का माध्यम उनका अपना हृदय है। सूर की तरह उन्हे गोपिकाओ से अपनी अतर्वेदना प्रकट कराने की आवश्यकता नही। आत्मा का स्वय नारी रूप होने के कारण उसे किसी मध्यस्त की आवश्यकता नही। उसकी भक्ति सत्य का स्वरूप लेकर आई है और उसके कृष्ण सत्य और प्रेम की साक्षात मूर्ति है। भक्ति की अभिव्यजना के लिए जिस परानुरक्ति की आवश्यकता होती है उसीके रग मे सराबोर होकर मीरा गाती है।

'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥

भक्ति के तपोवन की शकुतला के प्रत्येक शब्द से प्रेमावेश टपका पडता है। उसके उपास्य अपने कच्चे प्रेम-सूत्र मे उसे जहा चाहते हैं वही खीच कर ले जाते हे।

'कांचे ते तांत मै हरि जी ने बांधी
जेम खेंचे तेमनी रे।

जब कभी भी उनके हृदय मे भूकम्प की तरह निराशा आती है मीरा तब भी अपने उपास्य के ऊपर क्रोध करना नही जानती। उसकी भक्ति मे सालोक्य और सामीप्य के भाव-छिपे हुए है।

'जिनके पिय परदेस बसत हैं लिख लिख भेजें पाती।
मेरे पिय मो मांहि बसत हैं कहूं न आती जाती॥

'मैं तो राजी भई मेरे मन मे,
मोहि पिया मिले इस छन मे'

× × × ×

तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं जैसे सूरज–घाम

मीरा की कविता गीति–काव्य है अतएव गीति–काव्य के सभी लक्षण उसमे प्राय· प्राप्त हैं। व्यक्तिगत विचार, भावोन्माद और आशा–निराशा की धारा उसकी कविता मे अबाध रूप से वहती रहती है। उसकी कविता मे व्यक्तित्व की अनोखी छाप है। उसके भजनो मे उसकी भावना ही घनीभूत होकर कह रही है।

'स्याम तेरी आरत लागी हो'

उसकी भक्ति सत्य के रूप मे अभिव्यजित होते हुए काव्यगत सुन्दरता के साथ प्रस्फुटित हो उठती है।

'रमैया मैं तो थांरे रग राती'।

मीरा की कविता मे काव्य का सौन्दर्य वियोग की अभिव्यक्ति मे विशेष रूप से निखरा है।

'इक विरहिनि हम ऐसी देखी अंसुवन माला पोवे'।

× × × ×

'दरस बिन दूषण लागे नैन'।

प्रतीत होता है मीरा की आखो की अतुल राशि ही बिखरी पड रही है और यद्यपि प्रतीक्षा करते करते उसकी आखो की ज्योति क्षीण पडती जाती है फिर भी अपने उपास्य के प्रति अतर्लगन ह्रास को प्राप्त होती हुई दिखाई नही देती। यह सत्य है मीरा की कविता मे नायक–नायिका का विश्लेषण नही। रसोद्रेक मे विभिन्न तत्वो का पृथक–पृथक अन्वेपण नही। वह काव्यगत अलकारो से परिचित नही परन्तु फिर भी उसमे कल्पना और भावना का सत्य है, ऐसा सत्य जो सयोग और वियोग पक्षो को भुलाकर अपनी ओर पाठको को आकर्षित कर लेता है। पाठक तो फिर भी भौतिक जीव ही ठहरे स्वय उपास्य उसकी ओर आकर्षित होते है और अपने आराध्य की अनत एव अविच्छिन्न साधना मे लीन होकर वह पुकार उठती है।

'म्हांने चाकर राखो जी गिरधारी लाल चाकर राखोजी,
चाकरी मे दरशन पाऊं सुमिरन पाऊं खरची,
भाव भक्ति जागीरी पाऊ तीनो बातां सरसी'।

मीरा के काव्य मे उसके पूर्ववर्ती कवियो का प्रभाव गीति–काव्य की दृष्टि से स्पष्ट प्रगट होता है। गीत–गोविन्द मे राधा और कृष्ण के जिस प्रेम का वर्णन सगीत मय भाषा के साथ हुआ है मीरा की कविता उससे अक्षुण्ण नही रही। केवल उसमे चुम्बन और परिरमन के दृश्यो का अभाव है। विद्यापति की काकली का प्रभाव केवल भाषा के माधुर्य मे ही दिखाई पडता है। विद्यापति केवल बाह्य–सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कहते है —

'सहजहि आनन सुन्दर रे।
भौंह सुरखेलि आखि
पकज मधु पी बि मधुकर रे॥
उड़ ए पसारल पांखि
तत् ही घाओल दुहु लोचन रे॥
जते ही गेलि वर नारि
आसा लुबुधल न तेअए रे
कृपनक पाछु भिखारि॥

उनकी कविता सद्य स्नाता और वय सधि के चचल और कामोद्दीपक भावो से मस्तिष्क को उत्तेजना देती है। उनका नखशिख और ऋतु वर्णन, काव्य शास्त्र का ज्ञान प्रकट करता है परन्तु मीरा के पास इन उद्दीपन विभावो, अनुभावो और सचारियो के गिनने गिनाने का समय कहा? उसे अपने किसी आश्रयदाता की रुचि को प्रसन्न करने की आवश्यकता नही थी। इसमे भी सदेह नही कि मीरा मे सूर की वाग्विदग्धता, उनका गभीर हास, उनकी अद्भुत कल्पना, उनके कथन की विशेषता, एक भाव का अनेक रूपो मे वर्णन यह सब भी नही परन्तु अपने अस्तित्व को अपनी भावना मे घनीभूत कर देने की जो विशेषता है उसका अभाव मीरा मे कही नही दिखाई देता।

(१) मीरा नी गरवी,

(२) सत्यभामा जी नू रूसणू,

(१) मीरा नी गरवी —कहते है कि मीरा गुजरात के गरवा गीतो से अत्यन्त प्रभावित हुई थी जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने भी कुछ ऐसे ही पदो की रचना की। ये पद 'मीरा नी गरबी' के नाम से विख्यात हुए किन्तु इनका कोई

सग्रह प्रकाशित नही हुआ है । गरवा के स्थान पर ये पद गरवी इसलिए कहलाये कि ये पद स्त्री की भाषा मे इष्टदेव पति को सबोधित कर बनाये गये है ।

श्री ब्रजरत्नदासजी द्वारा सपादित् 'मीरा–माधुरी' पुस्तक मे 'गुजराती भाषा के पद' शीर्षक–मे मीरा की गरविया दी हुई है[1] । इन पदो मे मीरा ने कृष्ण की लीला का वर्णन किया है । पद गेय हैं एव राग रागनियो मे है ।

(२) सत्यभामा जी नू रूसणूं — यह ग्रथ अप्राप्य है किन्तु 'मीरा माधुरी' मे सत्यभामा का रोष नाम से दिया गया है ।[2]

इसका कथानक इस प्रकार है ।

श्री कृष्ण का झुकाव रुक्मणी की ओर अधिक देखकर सत्यभामा रोष मे आकर श्री कृष्ण से कहती है :—

'हे यदुवशी ! तुम्हारे प्रेम को जान लिया, प्रेम होता है वह हृदय मे दीखता है । हम तुम्हे आखो देखे अच्छे नही लगते । प्रेम सदैव नयनो मे झलकता हैं' । नारदजी ने श्रीकृष्ण को पारिजात का पुष्प लाकर दिया था उस पुष्प को श्रीकृष्ण ने रुक्मणी जी को दे दिया और सत्यभामा को उसकी एक पखुडी भी नही दी । उसका भी उलाहना सत्यभामा ने श्रीकृष्ण को दिया और कहा, 'हे श्याम सुन्दर । मै तुमसे नही बोलू गी तुम रुक्मणी के पास जाकर रगरलिया मनाओ, अब मेरा क्या काम है ? तुम मेरा स्पर्श भी मत करो और अपनी माननी के समीप जाओ । आज के पश्चात् फिर मेरे भवन मे मत आना ।'

नारद मुनि ने सत्यभामा से कहा था कि निर्लज्ज कृष्ण को तुम्हारा ध्यान नही है । वह कई प्रकार के भाव बताता हुआ आवेगा पर तुम अपने बडे कुल की ममता न तजना । सत्यभामा ने रोष मे आभूषण उतार कर श्रीकृष्ण को दे दिए और कहा, अपनी बाल्यकाल की प्रीति अब बदल गई है ।

तुमने मुझे कुछ सुख नही दिया और मेरा स्वप्निल सुख स्वप्न मात्र ही रहा । मेरे पिता ने पाल पोस कर तुम्हारे हाथो सौपकर न जाने कौन सा वैर निकाला, मुझे विष क्यो न दे दिया ।

---

१. देखो पृष्ठ ८३, 'मीरां माधुरी'–संपादक–श्री ब्रजरत्न दास

२. 'मीरा माधुरी'–ब्रजरत्नदास द्वारा सम्पादित, पृष्ठ ६६

इतना सुनकर श्रीकृष्ण सत्यभामा से कहते है कि नारद के कहने से तुम्हे इतना क्रोध नही करना चाहिए। कपटी नारद तो सर्वत्र जाकर वैर बढाता है तुम कहो तो मै पारिजात का वृक्ष यहा लादू । इस प्रकार हरि ने सत्यभामा से क्षमा याचना करते हुए उसे प्रसन्न कर लिया और सत्यभामा के जीवन को धन्य कर दिया ।

सत्यभामा के रोष के पश्चात् इसी शीर्षक के अन्तर्गत अन्य पद जो दिये गये हैं वे मुक्तकपद है इन पदो मे श्री रामनाम महिमा है। मीरावाई कहती है कि रामनाम का स्मरण मिश्री की डली के समान है जिससे मुख मे अमृत का सा स्वाद अनुभव होता है। मीरा कहती है कि राम भजन से जिसकी प्रीति नही उसकी जीभ तोड लेनी चाहिए। हरिगुण गान करने से यम की मार भी नही खानी पडती। मीरावाई भगवान से कहती हैं कि तुम्हारा ही गुण गान करने से मेरे दु ख दूर हुए हैं।

इस राम गुनगान के पश्चात् मीरा ने श्रीकृष्ण के रूप और गुण का खूब अच्छी तरह वर्णन करते हुए यह कहा है कि 'कृष्ण का रूप और गुणो का बखान' अवर्णनीय है।

मीरा हरि भजन–करने के लिए अपने तन का तानपूरा बनाकर जीवन रूपी तार कसने को कहती है। वह कृष्ण की दासी ही बनी रहना चाहती है।

मीरा स्वय प्रेम–रस पीना चाहती है और कृष्ण को भी पिलाना चाहती है। मीरा ने गोपाल को पति रूप से वरण कर लिया इस कारण सासारिक बधनो को त्याज्य माना। यमुना तथा ब्रज को मीरा अति पवित्र स्थान मानती है और भगवान की प्रतिमा सदैव अपनी आखो मे विद्यमान रखना चाहती है।

ससार सागर से पार होने के लिए एकमात्र कृष्ण ही अवलम्बन है, प्रह्लाद, ध्रुव, द्रौपदी आदि भक्तो की लज्जा भगवान ने रखी थी उसीका स्मरण मीरा अपने पदो मे दिलाती है।

चांपादेरानी :—यह जैसलमेर के रावल हरराज की पुत्री थी। इनका विवाह बीकानेर के महाराजा पृथ्वीराज से स १६५० मे हुआ। इनके पति डिंगल भाषा के प्रसिद्ध कवि हुए हैं। इन्ही की सगति मे रहने के कारण चापादे रानी को भी कविता करने मे रुचि हो गई। इनकी रचनाएँ ग्र थ रूप मे कोई नही मिलती किन्तु कुछ फुटकर पद अवश्य पाये गये हैं। एक बार महाराजा पृथ्वीराज ने अपनी मू छ मे एक स्वेत केश देखा तो पत्नि की ओर देख लज्जित हुए पत्नि ने यह देखकर मु ह

फेर लिया और हसने लगी। दर्पण मे प्रतिविम्ब देख महाराजा पृथ्वीराज ने कविता बनाई जिसके उत्तर मे रानी ने भी कुछ पक्तिया कही जो इस प्रकार है:–

प्यारी कहे पीथल सुनो, धौला दिस मत जोय।
नरां, नाहरां, डिगमरां[1], पाकां ही रस होय।
खेडज–पक्का धोरिया, पंथज गडप्यां पाव।
नरां तुरंगा बनफलां, पक्कां–पक्कां साव।[2]

इसी प्रकार एक बार जब महाराजा पृथ्वीराज डिंगल भाषा का 'रुकमणी मगल' काव्यलिख रहे थे तो 'चन्दन पाट चदनपाट' बार बार उच्चारण करने लगे क्योकि उनसे आगे का पद जुडता नही था। चापादे ने तुरन्त ही 'कपाट ही चदन' कर दिया जिससे पूरा पद 'चदन पाट कपाट ही चदन' बन गया। इस प्रकार पति की सगति से चापदे रानी भी कुछ लिख लिया करती थी। इससे अधिक इनका साहित्य उपलब्ध नही है।

ब्रजदासी रानी बांकावत जी— यह लिवाण के राजा की पुत्री थी और कृष्णगढ के राजा राजसिंह जी के साथ इनका विवाह हुआ था। इनकी कविता का विषय भक्ति ही है। यह कृष्ण की भक्त थी। इन्होने श्रीमद्‌भागवत को उलथा भाषा मे छदोबद्ध किया था। यह काव्य 'ब्रजदासी भागवत' के नाम से विख्यात है। (कहा जाता है कि यह ग्र थ जोधपुर के राम स्नेही साधु आरतरामजी के पुस्तकालय मे विद्यमान है[3]) अनेक प्रयत्नो के उपरान्त भी यह पुस्तक उपलब्ध नही हो सकी। कोई पता इस ग्र थ के अस्तित्व का अब नही चलता। मु शी देवीप्रसादजी ने कुछ उदाहरण दिये है वे ही यहा दिये जा रहे है।

उदाहरण—

: छप्पय :

नमो नमो श्री हंस नमो सनकादि रूप हरि,
नमो नमो श्री नार्द देवऋषि जग को सम सरि।

---

१. **दिगम्बर जोगी।**
२ **खेती पक्के बैलों से ही होती हैं और रास्ता भी पक्के ऊंटो के पावों से ही कटता है। नर, तुरंग और बनफलां पक्के ही अच्छे होते हैं।**
३. **'महिला मृदुवाणी' ले० मुंशी देवीप्रसाद–पृष्ठ ९५**

नमो नमो श्री व्यास नमो शुकदेव जु स्वामी,
नमो परीक्षित राज ऋषिन मे मुख्य है नामी ।।
नमो नमो श्री सूत जू नमो नमो सोनक सकल ।
नमो नमो श्री मद्भागवत कृष्ण रूप क्षिति मे अकल ।।

: दोहा :

श्री गुरुपद वदन करू । प्रथमहि करू उछाह ।
दम्पति गुरु तिहुं की कृपा । करो सकल मो चाह ।।१।।
बार बार बदन करौं । श्री बृषभान कुमारि ।
जय जय श्री गोपाल जू । कीजै कृपा मुरारि ।।२।।
बंदौं नारद व्यास शुक । स्वामी श्रीधर संग ।
भक्ति कृपा बन्दौं सुखद । फलै मनोरथ रंग ।।३।।
कियो प्रकट श्री भागवत । व्यास रूप भगवान ।
यह कलितम निरवार हित । जगमगात ज्यो भान ।।४।।
कह्यो चहत श्री भागवत । भाषा बुद्धि प्रमान ।
करि गहि मुहि सामर्थं हरि । देहैं कृपानिधान ।।५।।

: चौपाई :

व्यास भागवत आरंभ मांही प्रभु को आन हृदय सरसांही ।
ऐसो वचन कहत मुनि आनी प्रभु सौं परम प्रेम उर ठानी ।।६।।
परम प्रेम परमेश्वर स्वामी हम तिहि ध्यान धरत हिय ठामी ।
यहै त्रिविध झूठौ ससारा भांति भांति बहु विधि निरधारा ।।७।।
अरु सांचे सो देत दिखाई सो सतिता प्रभु ही की छाई ।
जैसे रेत चमक मृग देखें जल को भ्रम मन मांहि सपेखें ।।८।।
जल भ्रम झूठ रेत ही सत्या भ्रम सों दीस परत जल छत्या ।
जल भ्रम कांच माहि ज्यो होता सो झूठो सति कांच उदोता ।।९।।

: दोहा :

अबै व्यास जू कहत हैं यही भागवत माँहि ।
धर्म सबै निहकाम अब बरनन करि सुख पाहिं ।।१४।।

सु दरि कु ंवरि रानीः—इनका जन्म, सवत् १७६१ मे हुआ था। यह कृष्णगढ महाराज राजसिंह की पुत्री थी। इनका विवाह रूप नगर के (राघोगढ के) खीची महाराजा बलभद्रसिंह के पुत्र बलवतसिंह के साथ हुआ था।

रानी सुन्दरि कु वरि को कविता करने मे विशेष रुचि थी इन्होने ११ ग्र थ लिखे जिनके नाम क्रमानुसार नीचे दिये जाते है।

रचनाएँ —

(१)	नेह निधि	स० १८१७
(२)	वृन्दावन गोपी महात्म्य	स० १८३०
(३)	सकेत सुगल	स० १८३०
(४)	रसपु ंज	स० १८३४
(५)	प्रेम सपुट	स० १८४५
(६)	सार सग्रह	स० १८४५
(७)	रग भर	स० १८४५
(८)	गोपी माहात्म	स० १८४६
(९)	भावना-प्रकाश	स० १८४९
(१०)	राम-रहस्य	स० १८५३
(११)	पद तथा फुटकर कवित्त	

रानी सु दरि कु वरि का विषय कृष्णलीला और भगवत् भक्ति था। सु दरि कु वरि का जीवन भक्ति मे सरावोर था इसका प्रमाण उनकी कविता की वहुलता और उसकी उत्कृष्टता स्वय है, निम्बार्क सप्रदाय के अनुकूल उनकी भक्ति भावना उनकी कविता की प्रत्येक पक्ति से प्रगट हो रही है। उनके गुरु श्री वृन्दावन देव थे जो परशुराम जी की शिष्य परम्परा मे से एक थे। कृष्णगढ के अन्तर्गत रूप नगर से लगभग ६ मील की दूरी पर सलेमाबाद नामक स्थान मे इन परशुरामजी ने निम्वार्क सम्प्रदाय की गद्दी की स्थापना की थी, अपने धर्म गुरु के प्रति वाईजी ने अपनी रचनाओ मे स्थान स्थान पर अपनी विनम्रता एव कृतज्ञता प्रकट की है।

कवित्त :

धाम अभिराम ग्राम नाम सुसलेमाबाद,
कलि भवसागर में नवका तरन कौं।
गादी श्री परशुराम देव जू स्यापि जहां,
लोक दया हेरी त्रय ताप के हरन कौं।

वृन्दावन देव निज दासता की छाप मेरे,
भाल तहां दीनी हरी आश्रय करन कौं।
महा दीन हीन मति कीनी हो सनाथ नाथ,
कोटि कोटि दंडवत् तिन के चरन कौं[1]।

निम्बार्क सम्प्रदाय की शिक्षा दीक्षा के अनुसार राधिकाजी के प्रति लेखिका की प्रेम भावना विशेष रूप से दृष्टव्य है यद्यपि सम्प्रदाय राधाकृष्ण की युगल मूर्ति को महत्व देता है। अपने उपास्य के सौन्दर्य का वर्णन लेखिका ने इस प्रकार किया है।

: कवित्त :

केसर के रग भीनो भीनो नीमा अंगचुस्त,
मोतिन दिवालगीर चुनवट की लहरें।
रेनी इक बोर जोर ललित लपेटा जाके,
पेचन कुपेच्च छज नागरीन चहरें।
तापै सिर सोभा लरि मुक्तजाल गुच्छ छोगा,
लटकन झुलन भाल करगी की थहरें।
सामिलता भूषन सुमन छवि भीर चीर,
चढ़िय सिंगार ध्वजा चन्द्रिका सुफहरे[2]।

अथवा

सुन्दर स्याम मनोहर मूरति श्री बृजराज कुंवार बिहारी।
मोर पखा सिर गुंज हरा वनमाल गले कर बसिका धारी।
भूषण अंग के संग सुशोभित लोभित होय लखैं ब्रजनारी।
राधिका वल्लभ मो दृग गेह वसौ नव नेह रहो मतवारी॥[3]

प्रियाजी की छवि का और अधिक उत्कृष्ट वर्णन इस प्रकार मिलता है।

---

१. संकेत सुगल

२. भावना प्रकाश।

३. संकेत सुगल

मोतिन की बेल सी पुरानी सकुचान भरी,
आनन फिरानी कर कानन धरत हैं।
चकित चितौन ह्वै अजान मुसकान दाबै,
फाबै भाव भरी भौंहैं चित जो भरत हैं।
मैन धनुवान सजै मुक्तन लता पै चद,
घूंघट के ओट मानो मृगया करत हैं।
सारंग सुजान श्याम घाय घट घूमें अंग,
महर उमंग मन मोहनी परत हैं[1] ॥

प्रेम मे पगी लेखिका भक्ति के भाव मे भगवान की लीलाओ की अनुभूति करती है। वृन्दावन मे होने वाली लीलाओ मे गोपियो को भाग लेने का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसके प्रति उसमे ईर्ष्या नही, आदर है। बडी विनम्र वाणी मे सु दरि कु वरि ने राधा के मान का वर्णन 'वृन्दावन गोपीमहात्म्य' मे किया है। राधा एक कु ज मे मान किये बैठी थी घनस्याम से आज्ञा लेकर एक सखी उस कु ज मे आई, राधा को समझाने लगी और कृष्ण के प्रेम का वर्णन कर उसे उनकी लगन का परिचय देने लगी। इस प्रकार 'मानलीला' के सु दर व भाव पूर्ण वर्णन पढने योग्य है। इसी प्रकार दान–लीला प्रसग का वर्णन भी रसपु ज मे आया है। कृष्ण के साथ ललिता, विशाखा, रगदेवी, चम्पकलता, चित्ररेखा आदि के सवाद तो इस प्रसग मे अच्छे है ही परन्तु कृष्ण के प्रस्ताव पर राधा की उक्ति भी देखिये —

चौदह विद्या तुम यहीं, सोलेह कला बसाय।
तो गुन प्रगट दिखाय कछु, लीजै दान रिझाय ॥

राधा का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। कृष्ण गोपियो को रिझाने के लिये नाचने लगे। राधा स्तम्भित हो गई, उनका लज्जा रूपी पोत काम–पवन के वशीभूत हो डगमग करने लगा।

स्याम रूप सागर में नैन वार पारथ के,
नचत तरग अंग अंग रंगमगी है।
गाजत गहर धुनि बाजत मधुर बैन,
नागनि अलक जुग सीधै सगवगी है।

---

१. नेह निधि

भंवर त्रिभगताई पान पलुनाई तामे।
मोती मणि जालन की जोति जगमगी है।
काम-पौन प्रबल झुकाव लोपी पाज तातें,
आज राधे लाज की जिहाज डगमगी है।

राधा ही क्या समस्त गोपिया उस रूप पर मोहित होकर अपना आपा खो बैठी। परिणाम यह हुआ,

गागरि गिरी हैं केऊ सीस उघरी हैं केऊ,
सुध बिसरी है ते लगी हैं द्रुम डारि कै।
डगमग ह्वै कै भुजधारी गर द्वै कै काहू,
बैठ गई कोऊ सीस मटकि उतारि कै।
मैन सर पागी कोऊ घूमन है लागी कोऊ,
मोती मणि भूषन उतारैं डारै वारि कै।
ऐसी गति हेरि इन्हें ग्वार कहे टेरि टेरि,
मदन दुहाई जीती मदन पुरारि कै।

परन्तु कृष्ण की जीत को कौन मानने वाला था। वहुमत ही ठहरा न, घुटने पेट की ओर ही झुके और सवकी सव कहने लगी,

मन रिझवार ये तो घायल सुमार बिन,
सुभट करारे ज्यो संभार कौ संभारि कै!
ललिता कहत अरे सुनहु गंवार ग्वार,
करत उभार ऐसे काहे गाल मारि कै।
अच्छे जयवार देखे मदन मुरारि जू को,
रहो रे लबार गिलान मुंह हारि कै।
नाचन नचाय लीने कैसे मन माने कीने,
जीत है हमारी वृषभानु की कुंवारि कै।

फिर भी कृष्ण के नृत्य से प्रसन्न होकर ललिता ने कहा।

आवहु स्याम सुजान जू बकसीसत अब दान।
सब दधि भंजन देत हैं, रीझ सुता वृषभान॥

सम्प्रदायगत 'यमुना वर्णन' भी सु दरकु वरिजी की कविता मे आया है। और भी छोटे मोटे प्रसग अपने अपने स्थान पर आये हैं। बाईजी की भाषा वडी मधुर, सारगर्भित और धारावाहिक है। अन्य भाषा के शब्दो अथवा मुहावरो को लेकर उन्होने अपने विशाल हृदय का परिचय दिया है। सूर, तुलसी आदि भक्तो की तरह इनकी कविता मे भी 'राम रहस्य' को स्थान मिला है। भगवान राम के चरित की मर्यादा पर लेखिका का विशेष ध्यान रहा है ऐसा प्रतीत होता है। एक सवैये मे लेखिका ने इस प्रकार अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की है।

चारु चमूज अपार लसे गजराज की पीठ पै होत नगारो।
नीकी अनीकिनी पीत निशान यो सोहत हैं छबि नैन निहारो॥
सांवरे रंग अनूपम अंत, अनगहू तौ सम नाहि विचारो।
आयो यह सखि ओध के रावसु पाहन पांव उड़ावन हारो॥

सक्षेप मे सु दरि कु वरि की कविता भक्ति से सम्पन्न, मानवता से विह्वल और हृदय की गहराई से परिपूर्ण है। उसमे माधुर्य है, शान्ति की धारा है और ओज का स्मित पुट है। जिस भगवद्–भक्त घराने मे उन्होने जन्म लिया उसकी परम्परा को उन्होने जीवित रखा। कृष्णगढ का राजघराना उन पर गर्व करे तो अत्युक्ति नही।

छत्रकु वरि रानी :—यह किशनगढ महाराज सरदारसिंहजी की पुत्री थी। रूपनगर के महाराजा बहादुरसिंहजी खीची राघोगढ की स्त्री थी। इनका लिखा हुआ ग्रथ 'प्रेम विनोद' है जो स० १८४५ मे लिखा गया।

'प्रेम विनोद' के अन्तिम दोहे इस प्रकार हैं।

रूप नगर नृप राजसी जिन सुत नागरिदास।
तिन पुत्र जु समदारसी हों तनया मे तास॥
छत्र कुंवरि मम नाम है कहिवै को जग मांहि।
प्रिया सरन दासत्व तें हौं हित चूर सदांहि॥
सरन सलेमाबाद की पाई तासु प्रताप।
आश्रय है जिन रहसि के बरन्यो ध्यान सजाय॥

प्रेम विनोद के अन्तिम दोहो से यह पाया जाता है कि यह रूपनगर के राजा सरदारसिंहजी की बेटी और नागरीदासजी की पोती थी। इनकी कविता के अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं।

श्याम सखी हंसि कुंवरि दिस, बोली मधुरे बैन।
सुमन लेन चलिए अबै, यह बिरिया सुख दैन॥

यह बिरिया सुख दैन जान मुसकाय चलीं जब।
नवल सखी करि कुंवरि संग सहचरि बिथुरीं सब॥

प्रेम भरी सब सुमन चुनत जित तित साझी हित।
ये दुहु वेवस अंगफिरत निज गति मति मिश्रित॥

गरवाही दीने कहूँ इक टक लखन लुभाहिं।
पग पग द्वै द्वै पैंड़ पै थकित खरी रहि जाहिं॥

थकित खरी रहि जाहिं, दृगन दृग छुटे ते छूटें।
तन मन फूल अपार, दुहुं फल लाह सु लूटें।

हरिजी रानी चांवडी जी

यह जोधपुर महाराज मानसिंहजी की रानी थी। इन्हे कविता करने मे एव गान विद्या मे विशेष रुचि थी।

उदा० (१)

बेगानी पधारो म्हारा आलीजा जी हो।
छोटी सी नाजक धण रा पीव॥

ओ सावणियो उमंग्यो छै।
हरिजी ने ओडण दिखणी चीर॥

इण औसर मिलणों कद होसी।
साड़ी जी रो थांपर जीव॥
छोटी सी नाजक धण रा पीव।

उदा० (२)

चालो मृगा नेणियां जी चम्पा बाडियां।
जठे लाल तम्बूडा तणियां॥

पनो[1] सुमेर संग रा साथी ।
ज्यूं माला रा मणियां ॥
रसीलो राज बींद मदमातो ।
सुख समाज रंग बणियां ॥
फेर बधावण चालो सखियां ।
पिव केसरिया बणियां ॥

जामसुता प्रताप कुंवरि (जाडेची प्रताप बा)

यह जामनगर के जाम बीभा जी की पुत्री थी और जोधपुर महाराज तखतसिंहजी से इनका विवाह हुआ था। इनका जन्म सवत् १८९१ माना जाता है।

जाडेचीजी को कविता करने मे विशेष रुचि थी। इनकी कविता का विषय भगवत् भक्ति ही रहा है। यह चतुरभुज भगवान की परम भक्त थी। इन्होंने स्तुति के पद और हरजस बनाये हैं।

'प्रताप कुंवरि पद रत्नावली' नामक सग्रह मे इनकी कविताएँ पाई जाती हैं कुछ रचनायें इस सग्रह मे छगन विप्र और सुकवि श्याम की भी हैं।

जाड़ेचीजी की कविता के उदाहरण:—

उदाहरण (१)

प्रीतम प्यारो चतुरभुज बारो री
हिय तें होत न न्यारो मोरे, जीवन नंद दुलारो री
जाम सुता को है सुखकारी, सांचो श्याम हमारो री।

उदाहरण (२)

दरस मोहिं देहु चतुरभुज श्याम।
करि किरपा करुणानिधि मोरे सफल करों सब काम ॥
पाव पलक बिसरूं नहिं तुमको याद करू नित नाम ॥
जामसुता की याही वीनती, आनि रहो उर-धाम ॥

---

१. प्यारा

उदाहरण (३)

सखीरी चतुरभुज श्याम सुन्दर से, मोरी लगन लगीरी।
लाख कहो अब एक न मानूं उनकी प्रीत पगीरी॥
जा दिन दरस भयो तादिन तें, दुविधा दूर भगीरी।
जाम सुता कहे उर बिच उनकी, भगती आन जगीरी॥

उदाहरण (४)

मोमन परी यह ही बान।
चतुरभुज के चरण परिहर, ना चहूं कछु आन॥
कमल नैन विसाल सुन्दर, मंद मुख मुसकान।
सुभग मुकट सुहावनो सिर, सोहे कुंडल कान॥
प्रगट भाल विसाल विराजत, भौंहें मनहु कमान।
अंग अंग अनग की छवि, पीतपट पहिरान॥
कृष्ण रूप अनूप को मैं, धरूं निसदिन ध्यान।
सदा सुमरूं रूप पल पल, मीन ज्यो जल जान॥
रचत पालत, हरत, सब जग, कला कोटि निधान।
जामसुता परताप के, भुज चतुर जीवन प्रान॥

बाघेली विष्णु प्रसाद कुंवरि रानी :—यह रीवा नरेश रघुवीरसिंहजी की पुत्री और जोधपुर महाराज किशोरसिंहजी की रानी थी। इनका विषय भी भक्ति ही था इनके बनाये हुए ३ ग्रथ हैं।

(१) अवध विलास
(२) कृष्ण विलास
(३) राधारास विलास

उदाहरण :— "आली री जिया पिय बिन धीर धरै ना
वह ब्रज चंद छैल की मूरति
मम मन तें उतरे ना।
लाख उपाय करो न धरो चित

पै क्षण इक बिसरे ना
कोटि मयंक रक कर सुषमा
सुख माही को हरै ना
मृदु मुसकानि दन्त दुति जनु
घन–दामिनि केल करै ना
चचल मीन पीत सरसिज सम
सुन्दर दृग मृदु पैना
देखत ही चुभि जात हिये
बिच नैंकु जुगति निकसै ना
कारे केश कुटिल कंटिया सम
बेधत अस कौ विधै ना
विष्णु कुमारि हाय हरि कब
मिलि है मिटि हैं दुख सैना।"

(९) **गिरिराज कुंवरि रानी** :—इनका जन्म सवत् १९२० मे तथा देहान्त १९८० मे हुआ। यह भरतपुर की राजमाता थी। इन्होने भरतपुर मे साहित्य का प्रचार किया और आयुर्वेद शिक्षा को भी प्रोत्साहन दिया। इनके दो ग्रंथ लिखे हुए हैं।

(१) श्री ब्रजराज विलास संवत् १९६१
(२) पाक प्रकाश (प्रकाशित है)

मारवाड के नियमानुसार विवाह पर गाये जाने वाले अश्लील गीतो के स्थान पर इन्होने सुन्दर भावपूर्ण तथा शिक्षा से भरे गीतो की रचना की। श्री ब्रजराज विलास मे इनके ऐसे ही गीत हैं।

(१०) **प्रताप कुंवरि रानी** :—यह जोधपुर निवासी भाटी ठाकुर गोयन्ददास की पुत्री और जोधपुर महाराजा मानसिंहजी की रानी थी। इन्होंने अनेको ग्रंथ लिखे हैं जिनका सग्रह ईडर महारानी रत्नकुवरिजी ने छपवाया है और यह सग्रह उन्ही के पास है। रानी प्रताप कुवरि की कविता राम-रस से भरी हुई है। यह भगवत् भक्ति की ही कविता करती थी। निम्न सभी ग्रथ इस सग्रह मे पाये जाते हैं।

(१) ज्ञान–सागर

(२) ज्ञान–प्रकाश

(६) प्रताप पच्चीसी

(४) प्रेम-सागर

(५) रामचन्द्र–महिमा

(६) राम–गुण–सागर

(७) रघुवर–स्नेह लीला

(८) राम–प्रेम–सुख–सागर

(९) राम–सुजस–पच्चीसी

(१०) पत्रिका–सवत् १९२३ चैत्र वदी ११ की

(११) रघुनाथ जी के कवित्त

(१२) भजन, पद, हरजस

(१३) प्रताप विनय

(१४) श्री रामचन्द्र विनय

(१५) हरिजस गायन ।

प्रताप कु वरि की कविता से प्रतीत होता है कि अपने पति महाराज मानसिंह की मृत्यु के पश्चात् इनके जीवन मे विषाद की अतुल कालिमा छा गई जिसके कारण इनका मन विक्षिप्त हो गया । मनकी ऐसी परिस्थिति मे मनुष्य को ईश्वर भजन के अतिरिक्त और दूसरी चीज सान्त्वना नही दे सकती । कुछ तो जन्मजात सस्कार, फिर महाराज मानसिंह के दरबार का वातावरण और अपने पतिदेव के विचारो का प्रभाव, सभी ने मिल कर यदि उनके जीवन मे ससार के प्रति उदासीनता उत्पन्न कर दी तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नही ।

लेखिका का ग्र थ ज्ञान-सागर उनके मन की स्थिति पर पडने वाली परिस्थितियो की स्पष्ट अभिव्यक्ति है ।

पतिवियोग दुख भयो अपारा, सूनों लगत सकल ससारा
कछु न सुहाय नयन बहै नीरा पति विन कौन बधावै धीरा
सुनि सुनि कथा पुराण अपारा सब झूठो जान्यो ससारा

एक समै सपनेउ निस आयउ रघुवर दरसन मोहि दिखायउ

मेघ वरन तन स्याम विराजै धनुष बाण प्रभु कर मे छाजै ।

उन्हे भगवान का दरशन हुआ । उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर राम मदिर की प्रतिष्ठा की गई । इसके पश्चात् शिव–मदिर की भी प्रतिष्ठा हुई । यह शिव इनके पतिदेव मानसिंह के इष्ट थे (आदिनाथ के रूप मे) । इस प्रकार राम और शिव दोनो की उपासना द्वारा लेखिका ने अपने मन को शान्त किया परन्तु उनकी कविता सत विचारधारा के प्रभाव से वची हुई भी नही है ।

होरी

होरियां रंग खेलन आवो ।
इला पिंगला सुखमणि नारी, ता संग खेल खिलावो ।
सुरत पिचकारी चलावो ॥१॥
काचो रँग जगत को छांड़ो, सांचो रंग लगावो ॥
बाहर भूल कबू मत भांखो, काया नगर बसावो ॥
तबे निरभै पद पावो ॥२॥
पाँचो उलट घेर घट भीतर, अनहद नाद बजावो ।
सब बकवाद दूर तज दीजे, ज्ञान गीत नित गावो ॥
पिया के मन तब ही भावो ॥३॥
तीनों ताप तीन गुन त्यागो, सांसों सोक नसावो ।
कहे परताप कुंवर हित चित सों, फेर जनम नहीं पावो ।
जोत में जोत मिलावो ॥४॥

(११) **रणछोड़ कुंवरि रानी** :–इनका जन्म सवत् १९४६ मे हुआ । यह रीवा नरेश विश्वनाथसिह के भाई बलभद्रसिह की बेटी थी जो जोधपुर नरेश तखतसिंहजी को ब्याही थी । इनकी कविता का विषय कृष्ण–प्रेम और भक्ति था । इन्होने – भगवत गुणानुवाद के कवित्त और हरजस बनाये हैं ।

उदाहरण (१)

'गोविन्द लाल तुम हमारे, मोहे दुख से उबारे ।
मैं सरन हूं तिहारे तुम काल कष्ट टारे ॥१॥

हो बाघेली के प्यारे, सिरकीट मुकुट वारे।
छोनी छटा को पसारे मोरी सुरत ना विसारे ॥२॥
कोटिन पतित उधारे, कृपा दृष्टि से निहारे।
हौं भरोसै हो तिहारे, मेरी बात को सुधारे ॥३॥

उदाहरण (२) कवित्त

आभा तो निर्मल होय सूरज किरण उगे से।
चित्त तो प्रसन्न होय गोविन्द गुण गाये से।
पीतर तो उज्जल होय रेती के मांजे से।
हृदय में जोति होय गुरू ज्ञान पाए से।
भजन में बिछेप[1] होय दुनिया की संगति से।
आनंद अपार होय गोविन्द के ध्याये से।
मन को जगावो अरु गोविन्द के सरन आओ।
तिरने के ये उपाव गोविन्द मन भाये से ॥१॥

रत्न कुँवारि रानी :—यह जोधपुर के महाराजा प्रतापसिंह (ईडर नरेश) की रानी थी। यह भी भक्ति और प्रेम की कविता लिखती थी तथा पद और हरजस बनाती थी।

उदाहरण (१)

मेरो मन मोह्यो रंगीले राम।
उनकी छबि निरखत ही मेरो, बिसर गयो सब काम ॥
अष्ट पहर मेरे हिरदे बिच, आन कियो निज धाम।
रतन कुंवर कहे उन को पलपल, ध्यान धरूं नितसाम ॥

उदाहरण (२)

सिया वर तेरी सूरत पे हूं वारी रे।
सीस मुकुट की लटक मनोहर मंजु लगत हैं प्यारी रे

---

१. विक्षेप

वा छबि निरखत को मो नैना जोवत वाट तिहारी रे।
रतन कुंवरि कहे मो ढिग आके झलक दिखा धनुधारी रे।

द्वितीय वर्ग मे आने वाली महिलाएँ निम्न लिखित हैं :—

(१) वनीठनीजी :—

यह कृष्णगढ के राजा सावतसिंह उपनाम 'नागरीदासजी' की 'पासवान' थी। इन्हे कृष्ण भक्ति मे अति अनुराग था। अतएव इनके पदो मे लाड और लाडली के प्रेम का वर्णन है। दोनो ही इनके उपास्य है। इन्ही की भक्ति मे वनीठनीजी उपनाम 'रसिकविहारी' की प्रेम-पीडा की अभिव्यक्ति हुई है।

कृष्ण और राधा के जन्म विषयक पदो से लेकर, दोनो की क्रीडा, कुंज-लीला, होली, हिंडोला, पनघट लीला आदि अनेक प्रसगो पर इनके पदो का निर्माण हुआ है। यद्यपि ये पद वडे वडे नही है परन्तु लेखिका की असीम भक्ति-भावना के द्योतक है। उसके हृदय मे अपने उपास्य की जन्म सूचना पर कितना उल्लास है।

नंद जी रें घालों नी घरां।
महा मनोहर पुत्र हुवो लखि लोयण सफल करां॥
वही खयाल सौं भरां भरांवां हँसि हँसि फेरि भरां।
रसिक बिहारी नांव कुंवर जी रो आगम जांणि धरां॥

आनद की यही घनीभूतता राधिका के जन्म पर भी प्रगट होती है।

आज वृषभान कें बधाई।
गह मह भीर भई रावर में गावत अली सुहाई॥
हँसि हँसि गोपी मिलत परस्पर आनंद उर न समाई।
प्रगट भये उन रसिक बिहारी इत प्यारी निधि आई॥

राधा और कृष्ण थोड़ा बडे हुए। साझी की लीला आरभ हुई।

खेलै सांझी सांझ प्यारी।
गोप कुवंरि साथणि लिया साचे चाव सों चतुर सिंगारी।
फूल भरी फिरें फुल लेण ज्यौं भूल रही फुलवारी॥
रह्या ठंगा लखि रूप लालची प्रियतम रसिक बिहारी॥

राधा के इस रूप पर जो मोहित न हो वह शुष्क हृदय नही तो और क्या है। रसिकबिहारीजी के अन्य पदो मे अन्य लीलाओ का भी वर्णन आया है। होली का प्रसग नागरीदास जी को भी प्रिय था। रसिक बिहारी की कल्पना भी इस प्रसग मे बडी सजग है।

फागुणिया रो घुंमडि रह्यो छै ख्याल।
कुंज भूमि सो लाल लाल हुई हुवा लाल तमाल।
उडि गुलाल की लाल धूंधरि मे झलकें नैणा भाल।
सखी लाल अरु लाल बिहारनि रसिक बिहारी लाल।

इस पद मे केवल अनुप्रास की योजना ही नही, हर्ष की अनुपम अभिव्यजना भी है। यह वर्णन केवल लीला वर्णन मात्र नही वरन् भावना का प्रदर्शन और अनुभूति की अभिव्यक्ति भी है।

होली खेलते समय आन्तरिक आनन्द और बाह्य लज्जा का कितना सुन्दर समन्वय इस पद मे प्रस्तुत किया गया है।

भीजें म्यारी चूनरी हो नदलाल।
पति नाखों[1] केसर पिचकारी हा हा मदन गोपाल॥
भीज वसन उघड्यासी अग अंग कौंण निलज यह ख्याल।
रसिक बिहारी छैल निडर थें[2] म्हानी[3] तो जंजाल॥

कृष्ण भक्ति मे अपने उपास्य के अनेक रूपो और लीलाओ का वर्णन भक्तो ने किया है। सयोग के कुछ पदो का उल्लेख इसी दृष्टि से यहा किया गया है। विप्रलभ का भी एक पद देखिये —

मुरली वारो मोहना वहि कहि हे लो कहां पाऊंरी।
घर वन मन लागे नहीं बावरी भई कित जाऊरी॥
शिथिल अंग पग थरहरैं हौं उठि उठि के मुरझाऊरी।
रसिक बिहारी बनवारी विन कैसे जीव जिवाऊरी॥

---

१ डालो
२. तुम
३ मुझे

प्रिय के अभाव की पीडा का वर्णन एक अन्य पद मे इस प्रकार किया गया है।

वहि सौंहना मोहन यार फूल है गुलाव दा।
रंग रंगीला अरु चटकीला गुल होय न कोई जवाव दा
उस बिन भवरे ज्यो भव दाहै यह दिल मुज बेताव दा
कोई मिलावे रसिक बिहारी नू है यह काम सवाब दा॥

रसिक बिहारी जी की भाषा मे व्रजभाषा की शुद्धता के साथ राजस्थानी का भी मिश्रण है। 'छे', 'नैण', 'उघड्यासी' अथवा 'नाखो', 'म्हानी' आदि शब्द एव पद राजस्थानी के है। परन्तु यह खटकते नही। मीरा ने भी अपनी भाषा मे राजस्थानी की प्रधानता रखी अतएव कही कही तो इन शब्दो के प्रयोग से काव्य सौन्दर्य मे वृद्धि ही हुई है।

वास्तव मे बनीठनीजी की कविता उनके हृदय की प्रेरणा है। समव है नागरीदास के व्यक्तित्व का भी उस पर सीधा प्रभाव हो। परन्तु भक्ति परम्परा की कवयित्रियो मे उनका एक निश्चित स्थान है इसमे कोई सदेह नही।

(२) **बीरां** —बीरा जोधपुर की ही थी। इनके विषय मे मु शी देवीप्रसाद जी ने जो कुछ 'महिला मृदुवाणी' मे लिखा है वह इस प्रकार है।

'बीरा नाम की कोई स्त्री हुई है, जिसके बनाये पद जोधपुर के पुस्तकालय के एक सग्रह ग्र थ मे जोधपुर महाराज तखतसिहजी के पदो के साथ लिखे हैं। बीरा का उक्त महाराज से सबध रहा होगा यह बिना निश्चय किये कुछ नही कह सकते। उसके पद भी महाराज के पदो के समान कृष्ण–भक्ति से परिपूर्ण हैं।'

उदाहरण —

बस रही है मेरे प्रान मुरलिया बस रही मेरे प्रान।
या मुरली मे काम न धोप्यो उन व्रजवासी कान॥१॥

मुख की सीर लई सखियन मिल, अमृत पियो जान।
वृन्दावन मे रास रच्यो है, सखियाँ राख्यो मान॥२॥

धुनि सुनि कान भई मतवाली, अंतर लग गयो ध्यान।
बीरां कहे तुम बहुरि बनाओ, नंद के लाल सुजान॥३॥

(३) **तुलछराय** —इनके विषय मे जोधपुर के मु शी देवीप्रसादजी ने जो कुछ लिखा है वह नीचे लिखा जाता है ।

'ये जोधपुर के महाराजा मानसिहजी की परदायत रानी थी और तीजा भटियानी जी की सेवा मे रहा करती थी, तथा उनके सत्सग से यह भी राम और कृष्ण सम्बन्धी भक्ति-रस के भजन तथा पद बनाया करती थी ।'

उदाहरण :—

मेरी सुध लीजो जी रघुनाथ
लाग रही जीय केते दिन की, सुनो मेरे दिल की बात
मोको दासी जान सियावर, राखो चरण के साथ
तुलछराय कर जोर कहे, मेरो निज कर पकड़ो हाथ ।

उपसंहार

पूर्व अध्यायो मे राजस्थान के राजघरानो द्वारा की गई हिन्दी साहित्य सेवा का विवरण दिया गया है। समस्त अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि इन राजघरानो के राज्याधिकारियो अथवा सम्बन्धियो ने विपुल साहित्य सेवा की है। इस सेवा के तीन रूप है। कुछ राजा महाराजा स्वय कवि और लेखक थे, कुछ केवल साहित्यिको के आश्रयदाता और प्रोत्साहक थे और कुछ स्वय लेखक और आश्रयदाता दोनो ही थे। प्रत्येक अध्याय मे इन तीनो प्रकार के साहित्य सेवियो का विवरण आ चुका है अतएव यहा उसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नही।

काव्य के 'मूल्याकन' की दृष्टि से कहा जा सकता है कि अधिकाश राजाओ की कविता साधारण है और प्रचलित ग्राह्य शैली के अनुसार है अतएव उनका मूल्य यही है कि हिन्दी साहित्य का कलेवर ऐसी रचनाओ से आच्छादित होकर दृढता और पुष्टता को प्राप्त हुआ। हिन्दी साहित्य की प्रमुख धारा अनेक धाराओ से आप्लावित होकर अपने को प्रतिष्ठित रख सकी। यह भी कम महत्व की बात नही है। आश्रयदाता के रूप मे जिन महाराजाओ ने कवियो को प्रोत्साहन दिया वे और भी अधिक धन्यवाद के पात्र है। यदि रजवाडो ने ऐसा न किया होता तो हिन्दी साहित्य की वह प्रगति जो आज देखने मे आ रही है कभी न हो पाती और राष्ट्र भाषा के पद पर हिन्दी को आसीन कर जो गौरव प्राप्त हो रहा है वह असभव था। राजस्थान के राजघरानो ने कवियो को आश्रय देकर उनके व्यक्तिगत जीवन को हरा भरा किया, भाषा के विकास को प्रोत्साहन दिया और साहित्य भडार की रक्षा की। सस्कृति के विकसित रूप मे देशी भाषाओ का यह प्रयोग और विस्तार हमारी सस्कृति और जन जागृति को सजीव रखने मे समर्थ हुआ है अन्यथा सघर्ष के उन युगो मे जब उत्तरीय भारत को सभी ओर से भय था, विचारो और भावो की शाति एव जीवन दर्शन का स्थायित्व कैसे सभव हो सकता था। आश्चर्य की बात यह है कि ये राजा लोग युद्ध सलग्न भी रहते थे और साहित्य सृजन मे भी सहायक थे विशेषतया उस युग मे जब समस्त जनता समवेत होकर युद्ध नही करती थी वरन् उनकी रक्षा का भार केवल एक जाति विशेष पर ही रहता था। वही जैसे रक्षा की बपौती की गाठ बाधकर इस ससार मे आये थे।

एक अन्य बात यह भी दृष्टव्य है कि प्राय सभी राजपूत जातिया अन्य भूभागो से आकर राजस्थान मे बसी थी। अतएव उनकी मातृभाषा यहा के भूभागो की भाषा से भिन्न थी। परन्तु कालान्तर मे सभी ने अपने को स्थानीय रग मे ऐसा सराबोर कर लिया था जिससे वे इसी भूभाग के निवासी बन गये थे। उनकी स्थिति उन मुसलमानो अथवा अग्रेजो से भिन्न थी जो केवल राज्य करना चाहते थे और यहाँ की जनता मे घुल मिलकर एक होने से अपने को दूर -दूर रखते थे क्योकि उनके मन मे अपनी उच्चता का झूठा गर्व था। कुछ भी हो इस दृष्टि से राजपूत जातियो की विशाल हृदयता और दूरदर्शिता सराहनीय है।

राजघरानो के साहित्य का अध्ययन बताता है कि उनके द्वारा साहित्य के विभिन्न अगो और शैलियो की परिपुष्टि हुई। यह काव्य अधिकाशत मुक्तक काव्य है। साधारण मुक्तक काव्य की चर्चा यदि न भी की जाय तो कम से कम महाराणा सज्जनसिंह 'उदयपुर', महाराजा मानसिंह 'जोधपुर', महाराज सावतसिंह उपनाम 'नागरीदास 'किशनगढ' एव महाराज प्रतापसिंह उपनाम 'ब्रजनिधि' 'जयपुर' के व्यक्तित्व को भुलाया नही जा सकता। ये सभी श्रीमान अपने–अपने युग एव अपने अपने क्षेत्र मे शिरोमणि है। हिन्दी के किसी भी उच्चतम कोटि के कवि से उनकी तुलना की जा सकती है। यद्यपि इनका विषय भक्ति है और प्रत्येक की भक्ति भावना उनकी अपनी कुल भावना पर स्थित है परन्तु निस्सकोच यह कहा जा सकता है कि भक्ति की जिस तन्मयता और सत्यता ने कबीर, सूर, तुलसी, मीरा तथा अन्य अष्ट छाप कवियो आदि को जनता के आदर का पात्र बनाया इष्ट के प्रति उसी दृढता और कर्तव्यनिष्ठा ने महाराज नागरीदास एव ब्रजनिधि को भक्तो की श्रेणी मे स्थान दिलाया है। महाराज मानसिंह यद्यपि वैष्णव भक्त न थे परन्तु जिस नाथ सम्प्रदाय मे उनकी आस्था थी उसके अनुकूल उनकी शिव भक्ति भी किसी प्रकार निम्न कोटि की नही थी। गुरु महिमा, इष्ट महात्मय और आचार विचार एव तदानुकूल जीवन दर्शन का जो समन्वय उनकी कविता मे प्राप्य है, वह उनकी भक्ति विभोरता का सूचक एव उनकी इष्टपरायणता का ज्वलन्त प्रमाण है।

इसी प्रसग मे एक रोचक प्रश्न उपस्थित होता है और वह यह है कि राजपूत जाति मूलत शक्ति की उपासक है। ऐसी अवस्था मे वैष्णव पूजा का प्रचलन इनमे कैसे हुआ ? राजा महाराजाओ की विचारधारा की पृष्ठभूमि के दृष्टिकोण से भी यह प्रश्न महत्वपूर्ण है।

इसमे सदेह नही कि भारत निवासी सभी जातिया शक्ति की उपासिका थी। यह शक्ति युग–युग मे भिन्न रूप धारण करती रही। कभी इस शक्ति ने

'पृथ्वी' के रूप में, कभी प्रकृति के तत्वो के रूप मे, कभी सूर्य के रूप मे और कभी शिव एव दुर्गा के रूप मे अपनी उपासना का आकर्षण बनाये रखा। सूर्य की सक्रान्तियो के समय नाटकोत्सवो की जो प्रथा भारत मे चली आ रही है वह भी इसी की द्योतक है। बगाल मे प्रसिद्ध 'यात्रा' और जगन्नाथ यात्रा आदि उत्सवो का सम्बन्ध सूर्य शक्ति से सम्बन्धित है। हिन्दुओ के सभी पर्वो मे सूर्य की विभिन्न बारह यात्राओ का उल्लेख असदिग्ध है। स्वय 'यात्रा' शब्द ही सूर्य यात्रा का सक्षिप्त रूपान्तर प्रतीत होता है। सूर्य की यही उपासना शिव और फिर गणेश के रूप मे प्रचलित हुई। दक्षिण भारत मे गणेशोत्सव इसी का अवशिष्ट चिन्ह है। तान्त्रिक विचार धारा के विकास के साथ भैरवी और दुर्गा की उपासना का प्रचार हुआ। राजपूत जातियो मे दुर्गा के विभिन्न रूप कुलदेवी के रूप मे प्रचलित हैं। कही चामुन्डा, कही सरला, कही दुर्गा व्यक्तिगत कुलो की भक्ति भावना के प्रतीक है।

शैव दर्शन और तान्त्रिक दर्शनो के प्रचार के कुछ काल पश्चात् ही वैष्णव दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ। जिस प्रकार शिव, शैव दर्शन के परम तत्व है जिससे सृष्टि की उत्पति हुई और जिसमे वह लीन हो जायगी उसी प्रकार वैष्णव दर्शन मे विष्णु समस्त प्रकृति के पालक हैं। ब्रह्म और शिव का विष्णु के साथ सम्बन्ध स्थापित कर जो समन्वय कर दिया गया है वह केवल शक्ति के तीन विभिन्न रूपो सृजक, पालक, नाशक का ही समन्वय है। अतएव भारत के निवासियो को, जिन्हे समय–समय पर अनेक सस्कृतियो का सम्पर्क करना पडा और जिनमे अनेक सस्कृतियाँ आत्मसात हो गई, विशाल हृदय होना स्वाभाविक है। उनमे आत्मसात करने की प्रवृति भी सहज है। अतएव वैष्णव विचार धारा के प्रभाव से बचा रहना उनके लिए सभव न रहा। और पश्चिम उत्तर भारत मे यह वैष्णव विचारधारा विशेष रूप से इसलिए अधिक फैली कि उसका विरोध मुसलमानो की कट्टरता ने वैष्णव मूर्तियो और मदिरो का विनाश कर के किया। अतएव उनके आक्रमण से प्रत्येक वस्तु को बचाने की प्रतिक्रिया राजपूत राजाओ मे स्वाभाविक ही थी। इसी कारण मेवाड का राजघराना जहा अपने को शिव रूप एकलिंग जी का उपासक मानता है वहा वह वैष्णवी 'श्रीनाथजी' की रक्षा का भी दावेदार है। हिन्दू मुस्लिम सघर्ष के युग मे 'श्रीनाथजी' की प्रतिमा की सुरक्षा केवल ऐसी ही जगह हो सकती थी और इसी कारण यह नाथद्वारा मे स्थापित हुई। आगे चलकर वैष्णवी विचार धारा का प्रभाव जनता और राजघरानो पर पडना स्वाभाविक था। दूसरा कारण व्यक्तिगत है। यद्यपि कुलदेवी के रूप मे शक्ति की उपासना राजस्थान के सभी राजपूत घरानो मे प्रचलित है परन्तु कुछ महाराजो के व्यक्तिगत इष्टदेव भिन्न थे। महाराज मानसिंह का 'नाथो' के प्रति आकर्षण इसीलिए स्वाभाविक

था कि नाथ सम्प्रदायी श्री देवनाथ की भविष्य वाणी ही उनके लिए राज दिलाने वाली प्रमाणित हुई। अतएव उनकी आस्था 'नाथजी' पर होनी ही चाहिए थी। कृष्णगढ का राजघराना जोधपुर से सीधा सम्बन्धित होते हुए भी 'कल्याणराय' का उपासक था। यह भी व्यक्तिगत प्रभाव का परिणाम है। अतएव प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है कि शक्ति के उपासको पर व्यक्तिगत एव समाजगत प्रभाव ही वैष्णवी और शक्ति सम्पन्न विचारधारा के साथ-साथ पाये जाने के लिए उत्तरदायी है।

भक्ति भावना के सतत उद्रेक का परिणाम राजघरानो का मुक्तक काव्य है। दूसरे प्रकार का काव्य प्रवन्ध काव्य है। परन्तु यह न होने के ही समान है। रचनाओ मे महाराज मानसिह प्रधान है। उन्होने 'नाथ चरित्र' की रचना की है। श्री जलन्धरनाथजी साम्प्रदायिक ही नही ऐतिहासिक व्यक्ति भी थे। ऐतिहासिक व्यक्तियो के नाम से सम्बन्धित काव्यो को 'रित', 'विलास', 'विजय', अथवा 'रासो या रासक' आदि नाम प्राचीन सस्कृत, प्राकृत और अपभ्र श परम्परा से मिलते चले आये है। वाणभट्ट का 'हर्ष चरित' एव विल्हण का 'विक्रमाकदेव चरित' (सस्कृत का) हेमचन्द्र का 'कुमार पाल चरित' (प्राकृत का) और आचार्य पुष्पदत्त का 'णयकुमार चरिउ' अपभ्र श की प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य रचनाये है। चन्द का 'पृथ्वीराज रासो' भी इसी प्रकार की रचना है।

इन रचनाओ की एक विशेषता है। इनका नाम ऐतिहासिक है परन्तु शैली काव्य प्रसूत है क्योकि लेखक का ध्यान विवरण सग्रह की ओर कम है, काव्य निर्माण की ओर अधिक है। वह तथ्य निरूपण को इतना महत्व नही देता जितना कल्पना प्रसार को, उसका मन जितना सभावनाओ की ओर अधिक जाकर रमता है उतना वास्तविक घटनाओ मे कम पैठता है। लेखक आनन्द अथवा रस को प्रधानता देता है तथ्य को नही। परिणाम यह हुआ कि तत्व की बात कल्पना से दव गई है। ऐतिहासिक घटनाये कल्पना की उडान का उपादान वन गई है और अपने अस्तित्व के सत्य को खो बैठी है। उनमे नायक के शौर्य, प्रेम, विलास और नृत्य गान आदि के विस्तार अधिक मिलते है और जीवन घटनाओ का वृतान्त नही के तुल्य है। अत यह रचनाये इतिहास न होकर काव्य वन गई हैं। पृथ्वीराज रासो के विषय मे समय-समय पर जो विवाद चले हैं वे सभी हमारे कथन के प्रमाण हैं। पृथ्वीराज कि विजय प्राप्ति पर डा वूलर ने चद के 'पृथ्वीराज रासो' का प्रकाशन इसीलिए वन्द कर दिया था कि सस्कृत का ग्र थ उन्हे हिन्दी 'रासो' की अपेक्षा अधिक सत्य दिखाई दिया। कल्पना-बाहुल्य ऐतिहासिक काव्य ही महाराज मानसिह के पूर्व और उनके युग मे लिखे गये। उनका 'नाथ चरित' भी गुरु की जीवनी न

बन कर उनकी प्रशस्ति बन गया। काव्योचित वर्णन इतने अधिक प्रवेश कर गये कि इतिहास का सारा मूल्य ही नष्ट हो गया और वह एक कल्पित गाथा जैसी रचना बन गई। इतिहास का लक्ष्य युग के पर्दे पर प्रतिफलित होने वाले दृश्यो का उद्घाटन करना होता है, काल प्रवाह मे स्वय प्रकाशित होने वाली परिस्थितियो मे मनुष्य की विजय यात्रा का चित्र अकन करना होता है और होता है मनुष्य के विकास की जीवन्त कथा का उन्मेष करना। परन्तु हमारे भारतीय कवियो ने औचित्य अनौचित्य का ध्यान न रखते हुए सभी को काव्य ही बना डाला है। मानसिंह की परम्परा यही परम्परा है और उन्हे प्रवन्ध काव्य की कुशलता के प्रमाण पत्र के साथ उस परम्परा की रक्षा का श्रेय भी अनायास मिल जाता है।

काव्य का तीसरा रूप जसवतसिंह का 'भाषा भूषण' है। काव्य शास्त्र के अन्तर्गत उसकी ऐतिहासिक महत्ता का विवेचन यथास्थान हो चुका है। हिन्दी का काव्य शास्त्र जिस ओर जा रहा था उसके प्रदर्शन मे इस ग्रन्थ का विशेष स्थान है।

सक्षेप मे भक्ति, जीवनी और काव्य शास्त्र तीनो प्रसगों पर राजस्थान के राजघरानो ने उच्च कोटि की कविता की और अपने समय तक की परम्पराओ को जीवित रखा है।

भाषा और शैली मे भी ये राजघराने किसी से कम नही उतरते। मुक्तक काव्य की शैली मे कवित्त, सवैये और दोहे की प्रधानता रहती आई है। प्राकृत मे गाथा के साथ दोहा छद विशेष लोकप्रिय था। अपभ्र श काल मे कवित्त, सवैये, षटपदी एव अन्य छदो का समावेश काव्य मे हो गया। हिन्दी मे आते आते गेय पदो ने अपना स्थान जमा लिया। राजस्थान के राजघरानों का साहित्य इन शैलियो का सजीव चित्र है। प्राय. सभी लेखको ने इन छदों को अपनाया है और सफलता प्राप्त की है। सत्य भी है अलकारो का जो स्वाभाविक समावेश इन छदो मे सभव है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मानसिंह की सफलता और काव्य कुशलता मे चार चाद लग जाते हैं जब देखते है कि प्रबन्ध काव्य मे भी "चौपाई" छद का आश्रय न लेकर उन्होंने अन्य छदो को अधिक अपनाया है और इसमे पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

इन राजघरानो की एक और बडी देन है कि अपभ्र श और प्राकृत मे प्रयुक्त होने वाले छदो का इन्होने ब्रजभाषा मे सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। मानसिंह के काव्य मे यह लक्षण विशेष रूपेण दृष्टव्य है। अतएव इस क्षेत्र मे भी उनकी मौलिकता की सराहना करनी पडती है। शैली और छद योजना सभी पर जैसे उनका जन्म सिद्ध अधिकार है।

भाषा अनेक रूपों मे उपलब्ध है। शुद्ध ब्रजभाषा प्राय. सभी ने लिखी है परन्तु जो प्रवाह नागरीदास, व्रजनिधि, मार्नासह और जसवर्तासह की रचनाओ मे है वह वहुतो मे नही पाया जाता। राजस्थानी जिनकी मातृभाषा हो और उसमे भी जहा इतने अधिक रूपान्तर हो, मारवाडी, मेवाडी, ढूँढाणी एव हाडौती आदि—फिर वहा ब्रजभाषा पर इतना अधिकार आश्चर्य ही कहा जा सकता है और इन महाराजाओ की ग्राह्य बुद्धि एव प्रत्युत्पन्न मति का द्योतक भी।

स्थानीय राजस्थानी का रग भी यथा तथा सभी की रचनाओ मे मौजूद है। ढूंढाणी मे ब्रजनिधि की कविता विशेष सुन्दर और प्रभावशाली है। मारवाडी का प्रवाह मार्नासह की कविता मे पर्याप्त है। मीरा की भाषा मे गुजरातीपन की झलक है। कुछ तो सभव है लिखित रचनाओ के अभाव और मौखिक परम्परा के प्रचार के कारण मूल भाषा रूप स्थानीय रग से प्रभावित हो गया हो और कुछ यह भी सभव है कि विचारो को लोकप्रिय वनाने के लिये इन व्यक्तियो ने कई भाषाओ को अपनाना ही उचित समझा हो। चाहे जो हो, किन्तु कई भाषाओ पर इनका अधिकार था और उसका निर्वाह वडे उत्कृष्ट रूप मे सभी राजाओ ने किया है।

एक नई चीज राजाओ की 'रेखता' शैली है। नागरीदास, अरिसिंह और ब्रजनिधि ने इस शैली मे वडी दक्षता प्रकट की हैं। वहुभाषी भारत जैसे देश मे एक ऐसी भाषा का निर्माण जिसमे सभी भूभागो के शब्दो का समावेश होने से परस्पर के आदान-प्रदान मे सुगमता हो, स्वाभाविक है। मुगलो के राज्य-काल मे ऐसी भाषा की आवश्यकता रूप मे 'उर्दू' का जन्म हुआ। 'रेखता' इसी का दूसरा नाम है। यह हिन्दी की एक शैली थी जिसमे फारसी, अरवी, तुर्की, पजावी, आदि सभी भाषाओ के शब्दो का समावेश था। अभारतीय भाषाओ के शब्दो की प्रचुरता वाली इस भाषा का प्रयोग अधिकाश मे प्रेम भावो की व्यजना मे ही हुआ है। 'इश्क—चमन' रसिक-चमन और 'रेखता सग्रह' इसके प्रमाण है। मुसलमानी सस्कृति की शोखी और एकातिक प्रेम का आशिकाना रग, जो फारसी कविता और तत्कालीन समाज का प्रधान अग था, रेखते की कविता मे भी खूव उतरा है। 'इश्क मजाजी' और 'इश्क हकीकी' को लेकर जो सूफी सम्प्रदाय विकसित हुआ उसकी विचारधारा वाला प्रेम, उपरोक्त रचनाओ मे प्रवेश पा गया है। वास्तव मे इन रचनाओ की विचार धारा हिन्दू विचारधारा से अधिक मेल नही खाती। इस्लाम की प्रेम भावना का आदर हिन्दुओ ने अवश्य किया और अपनी विचार धारा मे उसे आत्मसात करने का प्रयत्न किया। रेखता शैली इसी समन्वय का परिणाम है।

संक्षेप में राजस्थान के राजघराने काव्य के रूपों, उपादानों, शैलियों, छन्दों और अलंकारों आदि की मौलिक सृष्टि एवं सुरक्षा में सदैव दत्तचित्त रहे और उन्होंने यह दिखा दिया कि जो हाथ तलवार उठा सकते हैं, पुस्तक का भार ग्रहण कर सकते हैं और जो मस्तिष्क युद्ध विग्रह में लग्न हो सकता है अथवा नीतियां ऊह का शिकार बन सकता है वह जीवन दर्शन की भी सृष्टि करने में संलग्न हो सकता है।

विरोधी परिस्थितियों में इतना काव्य-बाहुल्य और वह भी अधिकांश सौ टंच के सोने के समान सात्विक और शुद्ध-देखकर एक बार स्वतः ही मुख से निकल पड़ता है धन्य है राजस्थान जिसकी वीर प्रसविनी भूमि ने दैदीप्यमान रविरश्मियाँ, कवि और लेखक उत्पन्न किये।

परिशिष्ट : १ :

राजघरानों के आश्रित कवियों की सूची

उदयपुर :

	कवि	रचना
(१)	अजितदेव	
(२)	करणीदान कवि	
(३)	किशनजी आढा	'भीम विलास'
(४)	किशनसिंह बारहठ	
(५)	दलपतिराय	'अलकार रत्नाकर'
(६)	धन्वन्तरी	'अमर विनोद'
(७)	नाथ द्वारा	'उद्धार घोरणी'
		'कलानिधि'
		'द्वार दीपिका'
(८)	नरहरिदास	
(९)	नारायण देव	
(१०)	फतह करण उज्जवल	
(११)	भारतेन्दु हरिश्चन्द	
(१२)	प० मगल	'अमर नृप काव्य रत्न'
(१३)	मुरारिदान	
(१४)	रामदान चारण	'भीम प्रकाश'
(१५)	लाल भट्ट	'सस्कृत काव्य की रचना'
(१६)	विश्वनाथ	'जगतप्रकाश'
(१७)	वैंकुठ व्यास	'राज्याभिषेक विषयक कविता'
(१८)	विनायक शास्त्री	
(१९)	वंशीधर	'अलकार रत्नाकर'
(२०)	सुब्रह्मराय शास्त्री	
(२१)	स्वामी गणेशपुरी	
(२२)	श्यामल दास कविरत्न	

(२४) मूलचन्द यति : 'मानसागरी महिमा'
(२५) मनोहरदास : 'जस आभूषण चन्द्रिका'। फूल चरित्र।
(२६) मीरहैदर अली : 'जलधर स्तुति'
(२७) मुहणोत नैणसी : 'ख्यात'
(२८) तारा चन्द . 'नाथानंद प्रकाशिका'
(२९) दौलत राम : 'जलधरगुण रूपक
(३०) दलपतिमिश्र : 'जसवन्त उद्योत'
(३१) नवीन कवि : 'आडाकिशना, खेतसी लालस, नेहनिधान'
(३२) नरहरिदास : 'अवतार चरित्र'
(३३) रसपुंज : 'कवित्त श्री माता जीरा'
(३४) रस चन्द
(३५) राम करण : 'अलकार समुच्चय'
(३६) वीर भाण : 'राजरूपक'
(३७) सूरतमिश्र . 'रसग्राहक चन्दिका' अलकार माला
'अमर चन्द्रिका रसिक प्रिया टीका
'सरस रस'
'नाथ आरती'
(३८) सुकाल नाथ
(३९) सेनीदान
(४०) पीरचन्द : 'नाथ स्तुति'
(४१) श्याम राम : 'ब्रह्माण्ड वर्णन'
(४२) सेवक
(४३) साँवतसिह
(४४) शिव नाथ : 'जलधर जस वर्णन'
(४५) हविंश भट्ट : 'भीम प्रबध
(४६) हेम कवि 'गुण भाषा चित्र'

बीकानेर :

(१) अम्मक भट्ट : 'शुभ मंजरी'
(२) अनन्त भट्ठ
(३) गोपीनाथ चारण गाडण
(४) गगानद पडित . 'कर्ण भूषण', 'काव्य डाकिनी'
(५) जनार्दन
(६) पन्तुजी भट्ट

(७) फतह राम सिंढायच
(८) भावभट्ट — 'सगीत अनूपाकुश, अनूप सगीत विलास'
'अनूपसगीत रत्नाकर, 'सगीत विनोद'
'नष्ठोहिष्ट प्रबोधक द्रोपद टीका'
(९) मणिराम — 'अनूप व्यवहार सागर'
(१०) मुग्दल कवि — 'कर्ण सतोष'
(११) दामोदर
(१२) नीलकठ
(१३) यशोधर : 'वृत्त सारावली'
(१४) रघुनाथ गोस्वामी : 'सगीत अनूपोदेश्य'
(१५) राम भट्ट : 'अनूप मेघमाला'
(१६) विभूतिदान रोहडिया चारण
(१७) वीर भाण चारण गाडण — 'राजकुमार अनोपसिंह री वेल'
(१८) विद्यानाथ सूरि : 'ज्योत्यतवासना'
(१९) वीरसिंह ज्योतिषराट : 'अनूप महोदधि'
(२०) सूजा बीठू : 'जैतसी रो छन्द'
(२१) शिव पडित : 'श्री लक्ष्मी नारायण स्तुति'
'दसकुमार प्रबन्ध'
(२२) सरस्वति भट्टाचार्य
(२३) सतीदास व्यास : 'रसिक आराम'
(२४) शाव भट्ट
(२५) भट्ट होसिग : 'कर्णावतन्स, 'अमृत मजरी'
(२६) त्रिम्बक
(२७) ज्ञान विमल : 'शब्द भेद की टीका'

किशनगढ़ —

(१) हरिचरण दास : 'केशव कृत रसिक प्रिया की टीका'
„ „ कवि प्रिया „ „
'बिहारी सतसई की टीका'
'जसवतसिंह कृत भाषा भूषण की टीका'
'सभाप्रकाश, कवि वल्लभ'
(२) किशोर दास भाट : 'राज प्रकाश'
(३) हीरा लाल — 'सरदार सुयश'

(४) कनी राम
(५) रघुनाथ सिंह

जैपूर —

(१) अमृत राय 'अमृत प्रकाश'
(२) कुलपति मिश्र 'सग्राम सार'
'दुर्गाभक्ति चन्द्रिका'
(३) गणपति भारती
(४) चतुर शिरोमणि
(५) जगदीश 'जगत रस रजन'
(६) पद्माकर
(७) बखतेश 'पदसग्रह'
(८) विहारी लाल 'सतसई'
(९) मथुरा जी 'राधा गोविन्द सगीत सार'
(१०) रस राज जी
(११) रस पु ज जी गुसाई
(१२) श्रीकृष्ण 'तिमिर दीप'
(१३) शभु राम
(१४) चैन राम 'रस समुद्र, अद्भुत रामायण'
'भाषा भारत सार', भारत सार चद्रिका'
'जानकी सहस्त्र नाम'

बूंदी —

(१) अमर कृष्ण जी चौबे
(२) कृष्ण लाल गोस्वामी
(३) कमल नयन उपनाम 'रसंसिधु'
'बू दी राजघराने का वर्णन'
'रामसिह मुखारविंद अरविंद
(नायिकाभेद)
(४) गुलाबसिंह
(५) जगन्नाथ चौबे
(६) फतहराम चौबे
(७) बालकृष्ण चौबे 'विहारी के वशज'
(८) बद्री प्रसाद वैश्य 'शृंगार रस माधुरी'

(९) भोज मिश्र : 'मिश्र शृ गार'
'रस तरग'
(१०) रामनाथ
(११) लोकनाथ चौबे
(१२) श्री कृष्ण भट्ट : 'शृ गार रसमजरी', 'अलकार कलानिधि'
(१३) हीरालाल मिश्र चौबे
(१४) झारसी राय चौबे
(१५) निश्चल दास : 'विचार सागर, वृत्त प्रभाकर'

जैसलमेर :—

(१) कवि कल्याण
(२) तैलगभट्ट
(३) श्री नाथ षटशास्त्री
: 'मुक्तक काव्य'

अलवर :—

(१) इन्द्र मल
(२) उमादत्त
(३) उम्मेदराय
(४) पूरणमल ब्रह्मराय
(५) भट्ट मुर लाधर
(६) भट्ट श्रीकृष्ण
(७) राम गोपाल
(८) दामोदर : 'कृष्ण केलि'

भरतपुर .—

(१) सोमनाथ 'रसपीयूष निधि, प्रहलाद चरित्र'
(२) सूदन कवि · 'सुजान चरित्र'
(३) चतुर्भुज दास मिश्र · 'अलकार आभा'
(४) रसानद 'सग्राम रत्नाकर

करौली .—

(१) खुमानसिंह
(२) जीवनसिंह

(३) देवीदास	:	'प्रेम रत्नाकर' 'दामोदर लीला' 'राम नीति'
(४) नल्लसिंह		
(५) नैन सुख	:	'माणिक पाल वारखडी'
(६) जद्दू राम भाट		

परिशिष्ट : २ :

रेखता और हिन्दी कविता

हिन्दी मे 'रेखता' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कबीर की कविता के साथ मे हुआ है। कबीर के 'रेखते' प्रसिद्ध हैं[1]। डा० की (Keay) ने कबीर का समय सन् १४४०-१५१८ ई० माना है[2]। अतएव इसी काल मे 'रेखता' का प्रयोग होना भी समझना चाहिये। परन्तु यह विवादास्पद विषय है कि किन रचनाओ को कबीर की रचनाए माना जाय। वैसे देखा जाय तो कबीर 'रेखते' लिख सकते थे। कबीर की रचना मे जिस भाषा और शैली का प्रयोग हुआ है उसका पूर्व रूप अमीर खुसरो [मृत्यु सन् १३१५ ई०] की कविता मे प्राप्य है। अतएव कबीर के समय तक 'रेखता' लिखा जाना कोई असमव बात नही है।

कबीर के पश्चात् 'रेखतो' का सम्बन्ध हिन्दी कविता मे नागरीदास [सन् १७००–१७६४ ई०] तथा 'ब्रजनिधि' [सन् १७६४-१८०३ ई०] की रचनाओ मे मिलता है। नागरीदास जी कृष्णगढ के महाराजा और परम वैष्णव थे। 'ब्रजनिधि का वास्तविक नाम प्रतापसिंह था और यह जयपुर राज के महाराजा और वहा की गद्दी के अधिकारी थे। इन्होने छोटी वडी कई पुस्तके लिखी जिनका सग्रह 'ब्रजनिधि ग्रथावली' के नाम से काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा निकल चुका है।

भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखको ने अनेक 'रेखते' लिखे है, जिससे स्पष्ट है कि हिंदी कविता मे 'रेखता' शब्द पर्याप्त मात्रा मे रूढी हो चुका था और उसका पृथक अस्तित्व भी था।

उर्दू मे इस शब्द का प्रयोग प्रसिद्ध कवि 'सौदा' [सन् १७१२-१७८१ ई० की इस पक्ति मे मिलता है।

"शेर बेमानी से तो बेहतर है कहना रेखता"

---

१. इनका एक सँस्करण वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से निकला है।

2. **Kabir and his followers–Dr. F. E. Keay, P. 27–28.**

कवि मीर—(सन् १७९३-१८१० ई०) भी इसका प्रयोग करते हुए कहते हैं

'सुखनगो[1] नहीं हम योहीं कुछ रेखता गोई[2] के।
माशूक़ था जो अपना, वाशिन्दा दकन का[3] था।

स्पष्ट है कि इस शेर मे मीर का सकेत उर्दू के आदि कवि 'वली' (सन् १६६८–१७४४ ई०) की ओर है जिसे उर्दू साहित्य मे 'बाबा–ए–रेखता' (रेखता के पिता) कह कर पुकारा जाता है।

प्रसिद्ध कवि 'गालिब' ने भी (सन् १७९६–१८६९ ई०) एक शेर मे अपने पूर्वज 'मीर' को इसी प्रसग मे याद किया है।

'रेखते के तुम्हीं उस्ताद[4] नहीं हो 'ग़ालिब'।
कहते हैं अगले ज़माने मे कोई 'मीर' भी था॥'

इन उद्धरणो से प्रगट होता है कि उर्दू साहित्य मे 'रेखता' का सम्बन्ध लगभग उसी समय से है जबकि उसका श्रीगणेश हुआ। अतएव सन् १७०० के आस–पास इस शब्द का व्यवहार सुगमता से स्वीकार किया जा सकता है। यदि कबीर के रेखतो को सदिग्ध भी समझ लिया जाय तो भी रेखते का प्रचलन सन् १७०० मे अवश्य हो गया था।

'मीर' और 'गालिब' दोनो उर्दू साहित्य के मान्य कवियो मे गिने जाते हैं। सरलता और भाव प्रवणता मे 'गालिब' अतुलनीय हैं। इन दोनो के कथन से, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, प्रतीत होता है कि रेखता शब्द का प्रयोग 'उर्दू' के पर्यायवाची के रूप मे ही किया गया है और इस प्रकार उसका अभिप्राय 'भाषा विशेष' से है, परन्तु 'सौदा' की पक्ति मे एक व्यग्य स्पष्ट है। ये शेर और 'रेखता' को पृथक मानते है। 'शेर' 'गजल' नामक एक छन्द का अश होता है। उर्दू का अधिकतर और सर्वोत्तम साहित्य इसी छन्द मे लिखा गया है। अतएव 'सौदा' का यह व्यग्य या तो छन्द की दृष्टि से है अथवा भाषा की दृष्टि से! यदि उनका दृष्टिकोण छन्द सम्बन्धी है तब तो 'रेखता' एक प्रकार का छन्द होना चाहिये अन्यथा 'रेखता' एक प्रकार की भाषा होती है। वह शेर की

---

१. कविता करने वाले।
२. रेखता कहने वाला।
३. दक्षिण प्रदेश का रहने वाला।
४. कुशल लेखक।

भाषा से भिन्न तथा गिरी हुई होनी चाहिए क्योकि 'रेखता' की अपेक्षा 'शेर' की उत्कृष्टता 'सौदा' की पक्ति मे निर्विवाद है। अतएव अब विचारणीय यह है कि 'रेखता' कोई छन्द विशेष है अथवा भाषा विशेष, जिसे उर्दू कहा जाता है।

उर्दू साहित्य पर फारसी का बडा प्रभाव पड़ा है। उसकी शब्द योजना और भाव-धारा तथा विषय सामग्री बहुत कुछ फारसी और अरबी से ही अनुप्राणित रही। अतएव छन्द विशेष के अर्थ मे 'रेखता' शब्द का गठ-बधन फारसी या अरबी के 'इल्यपुल बदाई' (Rhetorics) से अवश्य होना चाहिए। फारसी मे ११ प्रकार के छन्दो का वर्णन है-गजल, कसीदा, तखीब, कता, रुबाई, फर्द, मसनवी, तरजीबा, तरकीब-बन्द, मुस्ताजाद, मुसम्मद। इस नामावली मे 'रेखता' नाम का कोई छन्द नही है और न उर्दू साहित्य के छन्द शास्त्र मे ही उसका कोई उल्लेख है। अतएव 'रेखता' छन्द विशेष नही है।

रह गई 'रेखता' के अर्थ भाषा विशेष होने की वात। उर्दू के आदि कवि 'वली' की उपाधि 'बाबा-ए-रेखता' वैसे तो स्वय 'उर्दू' 'रेखता' को पर्यायवाची शब्द सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है परन्तु 'सौदा' का व्यग्य, उस दिशा मे, अनुत्तरित ही रह जाता है कि 'सौदा' 'फारसी गर्भित' उर्दू को ही उर्दू मानने के पक्षपाती थे और उनके समय मे उर्दू के दोनो रूपो-फारसी गर्भित उर्दू और हिन्दी मिश्रित उर्दू या रेखता-का चलन था। साहित्य की भाषा का कोई स्थिर रूप नही बन पाया था। इसकी पुष्टि स्वय 'वली' की रचनाओ से हो जाती है जिनमे सरल और क्लिष्ट दोनो प्रकार की भाषा की भरमार है। 'सौदा' तथा 'वली' के जीवन काल तथा कविता काल मे बहुत बडा अन्तर नही है। 'सौदा' की ७० साल की आयु के (३१ वर्ष) 'वली' के सामने ही व्यतीत हो गए। किसी भी भाषा के पनपने और साहित्यिक भाषा का रूप लेने मे ५० वर्ष का समय अधिक नही होता। फिर ऐसे परिवर्तन काल मे जन समाज मे न जाने कितनी विभिन्न विचारधाराओ का प्रवाह बना रहता है। ऐसे विषय मे रूढी वादी और प्रगतिवादी दोनो ही एक दूसरे से आकाश पाताल के अन्तर पर दिखाई देते है। यदि ऐसी' अवस्था मे 'सौदा' ने भी फारसी गर्भित उर्दू की, जो 'शेर' की भाषा थी, सराहना की हो और 'रेखता' को भ्रष्ट कहा हो तो इसमे कोई आश्चर्य नही। हमारे साहित्य मे 'अपभ्र श' शब्द इसका साक्षात् प्रमाण है। उसका उद्‌गम भी तो उन्ही लोगो से है जिनको देव भाषा सस्कृत के समकक्ष तत्कालीन प्रचलित बोली 'भ्रष्ट' ही दिखाई दी। यदि व्युत्पत्ति की दृष्टि से देखे तो 'रेखता' शब्द मे भी यह व्यग्य और रूढिवादिता स्पष्ट दिखाई देती है।

'रेखता' शब्द फारसी की क्रिया 'रेखतन' का रूपान्तर है। 'रेखतन' का अर्थ 'डालना, गिरना' आदि होता है। अतएव जो 'पडी हुई है' जो 'गिरी हुई है' उस भाषा के लिए शुद्धवादियो द्वारा इस शब्द का प्रयोग स्वाभाविक है। परन्तु आगे चलकर जिस प्रकार 'अपभ्रंश' भाषा भी अपना नाम स्थिर करने लगी थी उसी प्रकार 'रेखता' भाषा का स्थायित्व भी 'मीर' और 'गालिब' ने स्वीकार किया। केवल इतना ही नही इसी 'रेखता' के एक रूपान्तर 'रेखती' मे विशेष कोमलता और माधुर्य है इसीलिए सम्भवत उसे 'बेगमाती बोली' कह कर विद्वानो ने साहित्य की भाषा नही बनाया।

'रेखता' शब्द के सम्बन्ध मे एक और मत बडा ही महत्वपूर्ण है। '..... ... बाज़ो के नज्मे उर्दू को रेखता कहलाने की वजह तरिमया को इस तरह पर बयान किया है कि मेमारो[1] के मुहावरे मे 'रेखता' उस मसाले को कहते हैं जिसके वास्ते इस्तेहकाम[2] दर व दीवार के, चन्द अज़जा[3] मखतूल[4] करके बनाते हैं और चूं कि ज़बान उर्दू के नज्म मे अलफाज़[5] अरबी मसलन[6] 'अल्लाह' व 'रसूल' व फारसी मसलन 'दिल' व जँबान व तुरकी मसलन 'चाकू' बावरची व इबरानी मसलन 'युसुफ' व 'हारुन व यूनानी मसलन 'कीमिया' व कुरतास व 'इस्तरलाब' व हिंदी मसलन 'खच्चर' व 'परतला' व 'उत्कल' व सस्कृत मसलन 'लजालू' 'मोतीदात' व जबान तामिल मसलन 'अड्ड' बमाने माष, व ज़बान तिलगू मसलन 'बडाजू', 'केदे' व 'भाष' वगैरह चीजो से खाने के लिए बनाते है व ज़बान गुजरात मसलन 'ननहा' बमोन खुर्द के व ज़बान चीन मसलन 'लीची' या 'लेचू' मेवा मारुफ, व जबान मलाह मसलन 'गदाम' व जबान अमरीका मसलन 'तम्बाकू' की तरकीब है इसलिए इसका नाम रेखता रक्खा गया है। ज़बान उर्दू रोजमर्रह शहर देहली को कहते है। उस शहर मे कदीममुल अम्याम है, बराबर ज़बान हिंदी मरुज थी। हर शख्श उस ज़बान मे कलाम करता था। जब सद् ५८८ हिजरी मे सुलतान मफजुद्दीन मशहूर व शहाबुद्दीन मोहम्मद गौरी ने मुल्क हिन्द पर चढाई की अहले हिन्द को

---

१ दीवार या मकान बनाने वाले (शिल्पी)

२. मजबूत करना

३. वस्तुएँ

४ मिलाजुला कर

५ शब्द

६. उदाहरणार्थ

शिकस्त दी। पिथौरा का काम तमाम किया मुल्क हिन्दी सलातीन गोरी के कब्ज़ए, इख्त्यार में आया रफता-रफता ज़बान क़दीम मे लफ्ज फारसी, अरबी व तुरकी मिलता गया उस अहद मे हज़रत अमीर खुसरू देलहवी ने (इन्तकाल उनका सन् ६२५ हिज़री मे वाक़ा हुआ है) बहुत से शेर बतौर मलमआ के कहे है। चुनाचे यह शेर उनका है।

'ज़े हाले मिसकीं म कुन तगाफुल दुराये नैनां बनाये बतियां।
के तावे हिजरा नदारम ईं जां न लेहो काहे लगाये छतियां।[1]

मौलवी साहब के इस उल्लेख से यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि —

१. रेखता कोई छन्द नही बल्कि भाषा विशेष है जिसका पर्यायवाची उर्दू है।

२. अनेक प्रातीय विदेशों की भाषाओ के शब्दो के मेल से इस भाषा का जन्म हुआ और अमीर खुसरू इसके कवि थे।

३. अमीर खुसरू की कविता से प्रकट होता है कि उसका विषय शृंगार था और शैली की दृष्टि से फारसी तथा हिन्दी खड़ी बोली का एक विचित्र मेल उसकी अपनी विशेषता थी।

४. 'वली' और उनके समकालीन कवियों की कविता रहस्य भावना से युक्त है। अपने इन्ही लक्षणो को लेकर 'रेखता' का प्रवेश हिंदी कविता मे हुआ।

---

१. ज़बान रेखता, ले० मौलवी गफ़ूर खां बहादुर 'निसाख' सन् १८६० ई० पृष्ठ २········३।

परिशिष्ट : ३ :

अप्रकाशित ग्रंथों की सूची

(१)

(१) अनुभव मजरी
(२) आराम रोशनी
(३) उद्यान वर्णन
(४) कृष्णविलास
(५) काशी का सस्कृत पत्र
(६) कवित्तसवैया और दोहा
(७) ग्र थ नामावली
(८) गोरक्षावली
(९) गोरखपुर महिमा
(१०) चौरगी नाथ कथा
(११) चौरासी पदार्थ नामावली
(१२) जलन्धर ज्ञान सागर
(१३) जलन्धर चन्द्रोदय
(१४) जलन्धर चरित
(१५) तेज मजरी
(१६) दत्तात्रेय कपिल सवाद
(१७) देव महिमा
(१८) नाथ अवतार
(१९) नाथ अष्टक
२०) नाथ उत्पत्ति
(२१) नाथ कवित्त
(२२) नाथ कीर्तन
(२३) नाथ चरित
(२४) नाथ चन्द्रिका

(२५) नाथ दोहा
(२६) नाथ धर्म निर्णय
(२७) नाथ ध्यानाष्टक
(२८) नाथ पद
(२९) नाथ पुराण
(३०) नाथ प्रशसा
(३१) नाथ महिमा
(३२) नाथ वर्णन
(३३) नाथ वाणी
(३४) नाथ सघिता
(३५) नाथ स्त्रोत
(३६) नाथ स्वरूप वर्णन
(३७) नायिका नायक लक्षण
(३८) मीरा नू गरबी
(३९) पचावली
(४०) पद सग्रह ।
(४१) परमार्थ विषय की कविता
(४२) प्रश्नोत्तर
(४३) बिहारी सतसई की टीका
(४४) भागवत की टीका
(४५) मरु देश वर्णन
(४६) महाराज मानसिहजी की बनावट
(४७) मान विचार
(४८) मानसिह की वशावली
(४९) योग ग्र थ सूची
(५०) योग शृ गार पुस्तक सूची
(५१) रागा रो जीलो
(५२) राग सार
(५३) रामविलास
(५४) रुकमणि ककण वधन
(५५) षोडश भक्ति भाव
(५६) श्री नाथजा

(५७) शृ गार रस की कविता
(५८) सयोग शृ गार का दोहा
(५९) सिद्ध गगा
(६०) सिद्ध गगा मुक्ताफल
(६१) सिद्ध मुक्ताफल
(६२) सिद्ध सम्प्रदाय
(६३) सिद्ध शृ गारी पाव अवतार
(६४) सेवासार
(६५) स्वरूपो के कवित्त
(६६) स्वरूपो के दोहे।
(६७) आनन्द विलास
(६८) अनुभव प्रकाश
(६९) सिद्धान्त बोध
(७०) सिद्धान्त सार
(७१) फूली जसवत सवाद
(७२) आनन्द विलास।
(७३) साधन निरूपण

●

नोट :—यह सामग्री हस्तलिखित रूप मे जोधपुर के 'पुस्तक प्रकाश' एव जयपुर, बीकानेर, उदयपुर, कोटा, अलवर आदि के राजघरानो के निजी पुस्तकालयो मे वर्तमान है।

प्रकाशित पुस्तकों की सूची

इतिहास (हिन्दी में)

(२)

(१) कोटे का इतिहास	डा० मथुरालाल शर्मा
(२) प्राचीन भारत का इतिहास	· डा० रमा शकर त्रिपाठी
(३) मारवाड का इतिहास	डा० विश्वेश्वर नाथ रेऊ
(४) मध्यकालीन भारतीय सस्कृति	गौरीशकर हीराचद ओझा
(५) नाथवतो का इतिहास	हनुमान शर्मा
(६) राजस्थान का इतिहास	: गौरीशंकर हीराचंद ओझा
(७) वश भास्कर	सूर्यमल
(८) हर्ष वर्धन	श्री गौरी शकर चटर्जी

(अग्रेजी में)

(9) Annals & Antiquities of Rajasthan	– James Tod
(10) An archaelogical tour along the lost Saraswati river (MSS)	– Sur Aurel Stein
(11) An outline of Religious Literature of India	– J. N. Farquhar.
(12) Ancient Geography of India	– (Ed. S N Mazumdar).
(13) Files of India Antiquary and Journal of the Royal Ancient Society of Bengal orissa & Bombay	
(14) Gupta Coins.	– J Allan
(15) History of Medieval India.	– Dr. Ishwari Prasad.

(16) Indian Literature in
China and the Far East – P. K. Mukherji.

(17) Later Moghuls – Irving.

(18) Political History of
Ancient India. – H. C. Raychadhri.

(19) The History & Culture of the Indian People (The Age of Imperial Unity). Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay

(20) Report of Archaelogical
Survey, Government of India.

Note.—Available through the courtesy of Sri Ratan Chand Agarwal, Curator, Jodhpur Museum

●

प्रकाशित

। हिन्दी में ।

(१)	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रयाय	डा० दीन दयाल गुप्त ।
(२)	कविता माला	मुंशी देवीप्रसाद ।
(३)	नागर समुच्चय	नागरीदास ।
(४)	ब्रजमाधुरीसार	वियोगी हरि ।
(५)	ब्रजनिधि ग्रथावली	महाराज प्रतापसिंह ब्रजनिधि ।
(६)	भाषा भूषण	महाराज जसवतसिंह ।
(७)	मीराबाई की जीवनी	मु शी देवीप्रसाद ।
(८)	महिलामृदुवाणी	,, ,,
(९)	मारवाडी भजन सग्रह	सकलनकर्ता रघुनाथ प्रसाद ।
(१०)	मानसिंह पदावली (दो भाग)	रामगोपाल मोहता, बीकानेर ।
(११)	मीरा बाई की वाणी	वेलवेडियर प्रेस ।
(१२)	मीरा माधुरी	ब्रजरत्नदास ।
(१३)	मिश्रबधु विनोद	मिश्र बधु ।
(१४)	राज रसनामृत	मु शी देवीप्रसाद ।
(१५)	राजस्थान मे हस्तलिखित पुस्तको की रिपोर्ट भाग १, ३	मोतीलाल मेनारिया, अगरचन्द नाहटा ।
(१६)	राजस्थानी भाषा और साहित्य	डा० मोतीलाल मेनारिया ।
(१७)	राजस्थानी साहित्य की रूप रेखा	,, ,, ,,
(१८)	रसिक चमन	महाराणा अरिसिंह ।
(१९)	रसिक विनोद	महाराणा सज्जनसिंह ।

। अँग्रेजी मे ।

(20)	Catalogue of the Saraswati Library at Udaipur	मोतीलाल मेनारिया
(21)	Reports on the MSS of Bardic Chronicles of Rajasthan.	L. P. Tessitory.
(22)	Maharana Kumbha (महाराणा कुभ)	Harvilas Sarda

नामानुक्रमणिका

ग्रंथानुक्रमणिका

स्थानानुक्रमणिका